भगवान श्री महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में

सचित्र

गीत अमरता के दो राही

लेखक

कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी

प्रकाशक

पूज्य श्री जीवनराम जैन पुस्तक प्रकाशक समिति

मण्डी गीदड़बाहा (पंजाब)

पूज्य श्री जीवनराम जैन ग्रन्थमाला—पुष्प ३४

पुस्तक	○ संगीत अमरता के दो राही
लेखक	○ कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी
सम्पादक	○ श्री नेमीचन्द जी पुगलिया
प्रकाशक	○ पूज्य श्री जीवनराम जैन पुस्तक प्रकाशक समिति मण्डी गीदड़वाहा (पंजाब)
चित्रकार	○ श्री वृज जी, जालन्धर
प्रथम प्रवेश	○ भगवान श्री महावीर २५वाँ निर्वाण शताब्दी वर्ष वि० सं० २०३१ फाल्गुन, मार्च १९७५
मुद्रक	○ श्रीचन्द सुराना के लिए दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-४

अर्द्ध मूल्य—तीन रुपये

स्व० पूज्यपाद श्री जवाहरलाल जी महाराज (पंजाबी)

समर्पण

अय 'जवाहर लाल' सच्चे और उच्च महात्मन् !
तत्त्व-वेत्ता आगमों के अय दिवंगत आत्मन् !

आप के चरणों में बन जब, मैं वैरागी था रहा
वह समय मेरे लिए कितना अनोखा था अहा !

प्रेम की और प्यार की पाकर मधुरतम थपकियां
ज्ञान-सरिता में लगाता था हमेशा डुबकियां

याद करके आपके अनगिनत ही उपकार मैं
भेंट करता हूँ श्रद्धा के फूल ये दो चार मैं

चन्दन मुनि

श्रद्धा-सुमन

जिन्होंने वि० १९२३ को भटिण्डा के निकट 'सम्हीर' नगर में श्रीमान् ला० दीवानचन्द के घर उनकी परम सुशीला धर्मपत्नी श्रीमती जयतां देवी की निर्मल कुक्षी से जन्म लेकर अग्रवाल वंश की शोभा को चार चांद लगाए।

जिन्होंने पंजाब के तेजस्वी आचार्य पूज्य श्री श्रीचन्द जी महाराज के विद्वत्ता भरे भाषणों से प्रभावित होकर वि० १९५० में पिनाणा (रोहतक) में दीक्षित होकर संयम के जलते मार्ग पर मुस्तैदी से अपने कदम बढ़ाए।

जिन्होंने पूज्य गुरुदेव से आगमों का गहरा ज्ञान पाकर पंजाब, वांगर, बागड़, दिल्ली, अजमेर, उदयपुर, राजस्थान आदि दूर-दूर तक परिभ्रमण करके अहिंसा-सत्य का सुमधुर सन्देश देते हुए हजारों को वीतराग भगवान् का सच्चा अनुयायी बनाया।

जिनकी पर-गुण, निज-दोष देखने की कुशल बुद्धि पर भक्त-समुदाय मुग्ध था।

जिनके शास्त्रानुमोदित, उग्रक्रिया युक्त निर्मल संयम के सम्मुख जैन-अजैन जनता झुकती हुई न थकती थी।

जो परम ज्ञानी, परम ध्यानी, परम व्याख्यानी, परम त्यागी, परम वैरागी, गंभीर, परम धीर, परम ब्रह्मचारी, परम निर्मल आचारी, परम शान्त, परम दान्त होते हुए भी अभिमान से सदैव ही कोसों दूर रहे।

भावान्वेषण में लीन कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज

जिन्होंने समस्त कन्दमूल तथा मिठाइयों के त्याग द्वारा रसना पर बहुत बड़ा अंकुश लगाकर और कई साल तक एकान्तर तप कर के अपनी आत्मा को महान् निर्मल बनाया।

जिन्होंने फरीदकोट में वि० १६८८ मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा को अनशन द्वारा स्वर्गारोहण किया। उन्हीं महान् उपकारी, शान्त मुद्रा, प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय श्री जवाहर लाल जी महाराज के पवित्र चरण कमलों में ये अर्द्ध-विकसित श्रद्धा पुष्प समर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव करता हूँ।

—चन्दन मुनि

सम्माननीय सहयोगी

१. श्री दीवानचन्द जैन, कोषाध्यक्ष जैन सभा बरनाला अपने पोते (श्री प्रेमचन्द जैन के सुपुत्र) होने के उपलक्ष में।

२. श्री वैसाखीराम जैन, बरनाला के पोता (श्री राजकुमार के सुपुत्र) होने के उपलक्ष में।

३. श्री प्रेमचन्द गर्ग, फर्म-श्री कस्तूरीलाल मेहरचन्द बरनाला।

४. श्री ओमप्रकाश नवलकिशोर मित्तल, बरनाला

५. श्री ईश्वरदास गर्ग, गर्ग बूट हाउस, संगरूर

६. रामकिशन गुप्ता, यमुनानगर (अम्बाला)

७. श्री रोशनलाल जैन, जालन्धर शहर, सुपुत्र चि. राजेन्द्रकुमार के शुभ विवाहोपलक्ष में।

८. श्री चिमन लाल जैन की पुण्य स्मृति में—— फर्म-धर्मचंद बाबूलाल जैन, मंडी संगरिया (राज०)

९. अमरनाथ अचलकुमार, सराफ, बरनालामंडी

१०. बिशनामल बाबूराम जैन, गीदड़बाहामंडी

□

अभिनन्दन

कविकुल-दिनकर मुनिप्रवर, चन्दन यश आगार
सर्व प्रथम श्रद्धा सहित, वन्दन शत-शत वार
कविताएं कितनी सरल
सहज भाव परिपूर्ण
लिखते हैं हर विषय पर
कविवर चन्दन तूर्ण
कविताओं में आपकी, कविता होती श्रेष्ठ
क्योंकि पंचनद प्रान्त के, आप सन्त हैं ज्येष्ठ
आंके कोई किस तरह
कविताओं का मूल्य
चन्दन जैसे सन्त की
कविता बड़ी अमूल्य
चन्दन कविवर वस्तुतः, जिन शासन की शान
एक जीभ कैसे करे चन्दन का गुण-गान

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

अभिवन्दन

चन्दन की काव्य कृतियां, हैं अनुपम रत्न ।
कण कण को चमका रहीं, जैसे इन्दु गगन ।।
सरल प्रकृति के धनी, विद्वत्ता अनपार ।
सरस्वती के वरद सुत, महिमा महितल पार ।।
स्वर्ण शिक्षा से ओतप्रोत, सुन्दर सरल विचार ।
गिन पाना नहीं शक्य है चन्दन का उपकार ।।
मंत्र मुग्ध हो श्रोतृवर्ग, पाठक अति प्रसन्न ।
मधुर रसीले पद्य सुन, पुलकित करते मन ।।
जैन संस्कृति के मणि मुकुट, परममनीषि उदार ।
मुनिपुङ्गव सौजन्यता, अवर्णनीय अवतार ।।
प्रत्येक रचना में भरा गहन ज्ञान विवेक ।
जन जन का कल्याण हो, जो शिक्षा धारे एक ।।
पुष्प सुरभि-सा ज्ञान है, अलिवत् है प्रिय भक्त ।
ज्ञानानन्द में रमण कर, बन जाते हैं विरक्त ।।
रवि शशि का सृष्टि में, जबतक रहे प्रकाश ।
तबतक जीवन की महक, ध्रुव रहे विश्वास ।
सती आज्ञा ज्ञापित करे, सविनय विमल प्रणाम ।
चन्दन मुनि के काव्य में सभी मिले सुखधाम ।

—सती आज्ञावती

सम्पादकीय

कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी (पंजावी) का साक्षात् परिचय तो अभी-अभी हुआ है किन्तु आपकी सुन्दर रचनाओं से मैं बहुत समय से परिचित हूं।

श्री नेमीचन्द जी पुगलिया

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं" के अनुसार वह वाक्य ही काव्य है, जिसमें रसानभूति हो। श्री चन्दन मुनि जी की रचनाएं सभी रसों को साथ लेकर इसलिए चलती हैं कि वह चरित्र प्रधान होती हैं। जिन रचनाओं में जीवन के प्रत्येक अंगों का सांगोपांग विवेचन हो वे समादरणीय क्यों न होंगी ?

यदि आपकी रचनाओं में से केवल सूक्तों का ही चयन किया जाय तो भी एक स्वतन्त्र सूक्ति-साहित्य निकल सकता है।

जब से श्रेद्धय मुनिश्री जी ने मुद्रित, अमुद्रित, साहित्य का सम्पादन-भार मुझे सौंपा तब से मैं अनुभव करता हूं कि संत- साहित्य तो स्वयमेव सम्पादित ही होता है। जिस में श्री चन्दनमुनि जी स्वयं एक अच्छे, मंजे, सधे, तपे हुए कविरत्न हैं। जिनकी रचनाओं से स्वयं सम्पादक को बहुत कुछ जानने-सीखने को मिलता है। फिर उसका सम्पादन कैसा ?

मैं सोचता हूं कि यह तो मुनि श्री का स्नेहाग्रह एवं 'गुणिषु प्रमोदं' की वृत्ति ही है कि वे दूसरे के गुणों का, कला का न केवल सम्मान ही करते हैं, किन्तु उसे बढ़ा-चढ़ा कर भी बताते हैं। मेरे लघु प्रयासों द्वारा मुनि श्री जी के साहित्य को नवरूप देने में जो कुछ सहयोग हुआ है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।

मेरा विश्वास है मुनि श्री के साहित्य में व्याप्त विस्तरण शैली भी नीरसता के द्वार नहीं खट खटाती। प्रवाह का पूर्णतया निर्वाह ही तो सरसता का द्योतक है।

लेखक, सम्पादक, मुद्रक जगन्मात्र के क्षमा योग्य ही होते हैं, तब मुझे अपवाद समझने की भूल मत कर जाना। बस, पाठकों से इसी नम्र निवेदन के साथ—

—नेमीचन्द पुगलिया
द्वारा: श्री रेखचन्द जी वैद
दाँती बाजार, **बीकानेर** (राजस्थान)

प्रकाशकीय

मृत्यु का भय प्रत्येक प्राणी को सता रहा है, कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। हर एक जीव की आकांक्षा है—जीवित रहूं। इससे भी आगे चलें तो प्रत्येक प्राणी अमर रहना चाहता है। इसलिए 'अमरता' जिसे हम अमृतत्व कहते हैं, हर प्राणी की अन्तर भावना का मूल केन्द्र है। किन्तु चाहने भर से कभी किसी को अमरता नहीं मिली। अमरता की खोज करने पर, उस पद पर दृढ़ कदम बढ़ाने पर ही अमरता हासिल होती है। अमरता का मार्ग कांटों का मार्ग है। जिज्ञासु व्यक्ति सदा-सदा से अमरता की खोज करता रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक 'अमरता के दो राही' में कविरत्न श्री चन्दन मुनिजी म० ने अमरता के महान पथ पर बढ़नेवाली दो महान आत्माओं की जीवन गाथा बड़े ही मधुर, मन भावने स्वरों में गूंथी है। मुनि श्री जी की काव्य रसधारा किसको रस-विभोर नहीं कर देती ? जो भी सुनता है, मस्ती में झूम उठता है। आत्मानंद में डुबकियां लगाने लग जाता

है। श्री चन्दन मुनि जी की कविता में प्रेरणा है, आकर्षण है और मानव को अमरता की ओर उन्मुख करने वाली वह शक्ति है कि वह मोह के, ममता के बंधनों को तोड़कर इस कठिन पथ पर अकेला ही निकल पड़ता है।

इस चरित्र में जिन दो महान पथिकों की जीवन गाथा है, वे हैं—मेघकुमार और थावर्चापुत्र। मेघकुमार की जीवन घटना भगवान महावीर के युग की है, और थावर्चापुत्र की घटना सुदूर अतीत श्रीकृष्ण युग की है, भगवान नेमिनाथ के युग की है। इन दोनों घटनाओं में समय की बहुत दूरी है, लेकिन फिर भी भावना का सम्वन्ध गहरा है। मेघकुमार भी अमरता की खोज में निकलता है, और थावर्चापुत्र भी। दोनों ही संयम के असिधारा पथ पर बढ़ते हैं, और तप-संयम द्वारा आत्मा को भावित करते हैं। थावर्चापुत्र परम निर्वाण पद प्राप्त कर लेते हैं और मेघकुमार इसी पथ पर वढ़ते हुए विजय विमान तक पहुंच जाते हैं।

हमारी समिति का यह सौभाग्य है कि हमें भारत विभूति कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी म० के मधुर काव्यों के प्रकाशन का अवसर मिला है। जनता जनार्दन के हितार्थ हम इस जीवनोपयोगी साहित्य को कम मूल्य पर प्रकाशित कर प्रचारित कर रहे हैं। मुनि श्री जी का साहित्य स्वयं में ही सर्व गुणसम्पन्न हैं, फिर कुशल काव्यकार श्री नेमीचंद जी पुगलिया की कलम का स्पर्श मिला है,इससे काव्य में और भी निखार आया है। इसके प्रकाशन में अनेक धर्मप्रेमी सज्जनों ने उदार दिल से सहयोग किया है। मुद्रण आदि में हमारे परम स्नेही श्रीचन्द जी सुराना का सहयोग मिलता रहा है। हम उक्त सभी महानुभावों के सहयोग का सम्मान करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

भवदीय—**चरणदास जैन**
मंत्री—पूज्य जीवनराम जैन धर्म प्रचार समिति

मंडी गीदड़बाहा का आदर्श चौधरी वंश

चौधरी श्री टीकमचन्द जैन के तीन सुपुत्र थे—श्री चेतराम जी, श्री नन्दलालजी, श्री लालचन्दजी। इनमें से श्री चेतरामजी व श्री लालचन्दजी बड़े ही सज्जन एवं सादा जीवन व्यतीत करने वाले थे और सच्चे श्रावक थे और स्थानकवासी सन्तों के अनन्य उपासक भी। श्री नन्दलालजी बहुत तपस्वी एवं सरल श्रावक थे। जंगल देश के प्रतापी आचार्य श्री श्रीचन्दजी म० सा० के अनन्य भक्त थे। जहां भी उनका चातुर्मास होता वहाँ लम्बी तपस्या करते थे। एक बार मंडी गीदड़बाहा में अपने पूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीचन्दजी म० सा० के चौमासा में ३१ दिन की तपस्या जल के आधार से की। समस्त हरी सब्जी का त्याग और रात्रि का चौविहार तो उन्होंने लम्बे समय तक निभाया। अनगिनत बार अठाई तप किया सो अलग। हर सम्वत्सरी महापर्व पर १५ दिन की तपस्या भी बहुत वर्षों तक करते रहे।

चौधरी श्री लालचन्दजी के—१. श्री दीवानचन्दजी, २. श्री चाननरामजी, ३. श्री मूलचन्दजी यों तीन लड़के हुए। श्रीदीवान चन्द जी ने अपने पूज्य गुरुदेव स्वर्गीय श्री जवाहरलाल जी म० सा० से सामायिक, प्रतिक्रमण, बोल विचार आदि बहुत कुछ सीखा, जिसका अब भी वे पालन सहर्ष कर रहे हैं।

श्रीचाननरामजी ने भी अपने पूज्य गुरुदेवश्रीजवाहरलालजी म०सा० से काफी कुछ धर्मध्यान सीखा था। गरीबों के सहायक थे और मंडी गीदड़बाहा का जैन स्थानक बनवाने में अग्रगण्य थे। उनकीपूज्य माताश्रीमतीभोलादेवीजी भी बड़ी उदारएवं दानवीर

ाहिला थीं। श्री चाननरामजी म्युनिसिपल कमेटी के उपप्रधान ाम्बे समय तक रहे। कार दुर्घटना सन् १९५० में इनके स्वर्गवास से ांडी में शोक छा गया। म्युनिसिपल कमेटी में इनका तैल चित्र ासम्मान लगाया गया मंडी के शुभ चिन्तक होने के कारण। इनके ; लड़के हैं—श्री विहारीलालजी, श्री हरकृष्णदास, श्री महेन्द्रकुमारजी।

श्री मूलचन्दजी सादा जीवन विताने वाले व्यक्ति थे। सन् १९६४ ां स्वर्गवासी हुए। इनके भी नाम का एक कमरा जैन स्थानक में बन-ााया गया है। इनके भी तीन लड़के हैं—श्री शीतलकुमारजी, ी लोकनाथजी और श्री सतपालजी।

इस वंश की तूफानमेल नसवार फैक्ट्री, जैन टिन फैक्ट्री और ़च्ची पक्की आढत का काम भी अतीव उन्नत है। तूफानमेल नसवार ांसार के कोने-कोने में बिक रही है। यह आदर्श परिवार देश-समाज ौर धर्म की सेवा करता हुआ सदा सुखी-समृद्ध रहे यही मंगल ़ामना।

—उपमन्त्री—वैद्य अमरचन्द्र जैन

प्रस्तावना
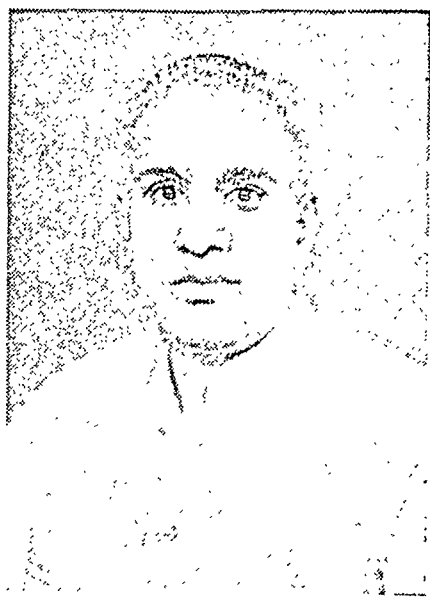
वैदिक ऋषि प्रार्थना के स्वर में उदात्तघोष करते हैं—**'मृत्यो र्मा अमृतं गमय'**—मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो ! वास्तव में प्राणी जब जगत में चारों ओर जन्म और मृत्यु की धधकती ज्वालाओं को देखता है, तो उसका अन्तर् मानस हजार-हजार ध्वनियों में एक साथ पुकार उठता है—**'मच्चुणाऽभाहओ लोगो'**—यह लोक मृत्यु से आक्रांत हो रहा है। मृत्यु की राक्षसी प्रतिक्षण संसार को निगलती जा रही है। एक-एक पल उसकी एक-एक हुंकार है, एक-एक ज्वाला है, जो प्राणी के जीवन की डोर को जला रही है। इस ज्वाला में जलता हुआ मनुष्य जब अपने चारों ओर प्रतिक्षण प्राणी को मृत्यु के मुख में जाता देखता है, मृत्यु के विशाल कड़ाहे में प्राणी को प्रतिपल पकता देखता है, श्मशान की भूमि पर अपने स्वजन-मित्र-परिचित और पास-पड़ौसियों की चिता जलते देखता है तो उसका अन्तरंग हाहाकार कर उठता है, वह व्याकुल होकर सोचने लगता है क्या जीवन का यही अंतिम रूप है ? जो फूल खिला है, वह मुर्झा कर

मिट्टी में मिलेगा ही ? जो जन्मा है क्या वह अवश्य मरेगा ही ? ऐसा कोई मार्ग नहीं है जो मृत्यु की छाया से बचा हो ? ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां काल का बल झूठा पड़ जाता हो ? संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो महाबली काल को जीत सकती है ? मृत्यु से भय-भीत मानव का यह चिन्तन ही अमरता की खोज है, अमरता की पुकार है, वह मृत्यु से अमरता की ओर जाना चाहता है। इसमें दो प्रयत्न होते हैं, कुछ मनुष्य कायर व्यक्ति की तरह मृत्यु से डर कर, भागकर बचना चाहते हैं, किन्तु वे बच नहीं सकते। कुछ महाप्राण व्यक्ति मृत्यु से बचना तो चाहते हैं, पर भाग कर या छुपकर नहीं, उसके साथ युद्ध कर, संघर्ष कर, लड़ाई कर उसे जीतना चाहते हैं। मृत्यु से संघर्ष कर उस पर विजय पाने का प्रयत्न करने वाले सचमुच में अमरता के खोजी होते हैं, वे ही अमरता के राही होते हैं।

अमरता का मार्ग विराग से होकर गुजरता है। उपनिषद् में कहा है—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदिस्थिताः।
अथ मृत्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते।

—कठ उपनिषद् ६।१४

जब मनुष्य के हृदय की समस्त कामनाएं छूट जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमृत (अमर) हो जाता है, और यहीं इस जन्म में ही वह ब्रह्म (अमरपद) को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में अमरता के लिए यही एक शर्त है—मन को मुक्त करना। मोह से, ममता से, भय से, स्नेह से, विषय-वासना से जब मन मुक्त हो जाता है तो—**से जाइ मरणाओ पमुच्चइ**—वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है, अमरता के उच्च शिखर पर विराजमान हो जाता है।

प्रस्तुत 'अमरता के दो राही' में अमर पथ के ऐसे ही दृढ संकल्पी दो यात्रियों की जीवन यात्रा का सरस, भावप्रधान प्रेरणादायी संगान है। इसमें करुणा की दिव्यमूर्ति मेघकुमार और अमृतत्व के महान अनुसंधाता थावर्चापुत्र की जीवनगाथा है। कथा स्वयं ही रसप्रद है, फिर कविता में है, इससे और अधिक सरसता आ गई है। फिर कविरत्न चन्दनमुनि की लेखिनी से लिखी गई है, एक-एक पंक्ति ऐसी लगती है जैसे कलम को रस में डुबो कर पद-पद पर रस ही रस बिखेर दिया हो।

मेघकुमार से भी प्राचीन गाथा है थावर्चापुत्र की। हजारों हजार वर्ष पहले वह यात्री मृत्यु से घबरा कर अमरता की खोज करता है। बालक थावर्चापुत्र जब पड़ौसी के घर में बालक के जन्म की खुशियों के गीत सुनता है तो कुतूहल वश मां से पूछता है—मां ये गीत कितने मीठे लगते हैं ? क्यों गाये जा रहे हैं ?

मां ! मैं अभी गया था छत पर सुने सुरीले स्वर मैंने !
क्या है ? क्यों है ? तेरे से ये प्रश्न किये मन भर मैंने !

मां पुत्र को बताती है, पड़ौसिन की गोद हरी भरी हो गई है, इसलिए सब लोग खुशियों में गीत गा रहे हैं। पर आश्चर्य ! कुछ ही क्षण बाद उन गीतों की मधुरता समाप्त हो गई, वे गीत जो कानों को प्यारे लगते थे, अब असुहाने लगने लगे। वह दौड़कर मां के पास आया। बोला—मां ! ये गीत बदल कैसे गये ? कुछ समय पहले के गीत प्यारे लगते थे, पर अब तो उन्हें सुनने से मेरा हृदय भी फटने लगा है, यह क्या हुआ ? गीतों का स्वर बदल कैसे गया ? मां ने कहा—

गीत नहीं कहलाते हैं ये मरने पर रोने की रीत।

ये गीत नहीं, रुदन है ! इनमें प्रेम नहीं, दुख भरा है क्योंकि बच्चा मर गया !

वस, 'मर गया' यह शब्द ही थावर्चापुत्र के लिए जागृति का संदेश वन जाते हैं। वह मां से पूछता है—

बोला बेटा—मां, बतलावो जीव भला क्यों मरता है ?
बैठा क्यों न हमेशा रहता, क्यों न मृत्यु से डरता है ?

प्राणी मरता ही क्यों है ? अमर क्यों नहीं रह सकता ? बस अमरता की यह खोज उसे धीरे-धीरे भगवान नेमिनाथ के चरणों में पहुँचा देती है और सचमुच में वह अमरता का मार्ग पा लेता है। सर्व वासनाओं से मुक्त होकर अमर बन जाता है, मुक्ति पा लेता है।

मेघकुमार भी अमरता का खोजी है। वह भगवान महावीर का उपदेश सुनकर प्रबुद्ध होता है, जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, योग है। योग द्वारा ही जोव अपने चरम लक्ष्य तक पहुंच सकता है। वह मगध सम्राट श्रेणिक के राज परिवार की असीम सुख सुविधाओं का, प्राप्त अपार ऐश्वर्य का त्याग कर संयम के कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ जाता है। और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अमरता की गोद में जा विराजमान हो जाता है।

चरित्र की दृष्टि से दोनों ही कथानक ऐतिहासिक तो हैं ही, वड़े ही प्रेरक और रोचक भी हैं। थावर्चापुत्र और उसकी माता के प्रश्नोत्तर वैदिक कालीन नचिकेता की याद दिलाता है जो अपने पिता से ही मृत्यु को जीतने की बात पूछता है। यमराज से भी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का सवाल करता है।

कविरत्न श्री 'चन्दन मुनि' जी ने इन दो चरित्रों की अमर सृष्टि कर दर्शन की गंभीर गुत्थियों को इतनी सरल और सरस शैली में प्रस्तुत किया है कि देखकर आश्चर्य होता है। वालक और कम पढ़ी-लिखी महिलाएं भी बड़ी आसानी से इन संगीतों को पढ़ सकती हैं, सुनकर इनका भाव हृदयंगम कर सकती हैं। चरित्रों के बीच-बीच

में जीवन व्यवहार की अनेक शिक्षाएं, सदाचार और सद्व्यवहार की प्रेरणाएं भरकर तो कवि ने दर्शन को काव्य में और काव्य को दर्शन में गुंफित कर दिया है। उनकी लेखिनी मंजी हुई है, सधी हुई है। अब तक हजारों पद्यों की मधुर सृष्टि से सरस्वती के भंडार को भर चुके हैं और भर रहे हैं।

एक बात और—कवि भावनालोक का मस्त विहारी होता है, पर श्री चन्दन मुनि जी इसके अपवाद हैं। वे कवि हैं, संत है, जन नेता हैं। उनकी भाषा तो मधुर है ही, पर भावनाओं की मधुरता तो असीम है। उनका हृदय जितना सरल, निश्छल है, उतना ही गुणज्ञ, व्यवहार कुशल और जनहितैषी भी है। वे ऐसे व्यक्ति हैं, वे एक ऐसे महान संत हैं, जिनके विषय में अधिक न कहकर बस श्रद्धाभिभूत हृदय से इतना ही कह देना काफी है—

वाग्देवी के वरद पुत्र हैं, धार्मिकता के हैं अवतार !
सत्य सरलता के समुपासक चन्दन मुनि चन्दन साकार !

बस इसी श्रद्धा भावना के साथ मैं आशा करता हूं कि 'अमरता के दो राही' अमरता के हजारों राहियों के लिए दीपस्तंभ की भांति प्रेरणाप्रद रहेगी।

साथ ही मेरे मित्रवर श्री नेमीचन्द जी पुगलिया को भी सुन्दरतम संपादन के लिए शतशः साधुवाद !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

धर्मप्रिय समाजसेवी डा० प्रेमचन्द जैन
प्रधान– जैनसभा, बरनाला

अमरता के दो राही

□

अ
नु
क्र
म

१

संगीत श्री मेघकुमार
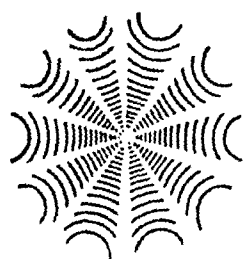
हस्ती के मन में जागा है, दयाधर्म कितना निरदोप।
कहीं नहीं मर जाए नीचे, वैठा वेचारा खरगोश॥
जैसे मैं बचने को आया, मेरे ही इस मण्डल में।
कोई क्यों फंसना चाहेगा, लगे हुए दावानल में॥
आखू, ओतु, हरिण, हरि, बाजी, महिष, नेवला, नाग भले।
खुद मरने वाले हों तब क्या, बगुले मत्स्यों को निगलें?
अपने लिये सभी मरते हैं, मरा पराये हित में नाग।
दया धर्म से बढ़कर बोलो, होता और कौनसा त्याग?
मेघकुमार चरित्र प्रेरणा, दया धर्म की देता है।
"चन्दन" अभिनन्दन है उसका, जो सत् शिक्षा लेता है॥

कथा-कण

प्रवाह में तीव्रता और मन्दता के समान भावना में भी उतार-चढ़ाव न आए यह असम्भव है। भावना पर आधारित कार्य भी तीव्र-मन्द गतिशील क्यों न होंगे? प्रत्यक्ष के अभाव में अनास्था और संशय न पलेंगे तो ये कहां जाएंगे? इधर से उधर और उधर से इधर पवन के समान मन का भी रुख बदलने में विलम्ब कब लगता है? इस भूमिका को मानव की दुर्बलता न कहकर स्वभाव कहा जाए तो क्या हानि है?

मगधाधिप "श्रेणिक" नरेश के एक पुत्र "श्री मेघकुमार" अपने माता-पिता-आठों-पत्नियां और राजसी वैभव को ठुकराकर भगवान् महावीर के पास श्रमण प्रव्रज्या लेते हैं। "मुनिमेघकुमार" को दिन का नहीं, पहली ही रात्रि का ऐसा कटु अनुभव होता है कि वे सोचने लगे—मैं प्रातः होते ही भगवान् महावीर को पूछकर सद्यःगृहीत श्रमण वेश को त्यागकर मेरे घर चला जाऊंगा। यदि ऐसा ज्ञात होता तो मैं दीक्षित ही नहीं बनता। अस्तु! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। क्योंकि मैंने इन मुनियों के साथ न तो भोजन पानी किया है न इनकी दैनन्दिनी क्रियाएं।

अस्थिर और अन्यमनस्क "मुनि-मेघकुमार" "भगवान् महावीर" के सम्मुख उपस्थित हुए। वन्दन किया और कुछ कहना चाहा, उससे पहले ही प्रभु ने कहा—ओ मेघ ! क्या तेरे मन में पुनः घर लौटने की भावना जगी है ? क्या तू परीषहों से इतना घबरा गया ? क्या एक मोक्ष-पथिक इतना दुर्बल होता है ? सोच समझ, विचार, आज नहीं; तू ने पिछले हाथी के भवों में भी दया-धर्म को निभाया है। एक शशक के प्राण बचाने के लिये तूने अपने प्राणों को चढ़ाया है। याद कर, भूलने से काम नहीं चलेगा। स्थिर हो !

"मुनि मेघकुमार" को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। प्रभु और संयम के प्रति पुनः आस्था जगी। प्रभु के चरणों में अपने आपको समर्पण करते हुए "मुनि मेघ कुमार" ने जीवन को सफल बना लिया।

'एक से हजार' की भान्ति यह कथा-सार विस्तार न पाता तो पुस्तक का आकार न लेता। कथा का सार और लेखक के विचार पाठक के प्यार से एकाकार बनें, इसी आशा के साथ—

—चन्दन मु

करुणा की पावन धारा

धरती तप रही है, जल रही है, एक-एक बूँद के लिए प्यासी है। कौन यह तपन मिटाए ? कौन यह प्यास बुझाए ? अन्तरिक्ष से उमड़ती-घुमड़ती घन-घटाएं जब बरसती हैं, जल-थल एक कर देती है, तो धरती का कण-कण द्रवित हो जाता है, सूखे धूल उड़ते मैदान हरितक्रान्ति से लहलहा उठते हैं। सब ओर हर्ष एवं आनन्द का क्षीर सागर तरंगित हो जाता है।

मानव के मन की विशाल धरती भी चिरकाल से तपती-जलती आ रही है। कितनी प्यासी है यह अन्दर की धरती, कुछ पूछिए नहीं। इसकी प्यास बुझे तो कैसे बुझे ? जब तक भावना के अन्तरिक्ष से करुणा की वृष्टि न होगी, तब तक मानव मन की तपन, जलन और प्यास मिट ही नहीं सकती है। करुणा की धारा ही वह आकाश से शिव के मस्तक पर अवतरित होने वाली पतित पावनी गंगा की धारा है, जो ऊपर के स्वर्ग और मोक्ष को धरती पर उतार लाती है। करुणा का एक विन्दु भी इतना शक्तिशाली है कि वह जन्म-जन्म के दहकते जलते आते घृणा, वैर, विग्रह, अन्धकार और क्रोध के दावानल को एक क्षण में वुझा सकता है, शान्त कर सकता है।

जिसे मानवता कहा जाता है, वह क्या है ? करुणा ही तो मानवता है। जिसके हृदय न हो, हृदय में दीनदुखी, दुर्बल एवं दलित के प्रति

दर्द न हो, वह कैसा मानव ? मानवता तन की आकृति विशेष पर आधारित नहीं है, वह आधारित है एक मात्र करुणा प्रवृत्त अन्तर्मन पर। तन तो नारकों और राक्षसों का भी मानव जैसा ही होता है, फिर वे मानव क्यों नहीं ? इसलिए नहीं कि मानवता एक भाव है, और वह है करुणा। तीर्थंकर महावीर ने चम्पा (अंग) पुरी के प्रवचन में कहा था —मानवता प्राप्त करना है, तो प्रकृति से भद्र बनो, विनम्र बनो, ईर्ष्या-विसंवाद-घृणा वैर को दूर करो; दयालु बनो। वस्तुतः अन्दर में झांक कर देखा जाए, तो ये सब करुणा के ही भिन्न-भिन्न रूपाकार हैं। निश्चित है कि जहां करुणा है, सहृदयता है, संवेदनशीलता है, वहीं मानवता है।

सत्य का स्वरूप दर्शन ही सम्यग्दर्शन है, जो जीवन विकास का, आध्यात्मिक पवित्रता का प्रथम सोपान (सीढ़ी) है और यह सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन कब अन्तर में ज्योतिर्मय होता है, जब मानव की मनोभूमि में सहज करुणा की निर्मल भाव धारा प्रवाहित होती है। इसका अर्थ है करुणा के अभाव में सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता, आत्मदर्शन नहीं हो सकता, और जो स्वयं के सत्य का दर्शन नहीं कर सका, वह और किसी सत्य का दर्शन क्या खाक कर पायेगा ? करुणा हर शरीर के अन्दर घुसे हुए चैतन्य रूप अनन्त सत्य की स्वीकृति है यदि कोई लकड़ी के टुकड़े को कुल्हाड़ी से काटता है तो किसी भी दर्शक को कोई वेदना नहीं होती। मृतशरीर को आग में जलाकर भस्म कर दिया जाता है, कोई दर्द नहीं, कोई पीड़ा नहीं। किन्तु यदि किसी जीवित व्यक्ति के साथ ऐसा किया जाए, तो क्या हो ? वहाँ क्यों करुणा वह निकलती है ? जीवित व्यक्ति यदि आमूलचूल जड़ का ही रूपान्तर हो, तो करुणा कैसी ? स्पष्ट है कि करुणा जड़ पर नहीं, चैतन्य पर

केन्द्रित है, अतः वह जड़ शरीर से भिन्न एक विलक्षण चैतन्य देव की स्वीकृति है। चैतन्य के दर्शन के लिए करुणा शत प्रतिशत अपेक्षित है।

करुणा अहिंसा का नवनीत है। अहिंसा पुण्य है, तो करुणा उसका फल के रूप में रूपांतर है। करुणा के बिना अहिंसा पूर्णता के शिखर पर नहीं पहुंच सकती। करुणा की धारा के तट पर ही अन्य सभी धर्म भाव अंकुरित होते हैं, पुष्पित एवं फलित होते हैं। करुणा के सूखते ही अन्य सव धर्म म्लान हो जाते हैं, सूख कर समाप्त हो जाते हैं। इसीलिए कहा था कभी हमारे एक महनीय महान् आचार्य ने—

> दयानदी महातीरे, सर्वे धर्मास्तृणांकुराः।
> तस्यां शोषमुपेतायां कियन्नन्दन्ति ते चिरम् ?

करुणा के उपासकों के एक नहीं, अनेक उदाहरण हैं, एक-से-एक दिव्य ! एक-से-एक महान् ! किन्तु वर्तमान चालू काल चक्र में करुणा का एक ऐसा ऐतिहासिक उदाहरण है, जिस पर सहसा दृष्टिपात होते ही मन का कोना-कोना चमत्कृत हो जाता है। यह है मेघकुमार ! मेघकुमार तत्कालीन मगध सम्राट् राजा श्रेणिक का प्रिय पुत्र है, धारिणी मां का आत्मज है। तीर्थंकर महावीर का महान् शिष्य है। मेघकुमार करुणा की साधना से ही पशुता से मुक्त होकर दिव्य मानवता प्राप्त करता है। नन्हा-सा खरगोश ! क्या सत्ता है उस क्षुद्र प्राणी की ? किन्तु मेघ पूर्व भव में उसकी रक्षा करते हैं, रक्षा में अपने सर्वाधिक प्रिय प्राणों की आहुति भी अर्पित कर देते हैं।

सत्कर्म वह है, जिसकी तैयारी के क्षणों में आनन्द, करने के क्षणों में आनन्द और करने के पश्चात् भी आनन्द ! आनन्द, उल्लास एवं

प्रमोद की रस धारा अविच्छिन्न प्रवाहित रहने पर ही सत्यकर्म की, अर्थवत्ता है, गुणवत्ता है। और मेघकुमार करुणा की इस त्रिकोटि में पूर्णतया खरे उतरे हैं। हाथी के जन्म में खरगोश की रक्षा करते हुए वे इतनी मर्मान्तिक पीड़ा पाते हैं, भूखे प्यासे रहते हैं, और आखिर प्राणाहुति की स्थिति में से गुजरते हैं कि आज भी उस वर्णन पर से आँखें गीली हो जाती हैं। किन्तु मेघ कितने शान्त हैं ? कितने अविचल हैं ! जरा भी ग्लानि नहीं कि यह मैंने क्या किया ? क्यों व्यर्थ ही इस पचड़े में पड़ा ? मुझे क्या लेना-देना था, इस खरगोश से। करुणा करुणा है, वह जब तरंगित होती है तो नहीं देखा जाता है कौन क्षुद्र है, कौन महान् हैं। उसकी दृष्टि में सब जीव-जगत् एक है। धर्मरुचि अनगार ने चींटियों की रक्षा के लिए भी अपने जीवन की आहुति दे डाली थी।

मेघकुमार की करुणा दिव्य है, लोकोत्तर हैं। कठोर-से-कठोर हृदय को भी वह द्रवित कर देती है, गद्गद् बना देती है, चरित्र पढ़ते ही लगता है, मन, करुणा की वेगवती धारा में झकोले ले रहा है। मेघ वस्तुतः करुणा का मेघ है। गर्भस्थ मेघ दोहद के रूप में मां को मेघवृष्टि की जो अभीप्सा देता है, वह उसके जन्मान्तर से संस्कार बीज में आये हुए करुणा मेघ का ही प्रतीक है। वह जग जीवन पर मेघ की भाँति करुणा की बरसा कर देना चाहता है, बिना किसी भेद भाव के हर किसी व्यथित की व्यथा मिटा देना चाहता है, सब ओर सुख शान्ति की धारा बहा देना चाहता है। मेघ की करुणा आदर्श है। वह आदर्श रही है, आदर्श रहेगी। महाकाल के चरण निक्षेप की धूल उसे कभी आच्छन्न नहीं कर सकेगी। मानवता के दिव्य भाव कभी धूमिल नहीं होते।

मेघकुमार का चरित्र सर्वप्रथम मूल अंग साहित्य के सुप्रसिद्ध आगम ज्ञाता सूत्र में वर्णित है। तदनन्तर प्राकृत, संकृत, अपभ्रंश, गुजराती,

राजस्थानी, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं में निबद्ध होता रहा। आज भी निबद्ध हो रहा है। मेघ के दिव्य जीवन को लेकर अच्छी-से-अच्छी रचनाएँ समाज के समक्ष आयी हैं।

श्री चन्दन मुनि जी की प्रस्तुत रचना भी उसी स्वर्णशृंखला की एक चमकती कड़ी है। हिन्दी गेय छन्दों में मेघकुमार के जीवन को वहुत अच्छे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। प्रसंगोपात्त यत्र तत्र धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, नैतिकता, आत्म-जागरण आदि लोकोपकारी विविध विषयों का वर्णन ऐसा है, जैसे कि सोने में सुगन्ध हो। सरल सुवोध भाषा, गीति प्रधान छन्द, उदात्त विचार—सब कुछ ऐसा है, जो सहृदय पाठक के मन को सहसा मोह लेता है। पढ़ते जाइए, रसास्वादन करते जाइए, मन ऊवेगा नहीं। यही कवि का कृतित्व है, जिसमें श्री चन्दन मुनि जी ने शानदार सफलता अधिगत की है। शत-शत साधुवाद ! शतशत धन्यवाद !

मैं कवि अवश्य हूं, फिर भी मात्रा में तर्क-कर्कश मति ही अधिक हूँ। जब उक्त रचना ने मेरे तर्कतारित मन को प्रभावित किया है, तो स्पष्ट है, रचना प्रभावोत्पादक है, प्रेरक है।

मुनि श्री चन्दन जी, अपने किशोरभिक्षु जीवन में, मेरे विद्यार्थी रहे हैं। साथ वर्षावास भी किया है, और विहार यात्रा भी। हिमाचल की शिवालक पर्वत शृंखला के अभ्रंलिह विकट गिरि शिखरों को भी हमने हँसते खिलते पार किया है। उस समय की अनेक मीठी यादें, आज भी मन को मीठा वना जाती हैं। मुनि श्री विनम्र, सेवाभावी, कृतज्ञतापरायण भिक्षु हैं। एक उदात्त, सरल, सुसंस्कृत एवं सौम्यव्यक्तित्व के धनी हैं। समाज को तथा वड़े-छोटे सभी सहयात्रियों को उन पर

गौरवानुभूति है। उनकी स्नेहशीलता अद्भुत है। लगभग तीस वर्ष से ऊपर हो गए हैं उन्हें मिले हुए, इस बीच काल की धारा ने अनेक स्मृतियां धो डाली हैं। परन्तु मुनि श्री की श्रद्धा, भक्ति एवं सेवा की धारा आज भी अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है।

मुनि श्री ने अध्ययन को पचाया है। उनकी ग्रहणशीलता अनूठी है। आपकी अनेक पद्य रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं, जो बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत रचना भी इसी भाँति लोकप्रिय होगी, जन-मन को मंगल कल्याण की दिशा में प्रेरणा देगी। मैं आशा करता हूँ, भविष्य में उनकी और भी अनेक साहित्यिक देन, जनता को मिलेगी। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अनागत क्षणों में और भी अधिकाधिक प्रकाशमान हो, इसी सद्भावना के साथ।

जैन भवन
लोहामंडी आगरा-२ —उपाध्याय अमरमुनि
मई दिवस १९७२

☆☆

अथ प्रथमवर्षण

चरित्र प्रतिपाद्यात्मक मंगलाचरण :

दोहा

अनुकम्पा सम्यक्त्व का, माना लक्षण एक ।
यही विवेच्य चरित्र का, विस्तृत रूप विवेक ॥
अनुकम्पा के पात्र हैं, दुनिया के लघु लोग ।
बड़े बनाते क्यों यहां, उनको अपना भोग ॥
जीवों को प्रिय है सदा, जीवन अपना श्रेष्ठ ।
जीओ, जीने दीजिये, सबको यहाँ यथेष्ठ ॥
सुख स्वार्थ के वास्ते, औरों को दे कष्ट ।
क्या यह मानव धर्म है, जरा कीजिये स्पष्ट ॥
दुःख उठा कर भी करें, औरों का उपकार ।
अमर उन्हीं का नाम ही, रहता है संसार ॥

जीने की उत्तम पद्धति : [लावनी छंद][१]

दुःख दे रहा तुम्हें उसे भी, सुख देना है मानव धर्म ।
मानवता है उत्तमता है, यही कहा है उत्तम कर्म ॥
सुख देने वाले को सुख दे, किया कौनसा ऊँचा काम ।
गधा खाज कहलाता है यह, अदला-वदला इसका नाम ॥
सुख देने वाले को दुख दे, किया अधम से काम अधम ।
मानवता को मुख दिखलाते, आती उसको क्यों न शरम ॥
अकल आपकी अगर काम कम, देती हो तो शिक्षा लो ।
जीने की उत्तम पद्धति से, मानवता की दीक्षा लो ॥

विश्वव्यापी समानता :

सुख प्यारा है सदा आपको, औरों को भी सुख प्यारा ।
इसी दृष्टि पर फलित हुआ है, दुनिया का भाईचारा ॥
छोटे-बड़े सभी जीवों में, संवेदन है एक समान ।
व्यक्त वही कर पाते हैं जो, मन-वाणी से बने प्रधान ॥
जीने का अधिकार सभी को, मिला हुआ है सदा स्वयं ।
कौन मारने वाले हो तुम, क्यों करते हो व्यर्थ अहं ॥
बनो अहिंसक भावों से तुम, मत हिंसा के भाव करो ।
समझ सभी को निज-सदृश ही, पार जगत से नाव करो ॥

---

१ संपूर्ण चरित्र 'लावनी छंद' में ही गुंफित किया गया है ।

प्राणि मात्र तक अनुकम्पा का, क्षेत्र जैनियों ने माना।
षट्कायिक जीवों का वर्णन, नहीं किसी से अनजाना॥
सूक्ष्म-सूक्ष्म जीवों का वर्णन, हरियाली का किया गया।
वैज्ञानिक युग में अब उसको, अपने शामिल लिया गया॥
पांचों स्थावर ऐकेन्द्रिय हैं, त्रसकायिक हैं विविध प्रकार।
विस्तृत वर्णन किया हुआ है, पढ़िये पुस्तक जीव-विचार॥
पंचेन्द्रिय वाले जीवों के, कितने ही हैं भेद-प्रभेद।
जैन धर्म की ऊँची संस्कृति, गई नहीं अब तक विच्छेद॥

दया के उपदेशक :

छह काया के पीहर मुनिवर, बड़े दयालु होते हैं।
जनता के मानस-खेतों में, बीज दया के बोते हैं॥
'दया पालिये-दया पालिये', कहते सबसे पहला बोल।
दया धर्म में सभी धर्म का, समावेश होता अनमोल॥
सदा सर्वथा हिंसा का यदि, कर न सको तुम प्रत्याख्यान।
त्रस जीवों की हिंसा तज कर, सच्चे श्रावक बनों महान॥
प्रथम अहिंसा व्रत श्रावक का, बतलाया है शास्त्रों में।
तरने का सीधा रास्ता यह, जतलाया है शास्त्रों में॥

दया पालने से यह मानव, देव-तुल्य बन जाता है।
पशु मानव-सा बन जाता है, दया धर्म अपनाता है॥
दयाधर्म की सुर-सरिता के, तट पर सारे धर्म पले।
पानी बिना पिलाए उत्तम, बीज कहीं भी नहीं फले॥
दया धर्म का मूल जानिये, और धर्म सारे फल-फूल।
धर्म नहीं हो सकता है वह, दया धर्म के जो प्रतिकूल॥
सब जीवों की रक्षा के हित, होता रहा सदा उपदेश।
जिनवाणी का इससे बढ़कर, नहीं दूसरा है सन्देश॥
दया भगवती की महिमा का, पार नहीं पाया जाता।
फिर भी मति अनुसार यहाँ पर, यश कुछ-कुछ गाया जाता॥

श्रोताओं से अपेक्षा :

मेघकुमार-चरित्र सुना कर, दयाधर्म को पुष्ट करें।
तुष्ट करें आत्मा की परिणति, भव-भव संचित कष्ट हरें॥
कैसे दयाधर्म का पालन, किया गया वह सुन लेना।
हंस सरीखे श्रोता बनकर, गुण-मुक्ताफल चुन लेना॥
जीवनवृत्तों में आती है, सभी तरह की घटनाएँ।
जो कुछ योग्य लगे उनमें से, श्रोता! उतना अपनाएँ॥
सत्पुरुषों के आदर्शों को, दुनिया देती है सम्मान।
कथानकों से पाया जाता, जीवन का अनुभव-विज्ञान॥

संस्कृति अपनी रखी सुरक्षित, शास्त्रों में विद्वानों ने।
सुप्त हृदय को किया सचेतन, नीति-धर्म के गानों ने ॥

चरित्र नायक का चित्र :

सुन उपदेश स्वयं जागृत बन, त्याग-मार्ग स्वीकार किया।
प्रायश्चित्त किया पापों का, भवसागर का पार लिया ॥
पूर्व जन्म का वृत्त सुना जब, महावीर की वाणी से।
मेघकुमार बना मैं कैसे, जाना हस्ती प्राणी से ॥
इन्हीं बिन्दुओं पर करना है, हमे विवेचन अति सुन्दर।
'मेघकुमार चरित्र' सुनोगे, चक्षु खुलेंगे आभ्यन्तर ॥

मेघकुमार का जन्म स्थान :

'भरत क्षेत्र' के दक्षिणार्ध में, 'मगध देश' था मन मोहन।
'राजगृहपुर' सुरपुर जैसा, सुन्दरता का था दोहन ॥
पुर की शोभा प्रगट किया करती है शोभा लोगों की।
आंखों से देखे ही बनती, व्याख्या उन संयोगों की ॥
इन्द्रलोक तक फैल रही थी, 'राजगृहपुर' की महिमा।
धर्म, कर्म, सन्न्याय, नृपति, पुरजन की पूरी थी गरिमा ॥

चारों ओर पहाड़ खड़े थे, मानो पहरा देते हों।
अथवा अरि की सेनाओं से, पहले लोहा लेते हों॥
बाग-बगीचों की हरियाली, जनता की खुशहाली थी।
धरती ने फूलों के मिष से, मन की वाष्प निकाली थी॥
आने-जाने वाली जनता, नष्ट नहीं करती उपवन।
सुमन एक भी तोड़ गिराते, गिर जाता था उनका मन॥
बड़े-बड़े व्यापारी आते, करते सब अपना व्यापार।
माल बेचते देते लेते, लाभ कमाने में होशियार॥
सभी वस्तुएं मिल जाती थीं, उचित मूल्य पर लोगों को।
ठग जाने का भय न सताता, भोले—भद्रिक लोगों को॥
महावीर स्वामी ने चौदह, चौमासे थे किए वहां।
सेठ सुदर्शन जैसे व्रत धारी, थे श्रावक बड़े जहां॥
धर्म ध्यान होता रहता था; होता रहता था सत्संग।
धर्म सभाओं, चर्चाओं का, नित्य नया खिलता था रंग॥
श्रोताओं को सहज भाव से, सुनने को मिलता सज्ज्ञान।
पुण्य-पाप की हो जाती है, सुनने से सच्ची पहचान।

श्रेणिक का शासन

न्याय परायण श्रेणिक राजा, अपना राज्य किया करता
बिना दोष के नहीं किसी को, दण्ड विधान दिया करता

जनता का प्रिय, कुशल प्रशासक, बुद्धिमान था बहुत चतुर ।
दृढ़ समकित व्रत धारक कैसे, हो सकता है इधर-उधर ॥
आए देव परीक्षा करने, फिर भी 'श्रेणिक' रहा अडोल ।
देखावा करने वालों की, खुल जाया करती है पोल ॥
रंगी हुई थीं धर्म-रंग में, नस-नस 'श्रेणिक' नरवर की ।
मोहरछाप लगी थी मन पर, महावीर प्रभु जिनवर की ॥

सम्यक्त्वी का आदर्श :

सच्चा समकितधारी होता, कभी न दुनिया में आसक्त ।
पुत्र खिलाती सदा पराये, 'आया' क्या होती अनुरक्त ?
करने को करना पड़ता है, इस दुनिया में सारा काम ।
'मैं करता हूं, मैं करता हूं, लिया जाय क्यों ऐसा नाम ॥
जिस दर्जे का काम मिला है, ड्यूटी पूरी किए चलो ।
मैं-मैं दूर हटा कर मन से, नाम प्रभु का लिए चलो ॥
बन्धन कर्मों का होगा तो, होगा बिलकुल हलका-सा ।
आसानी से तोड़ सकोगे, जैसे उपरी छिलका-सा ॥
मोहासक्त बनो न हरगिज, थोड़ी-सी जिन्दगानी में ।
रहें जगत में ऐसे जैसे, शतदल रहता पानी में ॥
इन सब बातों के वर्णन से, कला सीखिए जीने की ।
घड़ियां बीती जाती ज्यों, तारीखें खतम महीने की ॥

'श्रेणिक' का परिवार :

'अभयकुमार' महामन्त्री था, अंगज 'नन्दाराणी' का।
श्रेणिक का सत्पुत्र पात्र है, अपनी धर्म-कहानी का॥
राणी एक 'चेलना' नृप की, जिसने धार्मिक ज्ञान दिया।
समकित शुद्ध हुआ नृप ने फिर, देव जिनेश्वर मान लिया॥
रानी एक 'धारिणी' सुन्दर, वर्णन जिसका करते हैं।
'ज्ञाताधर्मकथा' में ज्ञानी, कई पंक्तियाँ भरते हैं॥

मेघकुमार की माता का बाह्य स्वरूप :

करतल कोमल पदतल कोमल, कोमल सारा सुन्दर गात।
कोमलताओं को कर डाला, अपनी कोमलता से मात॥
अभिरूपा थी, प्रतिरूपा थी, प्रिय, वल्लभा, कान्ता थी।
पासाइया, दरिसणिज्जा थी, नाम 'धारिणी' शान्ता थी॥
मधु से मधुर बोलने वाली, चलने वाली धीमी चाल।
विधि ने अपनी कृतियों का बस, दिखलाया था यहीं कमाल॥
लक्षणयुक्त शरीर सुशोभित, उचित जगह पर मष-तिल हैं।
जगह गुणों ने घेरी पहले, अवगुण मिलने मुश्किल हैं॥
मानोन्मान प्रमाण कहा है, शास्त्रों में जो नारी का।
'श्रेणिक' ने सम्मान किया है, प्राणों से भी प्यारी का॥

सर्दी-गर्मी इसे नहीं हो, काट न जाए मच्छर भी।
आधि-व्याधि उत्पन्न नहीं हो, दिन-सा बीते वत्सर भी ॥
सम्मानित थी सभी जनों से, उचित किया करती थी काम।
सेवक से स्वामी तक सबके, मन का था भारी विश्राम ॥
अंग अनिन्दित, रंग अनिन्दित, ढंग अनिन्दित रहने का।
सभी अनिन्दित वंदित मानो, शेष नहीं कुछ कहने का ॥
वड़ी कुशल थी व्यवहारों में, चेष्टाएँ थी उचित सभी।
हास्य-विलास सभी संगत थे, वुरा कहा क्यों जाय कभी ॥
तैल-पात्र ज्यों सदा सुरक्षित, बहुमत थी,-बहु अनुमत थी।
वस्त्राभूषण की मंजूषा, जैसे ही आरक्षित थी ॥
प्रिय राजा को, प्रिय अपने को, प्रिय सारों को लगती थी।
इसीलिये यह सोते ही प्रिय, प्रिय-प्रिय करते जगती थी ॥

मेघकुमार की माता का आभ्यन्तर स्वरूप :

जिसको प्यार किया जायेगा, वही करेगा तुमसे प्यार।
प्यार प्यार से पैदा होता, खार वीज से होता खार ॥
दृष्टि समान हुआ करती है सृष्टि, नियम यह चलता है।
आप भला तो जगत भला है, लग भग यही निकलता है ॥
दुनिया के दिल में देखोगे, अपने ही मन का प्रतिबिंव।
दर्पण दिखा दिया करता है, असली-नकली बिना विलंव ॥

'श्रेणिक' का सौभाग्य समझिए, या सौभाग्य गिने इसका ।
भोग बहुलता में धार्मिक, जीवन बीत रहा जिसका ॥

क्रोध जीत कर, मान जीत कर, माया से रहती थी दूर ।
लोभ, मोह, ईर्ष्या, व्यसनों को, मानो किया कभी से चूर ॥
मैं ऊँची हूँ, ये नीचे हैं, ऐसा कभी न माना था ।
नव तत्त्वों को पढ़ लेने से, समता धर्म पिछाना था ॥
देव सदा 'अरिहन्त' मानती, और मानती गुरु 'निर्ग्रन्थ' ।
दया धर्म को 'धर्म' मानती, सत्य मानती अपना पन्थ ॥
शंका, कांक्षा कभी न करती, 'समकित' निर्मल रखती थी ।
साधर्मिक वात्सल्य बताते, कभी नहीं वह थकती थी ॥
राजभवन में रह करके भी, जीती थी सात्विक जीवन ।
सरल वचन, तन सरल, सरलतम-बना रखा था अपना मन ॥
कर्म-बन्ध से डरने वाली, सूझ-बूझ से लेती काम ।
अगर विवेक नहीं हो तो फिर, धार्मिक हो जाता बदनाम ॥

धर्म दिपाने वाले श्रावक, सच्चे 'श्रावक होते हैं ।
ढोंगी आप डूबते गुरु जी, को भी साथ डुबोते हैं ॥
धर्म किया जाता है केवल, जीवन शुद्ध बनाने को ।
उसमें ढोंग किया जायगा, खाने और कमाने को ॥

धारिणी रानी का महल :

पांचों वर्णों के रत्नों से, जड़ा हुआ आंगन अच्छा।
पांचों वर्णों के फूलों का, सजा रखा मानो गुच्छा॥
मलयज चन्दन की आती थी, मीठी ताजी तेज सुवास।
धूप सुगन्धित किया गया है, दीपक देते बड़ा प्रकाश॥
द्वार-द्वार पर लगा रखी थीं, सुन्दर - सुन्दर मालाएँ।
स्वर्ण-कलश ले हाथों में, चित्रित थी अप्सर बालाएँ॥
देव-भवन-सा भवन मनोहर, सेज सजी थी फूलों की।
शोभा अजब वनी थी आच्छादन के लिए दुकूलों की॥
सेमल तूले के जैसा था, स्पर्श सुकोमल शय्या का।
पुण्य-पवन अनुकूल सफल तब, खेना जीवन नैया का॥

श्वेत हस्ती का सपना :

सांसारिक आराम भोगती, बिता रही थी सुख के दिन।
पूरे नहीं किये जाते हैं, गिनते-गिनते दुख के दिन॥
सुख शय्या में सोई रानी, मध्य निशा के अवसर पर।
कुछ सोती थी, कुछ जगती थी, निद्रा आती रह-रह कर॥
चन्द्र-किरण-सा, सिन्धु-फेन-सा, और क्षीर-सा श्वेत महान।
महाशैल-सा सात हाथ का, हृष्ट-पुष्ट हस्ती गुण-खान॥

नीलगगन से उतर रहा है, मेरे मुख में आता है।
ऐसा सपना देख हर्ष से, मन फूला न समाता है ॥
तीस महासपनों में से है, हस्ती का भी सपना एक।
सपनों का भी अपना-अपना, अलग-अलग है बड़ा विवेक ॥
आनन्दित मन, आनन्दित तन, आनन्दित है वचन सकल।
शय्या से उठकर आती है, त्वरित नहीं है, नहीं चपल ॥
राजहंस-सी धीमी गति से, आई अपने पति के पास।
रत्न जटित सिंहासन पर वह, बैठ गई धरती उल्लास ॥
कोमल, मंगल, मधुर, मनःप्रिय, मित, गम्भीर, स्वरों से गान।
करने लगी जगाने पति को, उदय हुआ है प्रेम महान ॥

पति से निवेदन और प्रश्न :

आंख खुली राजा ने देखा, देवी सम्मुख है आसीन।
क्यों आई हो अर्धरात्रि में, लाई हो क्या बात नवीन ?
किया प्रणाम प्रिया का स्वीकृत, नरपति बोला-बोलो-बोल।
जो कुछ कहना मुझ से सब कुछ, कहो प्रिये ! हृत्पट दो खोल ॥

प्रियतम ! अभी-अभी देखा है, मैंने सपना एक महान।
इसका क्या फल होगा ? कहिये, आप बड़े ही हैं विद्वान ॥

सुनूं आपके मुख से अच्छा, तो मन को होगा विश्वास ।
'निर्णय अपने आप न लेना', कहता ऐसे नीति विलास ।।

सपने का फलादेश :

सुन करके हालात सपन के, 'श्रेणिक' हर्षित हुआ अपार ।
व्यापारी के मनोनुकूल ज्यों, चलता रहता हो बाजार ।।
नाच उठा मन, खिले रोम सब, हृदय उछाला मार रहा ।
कहा न जाता, लिखा न जाता, नहीं हर्ष का पार रहा ।।
चिन्तन-मनन किया सपने का, बोला-प्रिये ! सुनो दे ध्यान ।
धन्य ! धन्य ! हो लाख बार तुम, सपना देखा बड़ा महान ।।
अर्थ-लाभ, सुत-लाभ, राज्य का, लाभ इसी से होना है ।
समझो सपना क्या आया है, आया सुख का दोना है ।।
कुलाधार, कुल-तिलक यशस्वी, पुत्ररत्न तुम पाओगी ।
शूरवीर, गम्भीर, धीर नर- की जननी कहलाओगी ।।
हृष्ट, पुष्ट, सन्तुष्ट, स्वस्थ मन, बड़ी उम्र वाला होगा ।
अमृत प्याला, राज्य-प्रजा का, रखवाला आला होगा ।।
कुल की वेल बढ़ाने वाला, होगा पुत्र बड़ा विद्वान ।
विद्वानों की भरी सभा में, पाएगा पूरा सम्मान ।।
रत्नकुक्षि की धारन करने- वाली मानी जाओगी ।
इस सपने का ऐसा शुभ फल, नौ महिनों में पाओगी ।।

रानी की धर्म जागरणा :

हाथ ज़ोड़कर शीस नवाकर, बोली विनयवती शुभ बोल ।
अच्छा, सच्चा अर्थ आपने, बतलाया है सारा खोल ॥
जाने की अनुमति ले वापस, आई अपने शयनागार ।
श्रोतृ समाज सभी बातों पर, गहराई से करें विचार ॥
"सोना नहीं चाहिये मुझको, करना केवल धर्म ध्यान ।
सो जाने से अच्छे सपने, होते नहीं कभी फलवान ॥"
सपने का संरक्षण करने, रही जागती सारी रात ।
देव, धर्म की स्तवना करते- करते आया मधुर प्रभात ॥

सभा और स्वप्नपाठक :

'श्रेणिक' ने आदेश दिया है, अपनी सभा सजाने का ।
सेवक ध्यान रखा करते हैं, घोषित हुक्म बजाने का ॥
राजा उठा सुबह होते ही, किए नित्य के जो व्यायाम ।
व्यायामों से पाया जाता, शारीरिक उत्तम आराम ॥
गन्धोदक से, पुष्पोदक से, शुद्धोदक से करके स्नान ।
रोएँदार वस्त्र से पोंछा, पहने फिर उत्तम परिधान ॥
फूलों की मालाएं पहनी, चन्दन-लेप लगाया फिर ।
गहने पहने सुर-तरु-सा, अपने को शीघ्र सजाया फिर ॥

सज्जित और अलंकृत परिवृत, होकर आया है भूपेश।
सिंहासन पर शोभा पाता, लगा दीखने सौधर्मेश ॥
अपने-अपने स्थानों पर सब, बैठे शोभा पाते लोग।
शान्ति बनाने में होता है, इन सब बातों का सहयोग ॥
खास कारणों से ही ऐसी, सभा बुलाई जाती थी।
हर्षोत्सव के समय सभा यों, सरस सजाई जाती थी ॥
अपने से नजदीक नृपति ने, भद्रासन लगवाए आठ।
राज-सभाओं के होते हैं, इन्द्र सभाओं जैसे ठाठ ॥

सुन्दर, स्वच्छ, सफेद, शुभंकर, इधर कनात लगाई एक।
पशुओं और पक्षियों के थे, जिस पर चित्र विचित्र अनेक ॥
भद्रासन लगवाया अन्दर, रानी बैठी है आकर।
मानो सज्जित होकर के आ- बैठा कोई रत्नाकर ॥
सुना और देखा जाता हो, जहां बैठकर कार्यक्रम।
ऐसा वहां रखा हुआ था, सुन्दर से सुन्दर सिस्टम ॥

कहा सेवकों से—पहले तुम, एक काम अब कर आओ।
अष्ट निमित्त शास्त्र के ज्ञाता, विद्वानों को बुलवाओ ॥

स्वप्न पाठकों के घर जाकर, आमन्त्रण है दिया गया।
शुभ अवसर है राजा के घर, अर्थ यही बस लिया गया ॥

न्हा-धो सज्जित होकर निकले, अपने-अपने सब घर से।
एकत्रित हो राजसभा में, आए पूरे आदर से॥
निर्धारित स्थानों पर बैठे, देकर नृप को आशीर्वाद।
अपने-अपने कर्त्तव्यों को, रखना ही पड़ता है याद॥
राजा अगर नहीं दे आदर, पण्डित अगर न दे आशीष।
फिर दुनिया में हो जायेंगे, पन्द्रह-पन्द्रह पैंतालीस॥

पुष्प और फल ले हाथों में, पूछा है विद्वानों से।
सपना अपना साफ सुनाया, सुना हुआ जो कानों से।

शास्त्र खोलकर लगे सुनाने, वर्णन सारे सपनों का
भेद ज्ञान से हुआ न होगा, कभी परायों-अपनों का
राज्य-भोग-सुख-पुत्र, लाभ की, होगी प्राप्ति बहुत बड़ी
जिसके आगे नृत्य करेगी, सत्य-वशा श्री खड़ी-खड़ी
उत्तम जीव अगर आया हो, तो उत्तम सपने आ
लिखा हुआ जो है शास्त्रों में, पाठक पढ़कर बतला
ऐसे सपने से जो आता, वह नर होता नर-शृंगा
अथवा निश्चित भावित आत्मा, होता है उत्तम अणगा
नाम वंश का रोशन करता, धरता ऐसे पथ पे
धन्य ! धन्य ! कह उठता 'चन्दन', देख-देखकर उसको

विद्वानों का बहुमान :

राजा खुश था, रानी खुश थी, खुश था सारा ही परिवार ।
जैसे खुशी हुआ करती है, खुशियों का मिलते ही तार ॥
विद्वानों को किया पुरस्कृत, सत्कृत, आदृत दे बहुमान ।
इतना दिया जिन्दगी भर भी, नहीं पड़ेगा लेना दान ॥
भोजन करवा करके उन सब, विद्वानों को विदा किया ।
शुभ संकेत मिले भावी के, फर्ज पूछकर अदा किया ॥

गर्भवती की दिनचर्या :

सभी गए अपने स्थानों पर, बीत रहा है सुख से काल ।
गर्भावस्था में ही रखनी– पड़ती है ज्यादा सम्भाल ॥
माता की जीवन चर्या का, असर गर्भ पर होता है ।
इसीलिए ऋण माता का नर, अपने सिर पर ढोता है ॥
लूली, लंगड़ी, कानी, खोड़ी, बहरी, गूंगी हो सन्तान ।
केवल कर्माधीन न समझो, माता का भी है अज्ञान ॥
बालक की कमियाँ, कमियाँ है, मात-पिता के जीवन की ।
तनकी, मन की और वचन की, रहन-सहन की, फिर धन की ॥
गर्भावस्था में संयम से, रहना सीखो इनसानो !
अपने प्रति सन्तानों के प्रति, सहना सीखो इनसानो !

बिना त्याग के मातृ-पितृ-पद, नहीं सुशोभित हो सकता।
रोते हुए छोड़ पुत्रों को, पिता कभी क्या सो सकता ?
पहले बालक, पीछे रोगी, पीछे बूढ़े, पीछे सब।
मानवधर्म तकाजा करता, मत जाने दो नीचे अब ॥
क्योंकि आप भी बालक ही थे, अतः तोलिये मन अपना।
बीता युग भी सच्चा ही था, मत जानो केवल सपना ॥
जन्म-समय का दुःख आपको, याद नहीं है भूल गए।
बचपन की पीड़ाओं को कर- पार मोह में झूल गए ॥
जैसे आज बनें हों ऐसे, शुरुआत से ऐसे थे ?
और रहोगे फिर ऐसे ही, कहो सत्य तुम कैसे थे ?

अकाल मेघ दोहद :

सूझ-बूझ वाली थी रानी, समयज्ञा थी चतुर महान।
काल, भाव का, द्रव्य, क्षेत्र का, कितना आवश्यक है ज्ञान ॥
मास तीसरे में होती है, गर्भवती को जो इच्छा।
'दोहद' उसे कहा जाता है, बुरा तथा होता अच्छा ॥
धन्य-धन्य कृतपुण्य सभी वे, माताएँ हैं धरती पर।
गर्भकाल की इच्छाओं को, जो पूरण करती सुन्दर ॥
तभी स्वस्थता रह सकती है, उसके सारे ही तन में।
'चन्दन' चिन्तन करे 'धारिणी', रानी यों मन-ही-मन में।

दोहदान्तर्गत वर्षा ऋतु

मेघ घटाएँ पसर रही हों, चमक रही हो विद्युत जोर ।
देख रही हो तरुण मयूरी, नाच रहा हो वन में मोर ॥
झिरमिर-झिरमिर बरस रहा हो, चलता शीतल मन्द समीर ।
गड़गड़ गाज रहा हो विरही, जनगण मन हो बना अधीर ॥
नाले, निर्झर, नदियों में फिर, नीर नया ही बहता हो ।
'भरा हुआ हूँ मैं खुशियों से', उछल-उछलकर कहता हो ॥
टर्र-टर्र की आवाजों से, भरे जा रहे हों ये कान ।
शहरवासियों ! मान रहे क्यों, सुन्दर वन को शून्य स्थान ॥
चन्द्र, सूर, ग्रह, नक्षत्रों के, दर्शन रोक लिए सारे ।
दशों दिशाओं में छाए हों, मेघ पूर्णतः कजरारे ॥
गुँजारव करते हों भौंरे, मधुर-मधुर करके रसपान ।
'रसमय जीवन सुख देता है', यही दे रहे मानो ज्ञान ॥
अलग-अलग फूलों की खुशबू, इधर,उधर से आती हो ।
सबको लाभ लुटाती पूँजीवाद- मिटाना चाहती हो ॥
प्यास चातकों की बुझती हो, बून्दों के गिर जाने से ।
मतलब उन्हें नहीं हो कुछ भी, नदियों के भर जाने से ॥
हरियाली से हरा भरा हो, गिरि वैभार मनोहारी ।
पुलक-पुकलकर पंखी करते- हों उड़ने की तैयारी ॥

इन्द्रधनुष हो तना गगन में, इन्द्रायुध-सा लगता हो।
क्षण-क्षण वेश बदलकर मानो, इस दुनिया को ठगता हो॥
बना अंकुरों का मिष केवल, रोमांकुर हो आए हों।
भूमि प्रिया ने मेघनाथ के, दुर्लभ दर्शन पाए हों॥
हल संभाला, बैल संभाले, लगा जोतने भूमि किसान।
मानव का श्रम सफल बनाती, धरती निपजाती हो धान॥

दोहदान्तर्गत घूमने की विधि :

स्वच्छ सुकोमल सूक्ष्म वस्त्र हों, उड़ते जो लेने से श्वांस।
आभरणों से लदी हुई होऊं, पर, भार नहीं हो खास॥
आंखों में हो कजरा काला, माथे पे हो बिंदिया लाल।
गुँथे हुए हो फूलों से सब, मेरे शिर के सुन्दर बाल॥
नख से शिख तक बन ठन करके, चलूं घूमने उपवन में।
पति के साथ बनाती बातें, हर्षित होऊं तन-मन में॥
गंधहस्ति पर चढ़कर बैठूँ, पीछे बैठे हो पतिदेव।
चमर ढुलाते जाते हों पति- द्वारा पूरा हो अहमेव॥
पुर की जनता देख रही हो, सारी सेनाएँ हों साथ।
सुनी जा रही हो हर मुँह से, केवल मेरी-मेरी बात॥
धन्य-धन्य कहते हो सारे, करते हों मेरे गुणगान।
रानी के मन उपजा ऐसा, कितना ही ऊंचा अरमान॥

दोहद नहीं बताने से बीमारियां :

वर्षा ऋतु थी दूर, कहां से- 'दोहद' पूरा हो सकता ।
लगा सूखने रानी का तन, दिन-दिन जाता था थकता ॥
इच्छा व्यक्त नहीं की अपनी, कभी कहीं भी रानी ने ।
'चिन्ता चिता समान जलाती,' सत्य कहा है ज्ञानी ने ॥
मन की बातें मन में रखने से, कर देती हैं नुकसान ।
सुन सकते हों सारी बातें, ऐसे ढूँढ लीजिये कान ॥
पूरी होने वाली बातें, पूरी कर दी जाती हैं ।
अगर अधूरी रह जाएं तो, दिल को सदा सताती हैं ॥
सुना न पाता अपनी बातें, औरों की नहि सुन पाता ।
मस्तक बोझिल बन जाने से, मानव पागल बन जाता ॥

दासियों का उत्तरदायित्व :

अकलमन्द, थीं चतुर दासियां, पूछ रही हैं बारम्बार ।
क्यों न मालकिन ! हमें बताती, मन में आए हुए विचार ?
मुखाकृति बतलाती हमसे, पूरे-पूरे चिन्तित हो ।
समझ स्वामिनी ! हमको अपना, बतलावो जो इच्छित हो ॥
एक बार, दो बार तीसरी- बार विनय से पूछा फिर ।
किन्तु महारानी ने कुछ भी, दिया नहीं है प्रत्युत्तर ।

सोचा–क्यों न निवेदन करदें, नृप से इनकी बातों का।
फर्ज हमारा इसीलिए है, काम हमारे हाथों का॥
इनकी सेवा शुश्रूसा का, काम हमारे जिम्मे है।
ऐसा कहीं न कह दे कोई, सेवक सभी निकम्मे हैं॥
कह देना है फर्ज हमारा, चलो चलें राजा के पास।
सेवक पर ही स्वामी का- होता है जमा हुआ विश्वास॥

श्रेणिक को सूचना :

सुनिये स्वामिन्! रानी का तो, सूख गया है तन सारा।
पूछ-पूछ हम सब हारी अब, नहीं हमारा है चारा॥
बिना बताए पता न चलता, नहीं पिछाना जाता रोग।
क्या अनुमान लगाया जाये, कहते सभी सयाने लोग॥
अगर नहीं बतलायेंगी तो, घुट-घुट कर मर जायेंगी।
आप पूछिए, सम्भव है फिर, वे सच-सच फरमायेंगी॥

देव-गुरु की सौगन्ध :

सुनते ही नृप चौंका मन में, त्वरित-त्वरित चल आया है।
जैसा सुना दासियों से- उस से भी ज्यादा पाया है॥

आर्त्त ध्यान गत रानी का तन, सूखा पिंजड़ा दीख रहा।
राजा ने सोचा यों मन में, मेरा आना ठीक रहा॥

'प्रिये! तुम्हें क्या हुआ बतावो, तन क्यों सूखा जाता है?
जो चाहो सो अभी तुम्हारे, यहीं सामने आता है॥
हुक्म करो अय मनकी रानी! सकुचाती क्यों मेरे से।
मैंने मेरा राज आज तक, नहीं छुपाया तेरे से॥'

इतना कहने पर भी वापस, मिला न कोई प्रत्युत्तर।
क्या इस वक्त नहीं हैं अच्छे, रानी के ग्रह-नच्छत्तर॥
एक बार, दो वार, तीसरी- बार प्रश्न फिर करता है।
मगर महारानी का मुखड़ा, कुछ भी नहीं उचरता है॥
मन की वातें कहलाने का, काम नहीं कोई आसान।
फिर भी बात हाथ नहीं आती, अगर ले लिये जाएं प्राण॥
कहने की इच्छा होने से, बातें बतलायी जाती।
वरना घुमा-फिरा कर आगे- पीछे कर वाहर आती॥

पेट नहीं होता नारी के, ऐसे क्यो कहते हैं नर।
वात नहीं ले सकते हैं नर, हिचक-हिचक कर जाएं मर॥
लाखों बातें छिपा-छिपाकर, वन जाती नारी अनजान।
धरती ने क्या कहा कभी भी, गड़े हुए हैं यहां निधान॥

घोर यातनाएं सह लेती, देती कभी न अपना भेद।
विधि ने स्वयं बनाया गुप्त, रहस्यों का स्त्री-किला अभेद॥

'आया तुम्हें पूछने को मैं, तुम न मुझे बतलाती हो।
नई-नई दुलहन पति से ज्यों, महलों में शरमाती हो॥
मुझे अयोग्य समझती हो क्या, अपनी बात सुनाने को ?
आने को तो आया हूँ, स्वाधीन नहीं अब जाने को॥'

इतने पर भी रानी का तो, निकला नहीं एक भी बोल।
मानो बहरे जन के आगे, जोर-जोर से पीटा ढोल॥

श्रेणिक ने फिर अजमाया है, अब अपना अन्तिम हथियार।
'देव-गुरु की तुम्हें शपथ है', यदि न कहोगी सत्य विचार॥
हारा हुआ आदमी आखिर, बोलो क्या नहीं करता है।
ऐसे नहीं तो ऐसे ही वह, करता कभी न डरता है॥
देव-गुरु की शपथ दिलाना, कहिये क्या मामूली बात।
कहलाने को बात और कुछ, नहीं उपाय रहा था हाथ॥
खुद भी धर्म मानने वाला, शपथ खिलाए धर्मी को।
देव-गुरु से बढ़ कर प्यारा, क्या बतलाए धर्मी को॥
महावीर का भक्त बड़ा फिर, क्षायक समकितधारी था।
स्वयं तीसरे भव में जाकर, तीर्थंकर अवतारी था॥

शपथा-शामिता रानी ने सब, बातें स्पष्ट सुना डाली।
बहुत दिनों से भरा हुआ दिल, आज हो गया है खाली॥

श्रेणिक की चिन्ता :

आधा रोग कटा कहने से, आधा अब कट जायेगा।
सुनने वाला आधा बोझा, बोलो क्यों न उठायेगा॥

सुनकर राजा लगा सोचने, अभी दूर है वर्षाकाल।
किया जायगा कैसे पूरा, 'दोहद' इसको कहें अकाल॥
असमय में वर्षा का होना, नहीं किसी मानव के हाथ।
समझ लीजिये वास्तव में ही, है यह चिन्ता वाली बात॥
चाहे जब पुर को सजवालो, सेनाओं को लेलो साथ।
रानी आगे बैठे गज पर, चंवर करूं मैं अपने हाथ॥
वर्षा ऋतु के बिना अधूरा, रह जायेगा सारा काम।
किन्तु प्रयत्न किए जायेंगे, कार्य सिद्धि के लिए तमाम॥

बोला राजा-सुनो प्रिये! मत चिन्ता-फिक्र करो कोई।
जैसे दोहद पूरा होगा, कार्य करेंगे हम वो ही॥
'दोहद' पूरा करवाने का, समझो सारा मेरा काम।
नाम लीजिये महावीर का, आप कीजिये अब आराम॥

यदि पहले ही कह देती तो, नहीं सूखती यह काया
तुम ऐसे सकुचाती हो, मैं– इतना अभी समझ पाया ॥

पति का कर्त्तव्य और आश्वासन :

अपनी पत्नी की इच्छाएं, पति पूरण करवाता है।
पकड़ा हाथ हजारों में वह, उसको सदा निभाता है ॥
उचित व्यस्वथा कर देना ही, पति का फर्ज बताया है।
इतने पर भी 'होनहार को- नमस्कर' यों गाया है ॥
किसी बात की कमी नहीं है, रहने भी क्यों देंगे हम।
वेवकूफ तो नहीं, सुनहला, अवसर क्यों चूकेंगे हम ॥
'दोहद' पूरा करवाने से, उत्तम होती है सन्तान।
गर्भवती की इच्छाओं पर, पूरा दिया जा रहा ध्यान।
कभी-कभी ऐसा हो जाता, मुश्किल से खुलती है गांठ।
करो प्रयत्न खोलने का ज्यों, और अधिक घुलती है गांठ
क्या यह बात कही जायेगी, सुनकर लोग हंसेंगे क्या
मेरे मन की बातों पर फिर, मीठा व्यंग कसेंगे क्या
प्रश्न आपका और आपका, उत्तर समुचित पा लेते
घुट-घुट कर मन-ही-मन में, वे अपना देह सुखा देते
कर आश्वस्त मधुर वचनों से 'श्रेणिक' बाहर आता है
'दोहद' पूरा करने को अब, कैसी अकल लड़ाता है

दोहा

कभी सोचता—ठीक है, कभी - कभी बे - ठीक ।
देखो अब क्या कर रहा, 'श्रेणिक' नृप निर्भीक ॥

'अभय' का आगमन :

कोई नहीं उपाय सूझता, श्रेणिक बैठा हिम्मत्त हार ।
इतने ही में आजाता है, मन्त्रीश्वर श्री अभयकुमार ॥
किया प्रणाम 'अभय' ने श्रेणिक-नृप को मानो पता नहीं ।
कौन गया आया अब उसको, ध्यान जरा भी रहा नहीं ॥
लगा सोचने 'अभय'-सदा मैं, देखो जब भी आता हूं ।
पूज्य पिताजी की आत्मा से, शुभ आशीषें पाता हूं ॥
आता हुआ देख दूर से, स्मित नयनों से लेते देख ।
सत्कृत, सम्मानित अर्धासन- देकर करते बड़ा विवेक ॥
मेरे साथ किया करते थे, राज्य-काज की चर्चाएं ।
मस्तक सूंघा करते थे वे, नहीं झेलते अर्चाएँ ॥
इससे ऐसा लगता है ये, घिरे हुए हैं चिन्ता से ।
मुझे पूछना ही बेहतर है, कारण राष्ट्र-नियन्ता से ॥
अपने आप नहीं कहते हैं, बड़े आदमी अपनी बात ।
क्यों संकोच रखूँ मैं ये हैं, पूज्य पिताजी पृथ्वीनाथ ॥

'अभय' का प्रश्न :

जय हो-जय हो कहता मुख से, आया सिंहासन के पास।
बोला विनय भरे शब्दों से, आज आप क्यों बने उदास॥
मेरे आने का भी अब तक, पता नहीं जो लग पाया।
इसीलिए मैं स्वयं पूछने, श्रीचरणों में चल आया॥
जो भी हो चिन्ता का कारण, हृदय खोलकर बतलाएं।
पिता पुत्र के नाते कुछ भी, कहते अभी न सकुचाएं॥

'श्रेणिक' का प्रत्युत्तर :

अभय! अभय! तुम कब आए यों, विस्मय सहित बुलाता है।
चिन्ता का जो कारण था वह, सारा ही बतलाता है॥
तेरी लघु माता को ऐसा, ऊंचा 'दोहद' आया है।
कैसे पूरा किया जायगा, रस्ता अभी न पाया है॥

'अभय' का साहस :

"बोला 'अभय'-पिताजी! सुनिये, चिन्ता करने का क्या काम।
ऐसे काम करूंगा तब ही, लिखा जायगा मेरा नाम॥

काम बुद्धि का, चतुराई का, साहस का मैं करता हूँ।
सागर की गहराई में भी, जोखिम झेल उतरता हूं॥
लघु माता के मन की इच्छा, सारी पूरी कर दूंगा।
पूज्य पिताजी की चिन्ताएँ, जड़ामूल से हर दूंगा॥"
सुनकर 'अभय' पुत्र की बातें, 'श्रेणिक' मन में फूल रहा।
'अभय' अभय ही है वास्तव में, भाग्य बड़ा अनुकूल रहा॥
श्रेणिक ने सत्कार किया है, अपने पुत्र सलोने का।
सोचा-अब यह कठिन कार्य भी, निश्चित पूरा होने का॥
उठकर किया प्रणाम 'अभय' ने, जाने की अब अनुमति हो।
राजा गया महल में देखो, अब आगे क्या विधि-गति हो॥

'अभय' का देवाराधन :

मानवीय कर्त्तव्यों से यह, काम असम्भव दिखता है।
ध्यान 'अभय' का देवाराधन- करने पर अब टिकता है॥
दिव्यशक्तियों से हो जाते, काम असम्भव जो लगते।
नाम देवताओं का लेकर, लोग किन्तु अब हैं ठगते॥
देव-देवियां सदा सत्य हैं, कौन इसे करता इन्कार।
बहिष्कार कर देना अच्छा, धोखेबाजों का हर बार॥

हर पत्थर में देव-देवियां, अगर बोलने लग जाएं।
सोए हुए सभी मुर्दे फिर, क्यों न यहां पर जग जाएं।
अपना पुण्य उदय होने पर, देव किया करते सहयोग।
सभी समझते हैं देवों का, मुश्किल से मिलता संयोग।
अच्छा रिश्ता होने पर ही, मित्र मित्र को देता दाद।
पूर्व जन्म के मित्र देव को, 'अभय' अभी करता है याद।

विधि और स्मरण :

'पौषधशाला' में जाकरके, अट्ठमव्रत स्वीकार किया।
देवाराधन की विधि करके, मन में धीरज धार लिया।
अन्न नहीं, जल नहीं, फलों का, रस भी लेना छोड़ दिया।
अपनी आत्मा के परिणामों को, सुमरिन में जोड़दिया॥
दृढ़ संकल्प देवताओं को, धरती पर ले आता है।
काम असंभव जो दिखता हो, सम्भव उसे बनाता है॥
अपनी दृढ़ता लाभ दिखाती, कायरता करती नुकसान।
इसीलिए तो कहा गया है, आत्मा को करिये बलवान॥
कम्पित हुआ देव का आसन, करता कोई याद मुझे।
क्या करना चाहता है अपनी, दुःख भरी फरियाद मुझे॥
किसने याद किया है ? क्या है ? मेरे लायक कोई काम।
'अवधिज्ञान' लगाकर देखा, 'अभयकुमार' मित्र का नाम॥

मित्र देव का आगमन :

पूर्व जन्म का स्नेही मेरा, तीन दिनों से भूखा है।
एकासन से बैठा सुमिरन - करने से कब चूका है ॥
स्थगित किया कार्यक्रम सारा की तैयारी आने की।
उचित विलम्ब नहीं होता है, यदि इच्छा हो जाने की ॥
वैक्रिय 'समुद्घात' के द्वारा, सूक्ष्म पुद्गलों का ले सार।
सुन्दर रूप बनाया अपना, मानो नया लिया अवतार ॥
'अभय' मित्र पर अनुकम्पा कर, त्वरित गति से आया आप।
द्वीप-समुद्रों में से होता, मानो करता उनका माप ॥
शरत् चन्द्र-सा सौम्य, सूर्य-सा- तेज, गन्ध कस्तूरी-सी।
दिव्यौषधियों से सज्जित था, शोभा नहीं अधूरी थी ॥
स्नेह, प्रीति, बहुमान 'अभय' के, प्रति सम्पूर्ण भरे दिल में।
बोले लोग-प्रकाश पुंज यह, आया कैसे भूतल में ॥

'अभय' से देवता की बात :

'अभयकुमार' मित्र के सम्मुख, हाजिर होकर बोला देव।
"मैं सौधर्मकल्प" का वासी, मित्र ! यहां आया स्वयमेव ॥
तुमने मेरा ध्यान लगाया, मेरा आसन डोल उठा।
मानो मुझे जगाने को ही, अपने स्वर में बोल उठा ॥

मानव का मजबूत मनोबल, देवों को करता आधीन।
मानव सभी दृष्टि से उत्तम, कभी न माना जाए हीन॥
क्या इच्छा है कहें आपकी, निःसंकोच करें आदेश।
क्या दूं ? क्या फिर करूं ? आपकी-सेवा में ही खड़ा हमेश॥
किसके लिए किया आपने, अपने मित्र देव को याद।
मित्र मित्र की मदद किया, करता है इसमें नहीं विवाद॥"

बोला 'अभय' देव के दर्शन, कभी न खाली जाते हैं।
जो न हमारे से होता है, तब ही तुम्हें बुलाते हैं॥
मेरी लघु माता को ऐसा, अ-समय 'दोहद' आया है।
पूरा उसे कीजिये सुहृद्! इसके लिए बुलाया है॥

बोला देव–मित्र ! आप अब, करो पारना तेले का।
अब मैं जिम्मेवार बना हूं, उलझे हुए झमेले का॥
लघु माता का अ-समय-'दोहद', पूरा कर दिखलावूंगा।
काम आपका अच्छा करके, देवलोक में जावूंगा॥

अ-समय में दिव्य वर्षा :

'वैक्रिय समुद्घात' के द्वारा, गगन बनाया मेघाच्छन्न।
गाज-बीज क्या कभी जगत से, रहता देखा है प्रच्छन्न॥

झिरमिर-झिरमिर लगा बरसने, आया असमय पावस काल।
किया देव ने, किन्तु जगत ने, जाना कुदरत बड़ी कमाल ॥
ऋतुएँ लगीं पलटने कैसे, लोग अचम्भा करते हैं।
देव-प्रकोप जान कर भोले- भाले मानव डरते हैं ॥

धन्यवाद ज्ञापन :

ध्यान पार कर उठा 'अभय' अब, बोला-मित्र ! धन्य हैं आप।
कष्ट आपको दिया गया है, पहले मुझे कीजिये माफ ॥

"अभय ! इसे जो कष्ट मानता, तो आता क्यों तेरे पास।
मित्र काम नहिं आयेगा तो, कौन उसे देगा शाबाश ॥
जीवन में गर भला किसी का, किया नहीं तो क्या जीना।
जिस पीने से प्यास न बुझती, वह पीना फिर क्या पीना ॥
अपना काम सभी करते हैं, किया अगर औरों का काम।
मानव तो वह कहलाता है, समझो देव उसी का नाम ॥
आप मित्र हैं मेरे तो फिर, काम आपका क्यों नहिं हो।
दृढ़ मन से जो किया गया हो, सु-फल जाप का क्यों नहिं हो ॥"

बातें करके मित्र देव से, अभय गया भूपति के पास।
मित्र देव के द्वारा मैंने, काम बनाया की अरदास ॥

'श्रेणिक' की प्रसन्नता :

तेरी लघु माता का 'दोहद', अब पूरा हो जायेगा।
ऐसे प्रिय पुत्रों को पाकर, क्यों न पिता हरषायेगा॥
प्यारे-प्यारे पुत्र अभय ! मैं, वहुत प्रसन्न तुम्हारे से।
अखिल जगत जीवित है जैसे, पावन भूमि-सहारे से॥
'श्रेणिक' का सम्मान न होता, होता जो न अभयकुमार।
मिष्टान्नों के बिना मनाया, जाता नहीं कहीं त्योहार॥
जावो, करो पारना सुख से, किया बहुत ही अच्छा काम।
काम किए जाने पर अच्छा, रहता है करना आराम॥
काम अधूरा छोड़ घूमने-फिरने को चल देते हैं।
समझो उनके काम उन्हें फिर, ऐसे ही फल देते हैं॥
किया जायगा जो तन-मन से, वही काम होगा अच्छा।
दर्द पेट में हो जाता है, खाना खाने से कच्चा॥

दोहद-पूर्ति की तैयारी :

कहा सेवकों से राजा ने, "राज पथों पर हो छिड़काव।
धूपबत्तियों से, फूलों से, करो सुगन्धित अति गरकाव॥
सेनाओं को करो सुसज्जित, गन्धहस्ति 'सेचनक' सजा।
मेरी आज्ञा मुझे सौंपिए, सारा अपना फर्ज बजा॥

'श्रेणिक' सिंहासन से उठकर, अब महलों में आता है।
काम बन गया-काम बन गया, खुशियां खूब मनाता है॥
चलो तुम्हारा असमय-'दोहद', अब पूरा करवाना है।
हो जाओ तैयार त्वरित ही, हमे घूमने जाना है।'

'श्रेणिक' से सम्वाद सुना जब, काम पूर्ण हो जाने का।
गर्व हुआ रानी को इतना, योग्य श्रेष्ठ पति पाने का॥
स्नानगृह में गई शीघ्र ही, न्हा-धोकर तैयार हुई।
रानी के जीवन में आई, समझो एक बहार नई॥
सूखी - रूखी अलसाई-सी, रहती थी जो नित्य उदास।
वही विकस्वर हुई कमलिनी, पाकर रवि का नया प्रकाश॥
कपड़े पहने, गहने पहने, किए उचित सोलह श्रृंगार।
प्रभु चरणों में वंदन करने, रानी शीघ्र हुई तैयार॥
हस्ति 'सेचनक' पर चढ़ते ही, रानी का मन उलसा है।
खिले नयन, मुख खिला, खिला तन, मानो नील कमल-सा है॥
अश्वों की सुभटों की सेना, रथों, हस्तियों की सेना।
सर्व ऋद्धि-द्युति सहित चले हैं, वर्णन सारा कह देना॥

'राजगृह' के चौराहों पर, भीड़ लगी है जनता की।
नृप-दर्शन पाने की इच्छा, प्रबल जगी है जनता की॥

'श्रेणिक' राजा स्वयं नहा-धो, सज्जित होकर आया है।
रानी के पीछे हस्ती पर, निज आसन लगवाया है॥

सवारी की शोभा :

चंवर ढोलने लगा स्वयं नृप, अपने प्यारे हाथों से।
कितना सुन्दर वातावरण, बना होगा इन बातों से॥
गाए जाते गीत मनोहर, वाद्य बजाए जाते हैं।
शब्द दिगन्तों तक जाकर वे, कानों से टकराते हैं॥
दुंदुभियों के मधुर स्वरों से, लगा गूँजने नीलाकाश।
देव सोचने लगे हो रहा, उत्सव कोई अपने पास॥
जगह-जगह पर जनता द्वारा, किया जा रहा अभिवादन।
बड़ा कठिन कहलाता कविको, कर देना सब प्रतिपादन॥

स्त्रियों का समानाधिकार :

गर्भवती होती ही रहतीं, सदा काल से स्त्रियां अनेक।
ऐसा अवसर पाने वाली, किन्तु 'धारिणीदेवी' एक॥
सोचा होगा सभी स्त्रियों ने, यह सम्मान हमारा है।
नारी के आगे देवों का, राजा भी बे-चारा है॥

किया जिन्होंने गृहरानी का, उचित और पूरा सम्मान ।
हुई उन्हें संप्राप्त सुलक्षण- वाली सुन्दरतम सन्तान ॥
कोसा कलहकारिणी कहकर, माना घोर नरक का द्वार ।
उन पुरुषों का हो न सकेगा, किसी तरह से भी उद्धार ॥
पुरुष और नारी ने मिलकर, यह संसार रचाया है ।
मानव जाति सुरक्षित रखकर, ऊंचा इसे उठाया है ॥
'पुरुष उच्च है, स्त्रियां हीन हैं, कहने वाले बुद्धि-विहीन ।
समाधान है, समीचीन यह, आत्मा नहीं किसी की दीन ॥
अपने कर्त्तव्यों का समुचित, पालन करने वाला उच्च ।
स्त्री का चोला होने से ही, कभी न मानी जाती तुच्छ ॥
निज पत्नी के साथ घूमने, आज लोग जो जाते हैं ।
क्या अपराध हुआ उनका जो, उनको बुरा बताते हैं ॥
महारानियां राजसभाओं, में बैठा करती थीं पास ।
देखा, सुना, पढ़ा क्या उनका, किया किसी ने भी उपहास ?

रीति-रिवाज बदलते हैं :

समय-समय पर रहे बदलते, जो सामाजिक रीति-रिवाज ।
कल जो बुरा कहा जाता था, माना जाता अच्छा आज ॥
वृद्धों ने अपनी आंखों से, देखे थे जो रीति-रिवाज !
अपने कुल में, खानदान में, क्या वे दीख रहे हैं आज ?

बदचलनों को बुरा बताया, है प्रत्येक जमाने में।
मात्राएं बढ़ जातीं केवल, कलियुग के आ जाने में॥
किन्तु आप जब अच्छे हैं तो, कलियुग क्या कर सकता है।
धर्मी धर्माराधन करते - कैसे किससे रुकता है॥

रानी का वन-विहार :

वनों, काननों, उद्यानों, वन-खण्डों में, आरामों में।
घूम रही है, मान रही है, रानी सुख इन कामों में॥
टहल रही नदियों के तटपर, देख रही उनका संगम।
स्वर्ग-सुखों से प्रकृति का सुख, कभी नहीं होता है कम॥
स्नान कर रही बहते जल में, और कर रही जल क्रीड़ा।
क्रीड़ाओं में किसी तरह की, कभी न रह पाती व्रीड़ा॥
चम्पक की डाली को पकड़े, झूम रहीं है मस्ती से।
नहीं देखता मुझको कोई, दूर आगई बस्ती से॥
बल्लरियों को ले बाहों में, सुख पाती है स्पर्शन से।
फूलों-सा मन फूल रहा है, प्रकृति के आकर्षण से॥
कभी खोलती, कभी मूंदती, रानी अपने नेत्रों को।
नयनामृत से सींच रही है, उपवन के उन क्षेत्रों को॥
सूंघ रही है, चूम रही है, तरह-तरह के फूलों को।
मानो साधक शोध रहा है, जीवन की हर भूलों को॥

डाल पके फल तोड़-तोड़ कर, लेती है उनका आस्वाद।
रट-रट कर विद्यार्थी करता, अपने पाठों को ज्यों याद॥
गहन गुफाओं और कन्दराओं- में आगे तक जाती है।
मुक्तभाव से, मुक्त हवा का, वह आनन्द उठाती है॥
खाती-पीती और खेलती, थोड़ी-बहुत लगाती दौड़।
सब को पीछे छोड़ चली है, मानो लगी हुई है होड़॥
खुशियों की घड़ियों को क्षण से, माप लिया करते हैं लोग।
वर्णित किए गए शास्त्रों में, पंचेन्द्रिय वाले सुख-भोग॥

दोहद का समापन समारोह :

अपना दोहद पूरा करके, रानी आई है आवास।
अपनी आत्मा से देती है, राजा 'श्रेणिक' को शाबास॥
मेरे लिए किया सभी कुछ, कमी न कोई रहने दी।
रोम-रोम में फूल रही है, बात नहीं है कहने की॥
खुश है महल, झरोखा खुश है, खुश है शय्या सोने की।
पवन बधाई देता मानो, 'दोहद' पूरा होने की॥
कोना-कोना गूंज रहा है, रानी के गुण-गानों से।
यही अपेक्षा की जाती है, कवियों से, विद्वानों से॥
ऐसे-ऐसे शुभ अवसर ही, करते सब को हर्ष प्रदान।
उत्तम अवसर नहीं चूकते, आगे रहते हैं विद्वान॥

'अभय' द्वारा देव विसर्जन :

आया पौषधशाला में अब, 'अभयकुमार' प्रसन्नमना।
मित्र'देव का धन्यवाद कर, फ़र्ज़ निभाया है अपना ॥
किया विसर्जन मित्र देव का, पूजा करके विविध प्रकार।
जिससे काम लिया जाता है, माना जाता है उपकार ॥
निर्जर ने निर्माण किया जो, सारा खेल समाप्त हुआ।
किन्तु 'धारिणी' रानी के हित, इतना बस पर्याप्त हुआ ॥
नहीं मेघ है, नहीं बिजलियाँ, नहीं कहीं हरियाली है।
नदियों में जल नहीं दीखता, पड़ी हुई हर खाली है ॥

नारी और गर्भकाल :

ाना, पीना, सोना, उठना; चलना रहकर सदा सचेत।
सा करना गर्भवती के, लिए सदा होता अभिप्रेत ॥
क दिवस का काम नहीं है, पूरे नौ मासों का काम।
ता को आराम मिले तो, मिले गर्भ को भी आराम ॥
दा सोना, ज्यादा जगना, ज्यादा भार उठाना जी !
दा हंसना ज्यादा रोना, असमय आना-जाना जी !
मीठा, ज्यादा तीखा, ज्यादा कड़वा खाना जी !
ज्यादा हो जाने से, पड़ता है पछताना जी !

पीछे रोने से पहले ही, सावधान हो जाना जी !
जिस से घर वालों को देखो, कष्ट न पड़े उठाना जी !
'पहलन गहलन होती है' यह, नहीं कहावत है झूठी।
माता बन कर पहनी जाती, अनुभव वाली अंगूठी ॥
सुन करके, पढ़ करके जाना- जाता दुनिया का व्यवहार।
उसके पीछे हुआ न करता, अपने अनुभव का आधार ॥
कभी गर्भ भी गिर जाता है, हो जाता है इधर-उधर।
इसीलिए वर्जित है करना, कष्ट उठा कर बड़ा सफर ॥

स्वयं सयानी है रानी, प्रति समय खबर सब लेते हैं।
जिन पर भी विश्वास करोगे, ध्यान सदा वे देते हैं ॥
परिचर्या में रहने वाली, सभी दासियां अच्छी हैं।
देखा हुआ जमाना पूरा, नहीं उम्र की कच्ची हैं ॥
चिन्ता, सोग, मोह, दैन्य, भय, पास न आने देती है।
अच्छा लगता वही नहीं जो, अच्छा रहता लेती है ॥
धर्म ध्यान किया करती है, रखती है शुभ अध्यवसाय।
इससे बढ़कर और जगत में, माना कोई नहीं उपाय ॥

सुख से, अतिसुख से यों रानी, गर्भ - पालना करती है।
प्रसव समय नज़दीक मानकर, कभी-कभी कुछ डरती है ॥

मन की दुर्बलताएं आखिर, कभी-कभी आजाती है।
क्या होगा? इस प्रश्न चिह्न पर, जब निज नज़र टिकाती है॥
होना होगा हो जायेगा, ऐसे फिर करती सन्तोष।
कुछ भी कभी न बन सकता है, पहले करने से अफ़सोस॥
वर्तमान को मान दीजिये, भूतकाल को जाएं भूल।
निपट लिया जायेगा जब भी- आएगा भावी वातूल॥
अकल स्वयं की और दूसरों- का लेती सुन्दर सहयोग।
रानी के शुभ कर्मोदय से, हैं अनुकूल सभी संयोग॥

जन्म और बधाइयां :

निकले हैं नौ मास सुखों से, निकले हैं दिन साढ़े सात।
जन्म पुत्र का इधर हो रहा, इधर हो रही आधी रात॥
अंगसेविकाओं ने देखा, जन्मा पुत्र मनोहारी।
समाचार 'श्रेणिक' को देने, तत्क्षण दौड़ चली सारी॥
जय हो-जय हो कहती बोलीं-'घड़ी आज शुभ आई जी!
जच्चा बच्चा दोनों खुश हैं, खुशियां खूब मनावो जी!
जैसे रहे लुटाते पहले, हीरे लाल लुटावो जी!
'श्रेणिक' के मन की खुशियोंका, मानो कोई पार नहीं।
श्रोता स्वयं समझ लें, लिखने- कहने में कोई सार नहीं॥

मधुर-मधुर वचनों से उनका, राजा ने सत्कार किया।
दासीपना सभी के शिर से, नृप ने तभी उतार दिया॥
सात पीढ़ियां खाएं इतना, दिया नृपति ने उनको दान।
दान महान गिना है उससे- अधिक महान गिना सम्मान॥
गई दासियां हर्षित होतीं, लगीं नाचने ज़ोरों से।
समझ रही हैं अपने मन में, कम हैं क्या हम औरों से॥
बनो चिरायु राजकंवर जी ! बढ़ो 'धारिणी' का सम्मान।
जिनके ज़रिये पाया हमने, मान भरा लाखों का दान॥
सेवा करने वाले को ही, मेवा मिलता आया है।
अच्छा किया दिया जो अच्छा, अच्छा ही बतलाया है॥

आज के दाता और दान :

मन को छोटा करके देना, कैसा कहलाता है दान।
दो जितनी ताकत हो उतना, कौन तुम्हारा है महमान॥
दिया प्रेम से उसे प्रेम से, लेने वाले मिलते कम।
कितना ही देवो उनको तो, कम-कम लगती बड़ी रकम॥
दाता पहले घर देखेगा, देखेगा फिर लोकाचार।
लेनेवाले के लालच का, बोलो कब आता है पार॥
लावो-लावो करते-करते, रिश्ते सारे बिगड़ गए।
छिपा रहा क्या कहो किसी से, कितने ही घर उजड़ गए॥

लाती-लाती थक जाती है, लड़की अपने पीहर से।
आना छोड़ दिया जाता है, आखिर लाने के डर से॥
देन-लेन के इस प्रकरण में, किया ज़रा सा यह संकेत।
बात बिगड़ जाने से पहले, हो जाते हैं सुज्ञ सचेत॥

जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में :

उदय सूर्य का और पुण्य का, मानो आज हुआ है साथ।
'श्रेणिक' ने बुलवाये सेवक, खड़े सामने जोड़े हाथ॥
सुनो ध्यान से कान लगाकर, आज्ञा आज हमारी है।
नगर-सफाई करवाने की, लेनी जिम्मेवारी है॥
छोटी-छोटी गलियां सारी, और नालियां होंगी साफ़।
बड़ी-बड़ी सड़कों को शुचितर, करवावोगे अपने आप॥
सभी जगह छिड़कावो पानी, फूलों-सी खुशबू वाला।
उस मार्ग से चलने वाला, बन जाता हो मतवाला॥
चौक-चौक में नाच गान के- लिये बना देना है मंच।
उतने ही अतिमंच बनावो, तज करके छल-ढौंग-प्रपंच॥
अलग-अलग हो रंग सभी के, और ध्वजाएं अलग-अलग।
चन्दनकलश सभी द्वारों पर, सजवाना हो पूर्ण सजग॥
खम्भे-खम्भे पर लटकाना, फूलों की शुभ मालाएं।
खुले पुष्प लेकर थालों में, खड़ी हुई हों बालाएं॥

कहीं कुश्तियां मल्ल लड़ेंगे, नृत्य करेंगे नर्तक लोग।
कहीं कथाएं होंगी सुन्दर, कहीं योग के नये प्रयोग॥
कहीं ज्योतिषी बैठे होंगे, बतलाते जीवन विज्ञान।
वीणावादन करने वाले, कहीं छोड़ते होंगे तान॥
जय-जय करने वाले, वाद्य- बजाने वाले लोग अनेक।
सुन्दर सुन्दरतर सुन्दरतम- करना, कमी न रखना एक॥
पुत्र जन्म की खुशियों में यह, दश दिन तक करवाना है।
नहीं मनाया गया कभी भी, उत्सव दिव्य रचाना है॥

नहीं किसी से लिया जायगा, समझे, किसी तरह का शुल्क।
खाए पीए और कमाए, खुशी मनाए मेरा मुल्क॥
छोड़ो सभी बन्दियों को भी, कारागृह के खोलो द्वार।
कहा जाए—फिर अपराधों के, बन न जाएं कभी शिकार॥
राज मांगता जितना जिन में, वह ऋण छोड़ दिया जाए।
उतना ही धन उस खाते में, अपना जोड़ लिया जाए॥
मानोन्मान बढ़ाया जाए, जनता को पहुँचाएं लाभ।
केवल अपना स्वार्थ साधना, होता ही है बड़ा खराब॥

राज़ महल की खुशियां खुशियां- होतीं सारी जनता की।
होती है सरकार शिवंकर, वोही प्यारी जनता की॥

नामकरण व प्रीतिभोज :

प्रसव क्रियाएं पूर्ण हुई हैं, पहले दिन सोत्साह सकल।
किया रात्रि जागरण दूसरे, दिन सज्जन लोगों ने मिल ॥
चन्द्र - सूर्य - दर्शन करवाया, गया तीसरे दिन में फिर।
किए गए शुचिकर्म सभी, दिन- बारह बीत गए सुन्दर ॥
किया गया है बहुत बड़ा अब, प्रीतिभोज का आयोजन।
इस मिष से मिल जाते सारे, प्यारे सुहृद और स्वजन ॥
अशन, पान, खादिम, स्वादिम- का सारे लेते हैं आस्वाद।
पीछे किए गए भोजनों- की किसको रहती है याद ॥
कभी आज से पहले हमने, कहीं न देखा है ऐसा।
'मुझको तो लगता है ऐसा, लगा आपको भी कैसा ?'
अपनी और पराई बातें, होतीं ऐसे अवसर पर।
'श्रेणिक' की शोभा करते हैं, छोटे और बड़े सब नर ॥

आए हुए सभी लोगों का, किया गया आदर-सत्कार।
भोजन से बढ़कर होता है, सच्चा प्रेम भरा व्यवहार ॥
बड़े - बड़े लोगों का होता, बड़ों - बड़ों से ही सम्बन्ध।
बड़े - बड़े कामों के ख़ातिर, होता ही है बड़ा प्रबन्ध ॥
शाकाहारी लोग सभी थे, शाकाहारी खाने थे।
शाकाहारी भोजन के ही, सारे वे दीवाने थे ॥

असली घी की सभी मिठाइयां, हलवा सब्जी आदिक सब।
इसीलिए ही स्वस्थ लोग थे, सुखी सभी थी जनता तब॥
भोजन पूर्ण हुआ शान्ति से, धोए सभी जनों ने हाथ।
पहले-पीछे उठा न जाता, यदि बैठे हों सारे साथ॥
मालाएं पहनाई, अर्पण— किए गए हाथों में फूल।
वैसा करना ही पड़ता है, कहलाता जो युगानुकूल॥
बड़े प्रेम से, बड़े प्यार से, सब का ही यों कर सम्मान।
सस्मित मुख से राजा 'श्रेणिक' ऐसे बोले मधुर ज़बान॥

'सुनो बन्धुओं! जब यह लड़का, माता के उर आया था।
'दोहद' बड़ा अकाल मेघका, सम्पूर्ण करवाया था॥
इसीलिए यह पुत्र हमारा, 'मेघकुमार' कहलायेगा।
गुणनिष्पन्न नाम से सारा- जग इसको बोलायेगा॥

मान्य रखा सारे स्वजनों ने, सुत को देते शुभ आशीष।
भली-बुरी शब्दावलि का फल, मिल जाता है विश्वाबीस॥
शकुन-शास्त्रियों ने माना है, शुभ शब्दों का श्रेष्ठ शकुन।
शब्दों से ही हो जाता है, मानवता का मूल्यांकन॥
आयोजन की पूर्ण सफलता, 'श्रेणिक' के मन का सन्तोष।
अच्छी ऊंची योग्य व्यवस्था, में क्यों रह पाएगा दोष॥

दान याचकों को दे करके, लिया गया था यश भारी ।
लगा रखी है इस उत्सव में, श्रेणिक ने सम्पत सारी ॥

आम सभा का आयोजन :

दोहा

सारी नगरी को हुआ, मानो हर्ष अपार ।
तुरत सजाए जा रहे, सारे ही बाज़ार ॥

हर्ष बधाई के शुभ गाने, गाती हैं घर-घर नारी ।
देने बड़ी बधाइयां आई, मिल करके जनता सारी ॥

गीत

महाराजा 'श्रेणिक' ने, सभा जिसदम लगाई है,
उछलती नाचती गाती, प्रजा वह दौड़ आई है ।
रहे थे खूब खिल मुखड़े, जवानों बाल बूढ़ों के,
खुशी बस आज जामे में, किसी के न समाई है ।
झुकाकर शीस राजा को, बड़े ही प्रेम-प्रीति से,
गुंजाया एकदम अम्बर, सभी ने जय बुलाई है ।

गुणानुवाद गा कर के, निकट महाराज के जाकर,
विनय से हाथ निज जोड़े, मधुर वाणी सुनाई है।
हमारा भाग्य जो जागा, खुशी का आया दिन भागा,
करो स्वीकार अय 'चन्दन', बधाई है—बधाई है॥

दोहा

'श्रेणिक ने सब का किया, भारी आदर-मान।
हीरे लाल मिठाइयां, दिया यथोचित दान॥

धात्री और शिशुकाल :

किया जा रहा जिस रीति से, सुन्दर सुत का संवर्द्धन।
राज-घराने और ज़माने- का जिसमें है दिग्दर्शन॥
पांचों[1] धात्री मिलकर लालन, पालन करतीं बालक का।
आमोदों से और प्रमोदों– से मन भरतीं बालक का॥
अपने वेश, बोलियां अपनी, बहुत दासियां[2] थीं हाज़िर।
सीख लिया जाता है सब कुछ, उन्हें देखकर या सुनकर॥

---

१. १. क्षीरधात्री, २. मण्डनधात्री, ३. मज्जनधात्री, ४. क्रीड़नधात्री, ५. अङ्कधात्री।

२. १. कुब्जिका, २. चिलातिका, ३. वामनिका, ४. वटभा, ५. बर्बरी।

अच्छी ऊंची सत्सेवा से, बालक अच्छा होता है।
ज्यादा उसे संभाला जाता, जो धन कच्चा होता है॥
सभी इशारे और मनोभावों, को समझ लिया करतीं।
कहने का कुछ काम नहीं था, अपने आप किया करतीं॥
बड़ी निपुण प्रत्येक कार्य में, रूपवती लावण्यवती।
बुद्धिमती दिखतीं दिपतीं, वे थीं युवती - तारुण्यवती॥

बालक का आलिंगन करतीं, करतीं चुम्बन परिवन्दन।
इस गोदी से उस गोदी में, लिया जा रहा है नन्दन॥
रत्नजड़ित आंगन में नीचे, कभी खेलने देती हैं।
थोड़ा-सा रोते ही फिर वे, गोदी में ले लेती हैं॥
पियो दूध यह मिश्री मिश्रित, जियो जगत में सौ-सौ साल।
कूख उजालो जननी की तुम, 'श्रेणिक' नृप के प्यारे लाल!
गाती सुन्दर गीत-लोरियां, झुला रही हैं पालणियां।
नन्हें मुन्ने के हाथों में, पकड़ा रखतीं झुनझुनियां॥
जब तक सोया रहता है वह, तब तक सोने देती हैं।
आस-पास में कभी किसी का, शब्द न होने देती हैं॥

---

६. वकुसिका, ७. योनका, ८. पल्हविका, ९. ईसिनिका, १०. धोसकिनिका, ११. लासिका, १२. लकुसिका, १३. द्राविड़ी, १४. सिंहली, १५. आरवी, १६. पुलिन्द्री, १७. पकुर्णी, १८. वहली, १९. मुसंडी, २०. शबरी, २१. पारसी आदि।

धीरे बोलो चलो देखिये, सोया है अब राजकुमार।
कच्ची निद्रा में जगते ही, रोना-धोना है तैयार॥
दूध नहीं पीता है जिस दिन, और नहीं फिर सोता है।
नजर गई लग आज किसी की, वहम यही बस होता है॥
कच्चे पौधे ज्यों बालक की, बड़ी कठिन है रखवाली।
सुन्दर खिलती है फुलवारी, अगर चतुर होता माली॥
गिरि-कुंजों में चम्पक-पादप, जैसे सुख से बढ़ता है।
तेज-प्रताप साथ में बढ़ता, जैसे सूरज चढ़ता है॥

बचपन और संस्कार :

लगा बैठने और खड़ा रहने, को जिस दिन 'मेघकुमार'।
चलना-फिरना सीखा, सारे- उत्सव किए गए हर बार॥
दान किया है, पुण्य किया है, जिस दिन मुण्डन करवाया।
बांटे स्कूलों में मोदक तो, गौओं को चारा डलवाया।
पुरस्कार पा नापित फूला, मन में नहीं समाया है।
'दिन-दिन चमके चन्दा-सा यह', मीठा वचन सुनाया है।

लगा दिनों-दिन अब तो बढ़ने, राजपुत्र उल्लासों में।
चमका-दमका सूरज-सा वह, बालक कुछ ही मासों में।

बात-बात में मचल बैठना, और रूठना तुतलाना।
सभी क्रियाएं सुन्दर होतीं, रोना भी होता गाना॥
यह तोड़ा, वह फोड़ा घर में- उधम मचाये रखना जी!
बालक नहीं समझते किसको, कहा जा रहा थकना जी!
पल में हंसना, पल में रोना, पल में जगना, सोना है।
पल-पल रूप बदलते रहना, बालक एक खिलौना है॥
क्रोध नहीं है, मान नहीं है, लोभ नहीं है, नहीं माया।
सत्य, सरलता, करुणा का, अवतार उसे है बतलाया॥

कहा किसी ने 'ईसा' से— भगवान हमें दिखलाइयेगा।
एक उठा वे बच्चा बोले– अच्छी तरह लखाइयेगा॥

जाना जा सकता है इससे, कैसा बच्चा होता है।
सुमन मनोहर जग-उपवन का, सब से अच्छा होता है॥
उज्ज्वल निर्मल कोमल दिल ज्यों, रेशम लच्छा होता है।
करे शरारत कितनी चाहे, रोकर सच्चा होता है॥
दिल का साफ हुआ करता है, कभी न रखता मन में पाप।
लाज-शरम किससे की जाती, बालक नहीं समझता आप॥
सारे लोग कहा करते– भगवान रूप ये बालक हैं।
बादशाह क्या चीज बड़ी है, बालक मन के मालिक हैं॥

संगीत मेघकुमार

देश, जाति का और वंश का, जिससे बनना था शृंगार।
ऐसा ही था अद्भुत बालक, 'श्रेणिक' का वह 'मेघकुमार'।

दोहा

किया यहां तक देखिये, पहला वर्षण पूर्ण।
वर्षण से ही कृषक की, चिन्ता होती चूर्ण॥
'चन्दन' नन्दन बढ़ रहा, करता अति कल्लोल।
बचपन जैसी वस्तु क्या, होती है अनमोल॥
शिक्षण होगा उद्वहन, होगा दिक्षण योग।
अगले वर्षण में सुनें, इन बातों को लोग॥
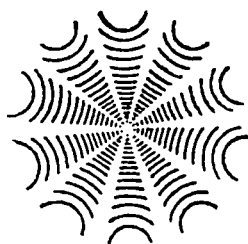
अथ दूसरा वर्षण

दोहा

सत्शिक्षा संसार का, सचमुच में श्रृंगार।
शिक्षा के संस्कार ही, हैं उत्तम संस्कार ॥
शिक्षा से ही सुधरती, मानव की सन्तान।
शिक्षा से ही समझिए, राष्ट्र-धर्म की शान ॥
शिक्षा से विकसित हुआ, आज यहां विज्ञान।
मानव के मस्तिष्क की, सारी उपज महान ॥
शिक्षा कैसी चाहिये, क्या शिक्षा का काल।
नहीं अभी तक हल हुआ, कितना बड़ा सवाल ॥
मेघकुमार चरित्र का, वर्णन बहुत विचित्र।
शिक्षण का चित्रण सही, सुनिये सारे मित्र !

शिक्षण का समय और विधि :

आठ वर्ष से कुछ ऊपर जब, 'मेघकुमार' हुआ जाना।
सोचा माता और पिता ने, शिक्षण इसको दिलवाना॥
कलाचार्य के पास बैठता, पढ़ने को अब राजकुमार।
तीक्ष्ण-बुद्धिवाले विद्यार्थी, हो जाते हैं शीघ्र तैयार॥
लिखना-पढ़ना सीखा, सारा, कला बहत्तर[1] सीखी और।
मेघकुमार छात्र मेधावी, कलाचार्य करते हैं गौर॥

---

१ १ लेहं २ गणियं ३ रूवं ४ नट्टं ५ गीयं ६ वाइयं ७ सरगयं ८ पोक्खरगयं ९ समतालं १० जूयं ११ जणवायं १२ पाढयं १३ अट्ठावयं १४ पोरेकत्तं, १५ दगमट्टियं १६ अन्नविहिं १७ पाणविहिं १८ वत्थविहिं १९ विलेवणविहिं २० सयणविहिं २१ अज्जं २२ पहेलियं २३ मागहियं २४ गाहा २५ गीइयं २६ सिलोयं २७ हिरण्णजुत्ति २८ सुवन्नजुत्ति २९ चुन्नजुत्ति ३० आभरणविहिं ३१ तरुणीपडिकम्मं ३२ इत्थिलक्खणं ३३ पुरिसलक्खणं ३४ हयलक्खणं ३५ गयलक्खणं ३६ गोणलक्खणं ३७ कुक्कुडलक्खणं ३८ छत्तलक्खणं ३९ दंडलक्खणं ४० असिलक्खणं ४१ मणिलक्खणं ४२ कागणिलक्खणं ४३ वत्थुविज्जं ४४ संधारमाणं ४५ नगरमाणं ४६ वूहं ४७ पडिवूहं ४८ चारं ४९ परिचारं ५० चक्कवूहं ५१ गरुलवूहं ५२ सगडवूहं ५३ जुद्धं ५४ निजुद्धं ५५ जुद्धातिजुद्धं ५६ अट्ठिजुद्धं ५७ मुट्ठिजुद्धं ५८ वाहुजुद्धं ५९ लयाजुद्धं ६० इसत्थं ६१ छरुप्पवायं ६२ धनुव्वेयं ६३ हिरण्णपागं ६४ सुवण्णपागं ६५ सुत्तखेडं ६६ वट्टखेडं ६७ वालियाखेडं ६८ पत्तछेज्जं ६९ कडगछेज्जं ७० सज्जीवं ७१ निज्जीवं ७२ सउणरुयं।

योग्य बनाकर राजपुत्र को, राजसभा में लाया है।
"पूछो जो कुछ उसे पूछना, मैंने इसे पढ़ाया है॥"
योग्य स्थान पर कलाचार्य को, श्रेणिक ने बिठलाया है।
क्या जाना क्या पढ़ा परीक्षा- देने को सुत आया है॥
पूछे सूत्र, अर्थ भी पूछे, पूछे उनके और प्रयोग।
राजपुत्र के उत्तर सुनकर, आश्चर्यान्वित होते लोग॥
कलाचार्य से कम न दीखता, 'मेघकुमार' हुआ है पास।
उसको जो शाबास मिले वे, मिले गुरु जी को शाबास॥
सफल हुआ श्रम कलाचार्य का, 'मेघकुमार' बना होशियार।
राजा करने लगा प्रशंसा, शिक्षा स्तर को बारम्बार॥

प्रीतिदान दे कलाचार्य का, किया गया भारी सम्मान।
वस्त्र और आभूषण आदिक, देकर किया बहुत गुणगान॥
सादा खाना, सादा पीना, रहन-सहन फिर सादा था।
इसीलिए सच्ची शिक्षा पर, खर्च न आता ज्यादा था॥

कलाचार्य होते सन्तोषी, व्यसन न आने देते पास।
मनसा, वाचा और कर्मणा, करवाते अच्छा अभ्यास॥

विनयधर्म ही, नीतिधर्म ही, शिक्षा का होता था मूल।
मूल सुरक्षित होने से ही, देता वृक्ष सदा फल-फूल॥

वर्तमान की शिक्षा :

शिक्षित किये जा रहे हैं या- किये जा रहे हैं बेकार।
पास अगर वे नहीं हुए तो, मरने को होते तैयार॥
जीवन के संस्कार न सुधरे, क्या है ऐसी शिक्षा से।
पेट नहीं जो भरा जाए फिर, क्या है ऐसी भिक्षा से॥
शिक्षा का स्तर उठा बताते, जो ये बातें सच्ची हैं।
तो जीवन की स्थिति पहले से, बोलो कितनी अच्छी है?

इन लोगों से पूछो बातें, बीते हुए जमाने की।
क्या इतनी चिन्ता थी पहले, खाने और कमाने की?
विषय लिया जाता था ऐसा, जो आता जीवन में काम।
जीवनउपयोगी विद्याएं, मानो विस्मृत हुईं तमाम॥
विद्याएं वे आज कहां जो, जीवन का निर्माण करें।
सभी तरह उत्थान करें औ- आगे को कल्याण करें॥

सभी तरह से कलाचार्य को, सम्मानित कर विदा किया।
गुरु के प्रति कर्त्तव्य शिष्य का, राजपुत्र ने अदा किया॥

यौवन का समय :

बड़ा मनोहर बचपन बीता, आया यौवन अंगों में।
जीवन रंग दिखाया करता, जैसे तरल तरंगों में॥
सोए हुए हुए हैं जागृत, अंग और प्रत्यंग सले।
भरे सरोवर में सूर्योदय– होते ही ज्यों कमल खिले॥
सभी तरह के युद्धों में भी, माना जाता बड़ा कुशल।
स्वस्थ शरीर प्रशस्तमना, प्रत्येक क्षेत्र में सदा सफल॥
देशी भाषाओं का ज्ञाता, गीत नृत्य का भी विद्वान।
देवपुत्र-सा लगा दीपने, 'मेघकुमार' बड़ा बलवान॥
शूर, साहसी जहां कहीं भी, असमय में जा सकता था।
निर्भय,निश्छल,सबल,किसीका, रोका कभी न रुकता था॥

एक रूप होता है अपना, कपड़े होते रूप हज़ार।
यौवन है रूपों का राजा, लाता अपने आप निखार॥

मेघकुमार के महल :

अपने प्यारे सुत के खातिर, आठ भवन बनवाए हैं।
देव विमान भूमि पर मानो, देवलोक से आए हैं॥
नया रंग है, नया ढंग है, नये-नये हैं सारे चित्र।
गगनांगण को चूम रहे हैं, जिनके प्यारे शिखर विचित्र॥

सभी झरोखों में रत्नों की, लगी हुई हैं मालाएं।
इनमें से झांकेंगी कोई, भाग्यशालिनी बालाएं ॥
नाना मणि-मंडित आंगन में, पैर फिसलने लगते हैं।
अपनी चिकनाई से मानो, मक्खन को भी ठगते हैं ॥
शोभनीय हैं, दर्शनीय हैं, पुण्डरीक शतपत्र समान।
दर्शक को रुकने का मानो, खड़े हुए करते ऐलान ॥

मध्य भाग में इन आठों के, एक बनाया है प्रासाद।
भवनों से जो दुगुना ऊंचा, मन को उपजाता आल्हाद ॥
नीचे खम्भे लगे सैकड़ों, अपने शिर पर लेकर भार।
खूब घड़े हैं खूब खड़े हैं, मानो सच्चे पहरेदार ॥
वृषभ,तुरग,नर,किन्नर,कुंजर, विहग, व्याल के चित्र बने।
मानो सभी जाति के प्राणी, दीवारों पर मित्र बने ॥
विद्याधर विद्याधरियों के, चित्र साथ में बने महान।
यन्त्रों द्वारा संचालित थे, कितना विकसित था विज्ञान ॥
शिखर ध्वजाओं से मंडित हैं, सारा धवल बना है धाम।
सूर्य-चन्द्र की किरणें मानो, वहां ले रही हैं विश्राम ॥

मात-पिता की क्या इच्छा है, समझ गए हैं सारे लोग।
योग्य पुत्र के लिए मिलाये, जाते हैं सारे संयोग ॥

राजपुत्र की शादी होगी, लायेंगे कुल वधुएं आठ।
आठों भवनों में आठों के, होंगे बड़े निराले ठाठ ॥
बड़े महल में रहते होंगे, 'मेघकुमार' अकेले आप।
इतनी तैयारी का मतलब, लगा दीखने सबको साफ़ ॥

पति और पत्नियां :

पहले लाकर पाली जातीं, योग्य लड़कियां अपने घर।
उनके साथ किया जाता था, ब्याह समय आ जाने पर ॥
गृह अनुकूल सिखाए जाते, उनको सारे ही व्यवहार।
गृह संचालन का होता है, योग्य-गृहणियों पर ही भार ॥
रूप, रंग, लावण्य और कुल, गुण, वय सारे एक समान।
वज़न और ऊंचाई अथवा, एक सरीखा मानोन्मान ॥
मीठे बोल बोलने वाली, चलने वाली धीमी चाल।
पति-आज्ञा का पालन करने- वाली हाथ-पांव सुकुमाल ॥
विनय बड़ों का करने वाली, रखती स्नेह सभी के साथ।
ईर्ष्या, चुगली, अहंकार से, रहती दूर हज़ारों हाथ ॥

ऋतु-अनुकूल बनाने वाली, खाना-पीना सब घर पर।
स्वाश्रित जीवन जीने वाली, नहीं परायों के शिर पर ॥

ावनता को प्यार दिखाने- वाली अपने अन्तर से।
मन मोहन करने वाली हो, वचन मोहिनी मन्तर से॥
धर्म-कर्म करने की अभिरुचि, अच्छे, ऊँचे हों आचार।
ऐसे दम्पतियों का निभता, सच्चा एक सरीखा प्यार॥
सुख में-दुख में, सदा निभाती, अपने प्राणप्रिय का साथ।
रंग भंग कर देने वाली, कहती नहीं व्यंग की बात॥
सहनशक्ति वाली हो सुन्दर, भक्ति-ज्ञान का जिसे विवेक।
समय परखने वाली, पहले, पति का चेहरा लेती देख॥
दो आत्मा के मधुर मिलन को, माना जाता खरा विवाह।
सदा झगड़ने वाले सुनते, नहीं किसी की सत्य सलाह

वर छोटा हो बड़ी बहू हो, छोटी बहू बड़ा हो वर।
ऐसे जोड़े दुखी रहा करते- हैं देखो जीवन-भर॥
अपढ़,अयोग्य,आलसी नर को, उत्तम कन्या दी जाये।
सुख होने की आशा ही फिर, बोलो कैसे की जाये॥

एक साथ में ही आठ :

राजपुत्र का ब्याह रचाया, लाए हैं कन्याएं आठ
एक साथ में एक जगह पर, मानो लगे निराले ठाठ

तिथि, नक्षत्र, करण सब देखे, देखा चन्द्रलग्न का बल
स्थिर लग्नों में किया गया ही, होता पाणिग्रहण सफल ।

प्रीतिदान तब दिया पुत्र को, मात-पिता ने धर उत्साह ।
आवश्यक सब कुछ हो जाता, हो जाने के बाद विवाह ।।
आठ कोटि सोने-चांदी की, आठ-आठ सारा सामान ।
आठों वधुओं को सब चीजें, मिल जायेंगी एक समान ।।
कनकावलि, मुक्तावलि, रत्ना- वलि, एकावलि आठ उदार ।
सिंहासन, भद्रासन, वासन, कासन सारे आठ प्रकार ।।
आठ दास हैं, आठ दासियां, पंच धाइयां भी हैं आठ ।
आठ बिछौने तकिये हैं तो- आठ-आठ हैं छप्पर खाट ।।
आठ-आठ गिन दिए गए हैं, सभी तरह के आभूषण ।
उनके रखने की मंजूषा, आठ-आठ हैं गत दूषण ।।
आठ गिल्लियां,आठ थिल्लियां, पालखियां,हय,गय,रथ आठ।
गोव्रज आठ, आठ-आठ हैं– अति उपजाऊ गांव विराट ।।
दीपक, ऊर्ध्वदण्ड के दीपक, अभ्र पटल आच्छादित दीप ।
ोने के, चाँदी के अथवा, स्वर्ण-रूप्य से मिश्रित दीप ।।
ाम,धरिम,परिच्छेद्य मेयधन, चार तरह का दिया विपुल ।
ा है भण्डार नृपति ने, मानो खोल दिया है दिल ।।

स्वर्ण,रत्न,मणि,मौक्तिक,विद्रुम, शंख, प्रवाल दिये अनपार।
सात पीढ़ियों तक सुखपूर्वक, भरा रहेगा धन भण्डार॥
दान दिये जाने में अथवा, खाने और खिलाने में।
है पर्याप्त, सभी स्वजनों ने, माना उसी ज़माने में॥
एक-एक कर सभी वस्तुएं, लगा बांटने मेघकुमार।
दिए बिना लेने का होता, नहीं किसी को भी अधिकार॥
अपनी-अपनी चीजें अब ले– जातीं अपने भवनों में।
सम बंटवारा हो जाने से, फूट न पड़ती स्वजनों में॥

जीवन का आनन्द :

आठ रानियां अजब ठाठ हैं, नाच गान होते हरदम।
योग-भोग के साधक देखो, जगते ज्यादा, सोते कम॥
शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शमय, भोग रहा है भोग विपुल।
'मेघकुमार' मानता अपने, मन में मानव जन्म सफल॥
नृत्य-गान की धूम मची— रहती है राजमहल में नित्य।
पता नहीं लगता है मानो— उगता-छिपता कब आदित्य॥
होठ फुरकने से पहले ही, सब कुछ हाज़िर होता है।
अपनी इच्छा से जगता है, इच्छा से ही सोता है॥
सभी पत्नियां मना रही हैं– मौज योग्य वह पाने की।
खुशियां 'मेघ' मानता अच्छी, संगिनियां मिल जाने की॥

रूप-रंग अच्छा मिल जाता, मिलता अच्छा और स्वभाव।
सब कुछ अच्छा मिला 'मेघ' को, किसी वस्तु का नहीं अभाव॥
सुख के सिवा सुना-देखा हो, तब दुनिया का होता भान।
राजपुत्र है सब बातों से, आज तलक बिल्कुल अनजान॥

पूर्वजन्म-कृत पुण्यकर्म का, हो भण्डार भरा भारी।
उसी मनुज की हो सकती हैं, इच्छाएँ पूरण सारी॥
कमियां अपनी करणी की ही, कमियां बनकर मिलती हैं।
तेल ख़त्म हो जाने से फिर, नहीं दीपिका जलती है॥
हाथी भव में एक शशक की, दया 'मेघ' ने पाली थी।
ऊंचा पैर उठाए रख कर, उसकी जान बचाली थी॥
दयाधर्म ने फल दिखलाया, आया राजघराने में।
ऐसे अच्छे गायक के क्यों, होगा भंग तराने में॥
सुन्दर-स्वस्थ शरीर इन्द्रियां, पांचों पूरण पाई हैं।
सभी तरह के सुख-भोगों की, मानो रिम-झिम छाई है॥
कमी नहीं है किसी बात की, मात-पिता का प्यारा है।
आठ तरुणियों के जीवन का, सच्चा एक सहारा है॥

'श्रेणिक' के थीं बहुत रानियां, और—बहुत थे राजकुमार।
फिर भी इसके लिए नृपति के, मन में बहुत अधिक था प्यार॥

अगर पिता के पुत्र एक हो, प्यारा वह तो क्या प्यारा।
बहुत पुत्र होने पर प्यारा, प्यारा लगता वह न्यारा॥
'कोणिक' भी सुत था 'श्रेणिक' का, 'श्रेणिक' का सुत 'अभयकुमार।'
पुत्र-पुत्र का फ़र्क समझिये, अपनी करणी के अनुसार॥
मिला 'मेघ' को प्यार अधिक क्यों, पुण्य कमाकर लाया है।
आक बीज बो, आम आज तक, नहीं किसी ने खाया है॥

भोगी, त्यागी होगा :

'मेघकुमार' महा मुनि होगा, महावीर स्वामी के पास।
महापुरुष लेते आये हैं, सदा काल से ही संन्यास॥
कर्म-शूर कहलाने वाले, धर्म-शूर कहलाते हैं।
भोग भावना त्याग, मुक्ति के- अक्षय सुख अपनाते हैं॥
थोड़ा-सा सुख पाने पर भी, त्याग नहीं कर सकता नर।
इतने-इतने भोग छोड़कर, 'योग' लिया जायेगा फिर॥
राग-रंग तज मन को काबू, रखना लगता बड़ा कठिन।
छोड़ स्त्रियों को, लिया जायगा- 'ब्रह्मचर्यव्रत' आजीवन॥
प्यारा कोई नहीं किसी का, सब को पैसा प्यारा है।
इन्हीं सभी पैसों से 'चन्दन', करना कभी किनारा है॥
खाते सुबह, दुपहरे खाते, खाते शाम, रात को फिर।
'चौविहारव्रत' लिया जायगा, वह भी देखो जीवन भर॥

प्रभु का पदार्पण :

करते हुए विहार जिनेश्वर, त्रिशलानन्दन श्री महावीर।
अप्रतिबद्ध समीर सरीखे, सागर से भी अति गंभीर॥
अष्ट महाप्रतिहार्य मनोहर, अतिशय कहलाते चौंतीस।
अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, जीवदयाणं हैं जगदीश॥
अशरण शरण महा सुखकारी, दीन-अनाथों के भी नाथ।
राजगृह-गुणशीलक वन में, आए उसी समय की बात॥
शुभागमन का शहरवासियों- को जब पूरा पता चला।
भक्त जनों का बड़े हर्ष से, हृदय उसी क्षण है उछला॥

यत्र-तत्र-सर्वत्र शहर में, एक यही होती थी बात।
महावीर प्रभु जी आए हैं, पायेंगे दर्शन साक्षात॥
तथारूप अरिहन्तों का, भगवन्तों का पावन अभिधान।
सिर्फ नाम सुनने का ही तो, बतलाया फल बड़ा महान॥
वन्दन, नमन और सेवा के, फल का तो फिर क्या कहना।
चित्त नित्यप्रति यही चाहता, उनके चरणों में रहना॥
धार्मिक एक वचन भी उनका, सुनने का सौभाग्य मिले।
जितने किए मनोरथ मन ने, सुख पूर्वक वे यहां फले॥
सुनकर प्रभु की मंगल वाणी, जीवन में जो लेता धार।
जन्म-मृत्यु का दुख मिटाकर, भव सागर का पाता पार॥

चलो वन्दना करने प्रभु को, धर्म देशना सुनने को।
सम्यक्त्वी दृढ़ - प्रियधर्मी, व्रतधारी श्रावक बनने को॥
हित,सुख,क्षेम, निश्रेयसकारी, होगा इन बातों का फल।
बहुत लाभकारी बतलाया, जाता सत्संगति का पल॥

सभी जाति के, सभी तरह के, लोग चले प्रभु-दर्शन को।
अवसर मुश्किल से मिलता, प्रभुचरण कमल संस्पर्शन को॥
अच्छे कपड़े, गहने पहने, चन्दन-लेप लगाकर फिर।
चले जा रहे लोग हजारों, राजगृहपुर के बाहर॥
बालक बूढ़े और स्त्रियां भी, चली जा रहीं एक तरफ़।
शब्द ध्वनि कानों में आती, समझ न आता एक हरफ़॥
राजमार्ग संकीर्ण हो गए, जनता की है भारी भीड़।
डर है धरती की छाती में, हो जाए न भारी पीड़॥
आगे बढ़ो, चलो, ओ प्यारे! हमको भी तो आने दो।
रस्ता रोके खड़े न रहिये, जल्दी-जल्दी जाने दो॥
मैं पहले, मैं पहले पहुंचूं, इच्छा करते सारे लोग।
धक्के-मुक्के खाना गिरना, बड़ी भीड़ के सारे रोग॥

कौन-कौन है आया इनमें, कभी नहीं पहचाना जाय।
मानवसागर उमड़ पड़ा है, इतना ही बस जाना जाय॥

बच्चों से कहती माताएँ, छोड़ न देना मेरा हाथ।
मित्र-मित्र का साथ दे रहा, पति देता पत्नी का साथ॥
नया सुनेंगे, सुने हुए का, निश्चित अर्थ समझ लेंगे।
बुरी आदतें, सप्तव्यसन सब, त्याज्य आज से तज देंगे॥
अणुव्रत, शिक्षाव्रत ले करके, हम 'श्रावक' बन जायेंगे।
पंच महाव्रतधारी बनकर, जैन श्रमण कहलायेंगे॥
एक स्थान पर, एक साथ में, बैठेंगे हम सब मिल कर।
यह पूछेंगे, वह पूछेंगे, प्रश्न साधुओं से खुल कर॥
देव-देवियों को देखेंगे, जन-मेला यह मिला महान।
धर्म ध्यान का ध्यान नहीं है, कुछ लोगों का ऐसा ध्यान॥

छिद्रान्वेषी, द्वेषी, द्रोही, ईर्ष्यालु भी आते हैं।
'कुछ भी नहीं रखा है' ऐसे, लोगों को बहकाते हैं॥
हम न मानते-हम न मानते, जाते हैं लोगों की लाज।
मनोभावनाएं बतलाती, उनकी अपनी ही आवाज़॥
गज पर कोई, रथ पर कोई, शिविका पर कोई आसीन।
कोई पैदल चले जा रहे, अपनी-अपनी धुन में लीन॥

देव-देवियों के परिकर से, इन्द्र स्वयं भी आते हैं।
'समवसरण' की सारी रचना, अच्छी तरह बनाते हैं॥

मेघकुमार का प्रश्न :

बैठा महल-झरोखे में से, देख रहा था 'मेघकुमार'।
पूछा पार्श्वस्थित सेवक से, आज कौनसा है त्यौहार ?
इन्द्र, स्कन्द, शिव, नाग, यक्ष, वैश्रमण महोत्सव आया है ?
नदी, सरोवर, वृक्ष, चैत्य, पर्वत का पर्व मनाया है ?
जिससे पुरवासी जन सारे, सज - धज करके आते हैं।
फूले नहीं समाते देखो, शीघ्र-शीघ्र ये जाते हैं॥

सेवक का उत्तर :

इन्द्रादिक का नहीं महोत्सव, नहीं पहाड़ों की यात्रा।
जिसके लिए जा रही इतने, लोगों की भारी यात्रा॥
देवानुप्रिय! महावीर भगवान, यहां पर आये हैं।
उनके दर्शन पाने को ये, सारे लोग लुभाये हैं॥
देवलोक से इन्द्र, देवगण, प्रभु-सेवा में आते हैं।
अच्छे अवसर का उत्तम जन, पहले लाभ उठाते हैं॥
बिना भाग्य के ऐसे अवसर, हाथ भला कब आते हैं।
अक़लमन्द न भूल कभी भी, ऐसा समय गंवाते हैं॥
पहुंच तुरत ही चरण-कमल में, पूरा लाभ उठाते हैं।
क़िस्मत को चमकाते 'चन्दन', सोया भाग्य जगाते हैं॥

दर्शन की तैयारी :

सुन करके वृत्तान्त उसी क्षण, कौटुम्बिक को बुलवाया।
घोड़ों का रथ सजा हुआ ले- आवो जल्दी, फरमाया॥
न्हा-धो सज्जित होकर रथपर, बैठ गया है 'मेघकुमार'।
चला साथ में लेकर अपने, भृत्यों का पूरा परिवार॥
प्रभु-दर्शन पाने की इच्छा, प्रबल हुई है तन-मन में।
पहुँचा शीघ्र और शीघ्र फिर, 'गुणशैलक' नामक वन में॥
रथ से उतर गया है तत्क्षण, प्रभु के दर्शन पाते ही।
अभिगम पांच किए सम्पूरण, समवसरण में आते ही॥
किये नयन स्थिर, किया चित्त स्थिर, जोड़ लिए हैं दोनों हाथ।
आया है अब चलता-चलता, बैठे जहां त्रिलोकी-नाथ॥
'तिक्खुत्तो' का पाठ बोलकर, विधियुत वन्दन करता है।
विनय-विवेक पुरःसर जिनवर, भक्ति स्वयं आदरता है॥

महावीर की धर्मदेशना :

सारी परिषद जमा हुई है- धर्म - देशना प्रभु देंगे।
सुननेवाले सुन लेंगे पर, लेने वाले ले लेंगे॥
पशु-पक्षी भी प्रभु-वाणी का, पूरा लाभ उठाते हैं।
देखो बहती सरिता में ज्यों, गोते सभी लगाते हैं॥

श्रोताओं के संशय सारे, हो जाते हैं स्वतः समाप्त।
समझाने के लिए एक ही, प्रवचन होता है पर्याप्त ॥
पूर्व जन्म की शुभकरणी से, मानव का मिलता चोला।
विषय-भोग में खोने वाला, समझा जाएगा भोला ॥
इस चोले से जितना अच्छा, किया जाय वह है थोड़ा।
किसी योनि में मिलता है क्या, बतलावो इसका जोड़ा ॥
आर्यदेश उत्तम कुल पाँचों- पूर्ण इन्द्रियां, तन नीरोग।
श्रुति, श्रद्धा, सद्धर्म पराक्रम, दुर्लभ इन सबका संयोग ॥
सुलभ भोग हैं इन्द्रादिक के, दुर्लभ धर्म कमाना है।
धर्म नहीं करने वाले का, व्यर्थ यहां पर आना है ॥
आये होंगे बार अनेकों, आगे भी फिर आओगे।
आने-जाने के चक्कर से, कभी निकल भी पाओगे ?
मुक्ति नगर का द्वार एक ही, मानव-जन्म बताया है।
नरजीवन की महिमा का क्या, पार किसी ने पाया है ॥
इस जीवन में ही होता है, आत्मा का सम्पूर्ण विकास।
जागो-जागो भव्यात्माओं ! त्यागो सारे भोग-विलास ॥
सोचो अपने अन्तर मन में, क्या मानवता आई है।
या मानव के चोले का मिष, ले दानवता छाई है ॥
पाप कौनसा ऐसा है जो, इस मानव ने छोड़ा है।
तृष्णा के आधीन बना मन, भोले मृग ज्यों दौड़ा है ॥

दोहा

सांसारिक सुख भोगते, बीता काल अनन्त।
भोग भोगने से हुआ, क्या तृष्णा का अन्त॥
तृष्णा बढ़ती भोग से, ज्यों ईंधन से आग।
अतल सिन्धु का देखिये, मिलता कहीं न थाग॥

मोह-जाल में फँसकर मानव, फिरता है भूला - भटका।
खुलती हैं कुछ आंखें जब-तब, लगता आकर के झटका॥
अपने इष्ट मित्रजन होते, रोग शोक से अति व्याकुल।
तब संसार लगा करता है, जहर हलाहल-सा बिलकुल॥
अपने नैनों के सम्मुख जब, मौत किसी की हो जाती।
एक बार के लिए समझिये, सुध बुध सारी खो जाती॥
सत्य,अहिंसा,अपरिग्रह,अस्तेय, ब्रह्म व्रत स्वीकारो।
इन्हें 'अणुव्रत' और 'महाव्रत', भेद समझ से कह डारो॥
अपनी आत्म-शक्ति को तोलो, करो धर्म का आराधन।
साध्य एक है मुक्ति सभी का, अलग-अलग होते साधन
दान, शील, तप और भावना, समझो मोक्ष मार्ग हैं चार
क्रोध, लोभ, मद, माया चारों, दुर्गति के ये समझो द्वा
जाति पांति का भेद धर्म में, नहीं बड़े छोटे का भे
पुरुष और नारी—दोनों का, है अधिकार समान अखे

अपनी आत्मा ही कर्ता है, हर्ता है अपनी आत्मा।
आत्मा मोह-मुक्त बन करके, बन जाती है सिद्धात्मा ।।
सीधी बातें, सीधा रास्ता, सारे लोग समझ सकते।
'सम्यग्दर्शन' पा जाने से, जन्म अनन्त स्वयं रुकते ।।"

सुना पक्षियों ने, पशुओं ने, नरों, सुरों ने प्रभु का ज्ञान।
करने वालों के ही द्वारा, किए गए हैं प्रत्याख्यान ।।
कइयों ने 'सम्यक्त्व' लिया है, लिए किसी ने बारह व्रत।
छोड़े व्यसन पुराने, छोड़ी- गई बुराई की आदत ।।

उपदेश का प्रभाव :

मेघकुमार हुआ है उद्यत, पंच महाव्रत लेने को।
सारे षट्कायिक जीवों को, दान अभय का देने को ।।
प्रभु-दर्शन करने का पाया, इसने यह पहला अवसर।
असर हुआ है दिल पर गहरा, समझा संयम श्रेयस्कर ।।
उच्चकोटि की आत्माएं ही, जागृत होतीं हैं तत्काल।
सूखी हुई लकड़ियां जल्दी, पकड़ लिया करती हैं ज्वाल ।।
दुनिया के सुख-भोग भोगता, अनासक्त था मेघकुमार।
तभी महाव्रत अपनाने को, त्वरित हो गया है तैयार ।।

आत्म निवेदन :

दोहा

अपनी ऊँची भावना, प्रभु से कह दी साफ़।
आज्ञा लेकर आ रहा, रुकें यहीं पर आप ॥

गीत
बहरे-तवील

करूं पावन चरण में मैं विनती प्रभो !
इसे दिल से ज़रा भी भुलाना नहीं,
आज्ञा लेकर न जब तक मैं आऊं यहां
किसी और नगर आप जाना नहीं।
रहा भोगों में अब तक दीवाना बना,
मैंने मुक्ति नगर पहचाना नहीं,
किये दर्शन कभी भी न वाणी सुनी,
हुआ पास मुनिजन के आना नहीं।
जन्म हीरे-सा ऐसे गँवाता रहा,
मेरे जैसा कोई भी दीवाना नहीं,
मोह माया को समझा सुखों का मैं घर,
सच्चे सुख को मगर मैंने जाना नहीं।

आज महती दया ये हुई आपकी,
वरना मेरा कहीं था ठिकाना नहीं,
दीक्षा लेकर करूंगा मैं अपना भला
वक्त पापों में अब तो गंवाना नहीं।

दयाधर्म के मग पै मैं पग को धरूं
पड़े जिससे कभी पछताना नहीं,
लाख मुझको कहे क्यों न कोई भी अब
पीछे अपना क़दम यह हटाना नहीं।

आज्ञा लेने चला मैं पिता-मात से
वक्त बातों में ज्यादा लगाना नहीं,
माया-ममता जगत की है 'चन्दन' बुरी
भूल करके भी दिल को फंसाना नहीं ॥

दीक्षा के लिए अनुमति :

प्रभु से विनती करके आया, मात-पिता के पास कुमार।
मैं जाकर के आया हूं अब, 'महावीर प्रभु' के दरबार ॥
अमृतमय उपदेश अनूठा, मैंने सुना लगाकर ध्यान।
अपनाने से ही होता है, मानव जीवन का कल्याण ॥

भोगों का परिणाम भयंकर, जीव भोगता रहता है।
फिर भी भोग त्यागने ख़ातिर, कभी नहीं 'हां' कहता है॥
अज्ञानी जीवों की देखो, दशा बड़ी दयनीय यहां।
अपनी मौत खड़ी है सर पर, उसका उनको पता कहां॥
मुझे दीजिये अपनी अनुमति, शीघ्र वहीं मैं जाता हूँ।
प्रभु-चरणों में दीक्षित बनकर, जीवन सफल बनाता हूँ॥

माता की मूर्च्छा :

सोरठा

वेटे की सुन बात, मूर्छा आई मात को।
लगा बड़ा आघात, हाय ! पुत्र क्यों जा रहा॥

लगी कांपने खिन्न क्लिन्न मन, दीन शिथिल पड़ चुका शरीर।
स्त्रियां शीघ्र ही हो जाती हैं, बात-बात में बड़ी अधीर॥
कपड़े गिरने लगे किधर ही, गहने गिरने लगते हैं।
भागा जाता है सुत मानो, साथ सभी ये भगते हैं॥
जूड़ा भी खुल गया गिर गए, मालाओं से फूल निकल।
मूर्च्छावस्था में होती है, बड़ी भयानक शान शकल॥
कांचन-कलशों द्वारा तन पर, छांटी शीतल जल-धारा।
हवा डालने लगा साथ में, मानो राजमहल सारा॥

बहुत देर से हुआ देखिये, राजपुत्र की मां को होश।
इसमें किसका दोष बतायें, मोह कर्म का सारा दोष ।।
शोक, ताप, आक्रन्दन, रोदन- करती, सकी नहीं कुछ बोल।
चली आंसुओं की धारा यों, मानो बांध दिया हो खोल ।।

मां ने पूछा :

सीने से चिपका कर सुतको, आखिर बोली करती प्यार।
क्या तकलीफ हुई है तुझको, क्यों संयम करता स्वीकार ।।
कहा किसी ने कुछ भी तुझको, ज़रा बतादे उसका नाम।
इसी वक्त उस नालायक से, छुड़ा दिया जायेगा काम ।।
मेरी बहुओं ने यदि तेरा, किया ज़रा सा भी अपमान।
मां को बतलाने में बेटा ! नहीं ज़रा सा भी नुकसान ।।
कारण नहीं बतायेगा तो, हमको होगा पश्चाताप।
बेटा छोड़ गया अपने को, कुछ भी बिना कहे चुपचाप ।।
नाबालिग़ तू नहीं रहा है, समझदार पूरा होशियार।
तुझको खारा क्यों लगता है, यह प्यारा मधुमय संसार ?
किसी बात की कमी अगर हो, करवा देंगे वह सम्पन्न।
प्यारा बेटा अपनी मां से, कभी न रखता कुछ प्रच्छन्न ।।
तू ही मेरा जीवन है बस, तू ही मेरा है आधार।
मां का क्या होगा इसका भी, करले पहले ज़रा विचार ।।

माता-पिता का संयुक्त कथन :

'श्रेणिक' को जब पता लगा तो, वे भी दौड़े आए हैं।
राणी जी के साथ उन्होंने— भी यों वचन सुनाए हैं॥
'इष्ट, कान्त, प्रिय, विश्वासस्थल, बहुमत, अनुमत, रत्न समान।
पुष्प उदुम्बर जैसे दुर्लभ, पुत्र हमारे जीवन प्राण॥
नहीं सहा जायेगा हम से, एक पलक के लिए वियोग।
जब तक हम जीवित हैं तब तक, रहो भोगते प्यारे भोग॥
पुत्र, पौत्र हो जाएं तेरे, मात-पिता कर जाएं काल।
बन करके निरपेक्षित चाहे, दीक्षा लेना मेरे लाल॥
अभी नहीं हम देंगे अनुमति, कैसे दीक्षा ले लोगे।
ले लोगे तो मात-पिता के, प्राणों से तुम खेलोगे॥

पुत्र का जबाव बनाम प्रश्न :

सोरठा

बोला 'मेघकुमार', मात-पिता की बात सुन।
मेरे सुनो विचार, शान्तमना हो सोचना॥

कहा आपने—'निरपेक्षित बन, दीक्षा लेना मेरे लाल।'
उत्तर इसका मुझे दीजिये, करता हूं मैं एक सवाल॥

मेघकुमार

विद्युत-सा चंचल जीवन है, जल बुदबुद-सा क्षणभंगुर।
ओसबिन्दु-सा, सान्ध्यरंग-सा, स्वप्न दृश्य जैसा अस्थिर॥
जितने रोम दीखते तन पर, उनसे भी हैं ज्यादा रोग।
सड़ जाता है, गिर जाता है, पाकर किसी वस्तु का योग॥
पहले कौन चला जायगा, नहीं किसी को इसका ज्ञान।
इसी प्रश्न पर आप खींचिये, पूज्य पिता जी ! अपना ध्यान॥
इसीलिए 'महावीर प्रभु' के, चरणों में मैं जावूंगा।
दीक्षा लेकर अपना मानव-जीवन सफल बनावूँगा॥

भोग का प्रस्ताव :

दोहा

सुनकर बातें पुत्र की, बोल रहे मां-बाप।
एक बात का कीजिये, पुत्र ! जरा इन्साफ॥

पुत्र ध्यान दो ज़रा प्रेम से, इन आठों बहुओं की ओर।
धर्मपत्नियों पर करते हैं, सभी विवाहित कुछ तो गौर॥
कला कुशल बालाएं मंजुल-मधुर बोलनेवाली हैं।
अच्छी सन्तति देकर घर का, द्वार खोलने वाली हैं॥
गुण, यौवन, लावण्य, रूप से, तेरे जैसी हैं सारी।
उनको छोड़, चले जाने की, करली कैसे तैयारी ?

पेय-सुगन्धित, पौष्टिक रसप्रद, पिये जा रहे हैं हरबार।
मूत्र बनाकर उसे छोड़ता, यही देह का है उपकार॥
अपनी ही शक्ति क्षय करके, मानव करता सुख महसूस।
श्वान स्वाद ज्यों पाता सूखे, हड्डी के टुकड़े को चूस॥
अपने मुख की लालाओं को, बाल समझता सुधा समान।
सुधा नहीं है सही रूप में, बालक का ही है अज्ञान॥
ऐसे भोग भोगने वाला, कहलायेगा क्या मतिमंत।
सुख क्षण मात्र दिखाने वाले, दुःख दिखाते काल अनन्त॥
हीरे जैसा जन्म अमोलक, कौड़ी बदले हारा जाय।
इसीलिए अच्छा है संयम, लेकर जन्म सुधारा जाय॥

धन का प्रलोभन :

दोहा

काम-भोग के वास्ते, सुनकर पुत्र-ख़याल।
मात-पिता अब रख रहे, धन के लिये सवाल॥

आर्यक, प्रार्यक, पितृ प्रार्यक, संचित बहुत पड़ा है धन।
सोना, चाँदी, मुक्ता, माणिक, सभी तरह के दिव्य रतन॥
सात पीढ़ियां तक सुख पूर्वक, इसका किया जाय उपभोग।
भाग्योदय से ही मिलता है, इतना सब सुन्दर संयोग॥

धन के बिना दशा क्या होती, देखो मानव के मन की।
निर्धन जन से पूछा जाए, कीमत कितनी है धन की॥
धन से धान्य,धान्य से जीवन, जीवन से सुख, सुख से धम्म।
आवश्यकताएं जीवन की, धन से पूरी होतीं छम्म॥

धन के लिए विदेशों में नर, जाता है श्रम करता घोर।
दौड़-धूप धन के खातिर है, धन ही हैं सब का सरमोर॥
धन के बिना पालना मुश्किल, केवल अपना ही परिवार।
धन के बिना असम्भव होता, किसी वस्तु का भी व्यापार॥
धन के बिना दिया क्या जाए, अपने मित्रों को उपहार।
धन के बिना किया क्या जाए, कपड़े गहनों का शृंगार॥
धन के बिना झुकाया जाए, क्या सुन्दर ऊंचा आवास।
धन के बिना मनाया जाए, क्या दुनिया का भोग-विलास॥
धन के बिना दिया क्या जाए, दीन-गरीबों को कुछ दान।
धन के बिना बना क्या जाए, संस्थाओं का बड़ा प्रधान॥
धन के बिना किया क्या जाए, मेहमानों का स्वागत भी।
धन के बिना लौटते खाली, घर आए अभ्यागत भी॥

धन के बिना किया क्या जाए, प्रीतिभोज का आयोजन।
धन के बिना लिया क्या जाए, सायं-प्रातः का भोजन॥

तुम्हें मिले हैं धन वैभव से, भरे हुए सारे भण्डार।
खालो-पीलो और खिलालो, करलो दुनिया का उपकार॥
बुरा नहीं धन, भला नहीं धन, बुरा-भला होता उपयोग।
उचित स्थानपर, उचित समयपर, वेटे! धन का करो प्रयोग॥
कोई नहीं पूछने वाला, चाहो जिसको दे देना।
इतना काम करो फिर प्यारे- वेटे! दीक्षा ले लेना॥

पुत्र द्वारा धन की बुराइयां :

दोहा

पूज्य पिता जी! है नहीं, तन का जब विश्वास।
तब कैसी कैसे करें, धन की झूठी आश॥

चौर-हार्य धन, राज-हार्य धन, बांटा जाता धन सारा।
चमक रहा धनवान आज तो, रोता है कल वेचारा॥
लूटा जाता झपटा जाता, जला डालती धन को आग।
मरते समय साथ जो जाता, सच्चा धन है त्याग-विराग॥
धन ही खान अनर्थों की है, धन ही है माया का बीज।
बुरी नहीं है धन के जैसी, और दूसरी कोई चीज़॥
धन के लिए कलह होते हैं, धन के लिए बोलते झूठ।
धन के लिए पीढ़ियों वाले, रिश्ते यकदम जाते टूट॥

धन के लिए कपट होता है, धन के लिए झपट होती।
धन के लिए प्रेम की दुनिया, देखी है चौपट होती ॥

धन के लिए वेच भी देती, माता अपने जाए को।
धन के लिए किया जाता है, नकली प्रेम पराए को ॥
धन के लिए बना जाता है, देखो दासों का भी दास।
धन के लिए सहा जाता है, अपना हल्का भी उपहास ॥
धन के लिए किया जाता है, इन मजदूरों का शोषण।
धन के लिए किया जाता है, अन्यायों का भी पोषण ॥
धन के लिए लड़े जा रहे, युद्ध भयंकर धरती पर।
घन के लिए गढें जा रहे, झूठे आल किसी के शिर ॥
धन के लिए बेच डालती, नारी अपना प्यारा शील।
धन के लिए सभी कुछ होता, कृत्य जघन्य बड़ा अश्लील ॥

मेरे नहीं काम के हैं ये, भरे हुए धन के भण्डार।
इस धन से क्या हो सकता है, दीन-गरीबों का उद्धार ॥
पता नहीं कुछ कितने पापों से धन को जोड़ा होगा।
ऐसे धन का दान किए, कल्याण कभी थोड़ा होगा ॥
एरण की चोरी करता है, करता है सूई का दान।
ऊपर झांक रहा है आता- होगा मेरे लिए विमान ॥

लाखों पाप कमा करके जो, जोड़ा धन का एक निधान।
कितना पीछे रख लेता है, कितना कर देता है दान।
जिसके पास एक ही पैसा, किया उसी का उसने दान।
लाखों देने वालों से भी, समझो उसका दान महान।

पाप कमाकर क्यों धन जोड़ूं, क्यों फिर उसका दान करूं।
संयम लेकर करूं साधना, आत्मा का कल्याण करूं।
तीनकिरण और तीन योग से, धन का प्रत्याख्यान करूं।
महावीर प्रभु की वाणी का, दुनिया में व्याख्यान करूं।
धन का मोह, नशा धन का, विष धन का सारा उतर गया।
प्रवचन रूप फिटकड़ी से जल, कलुषित अन्तर नितर गया।
जो धन हमें छोड़ कर जाता, वह धन हमको दुख देता।
अगर छोड़दें हम धन को तो, वह धन हमको सुख देता।
धन छूटेगा, तन छूटेगा, छूटेगी सत्ता सारी।
किन्तु छोड़नेवाले की ही, ली जाती है बलिहारी।
सभी जानते हैं कि हमको, जाना है माया को छोड़।
किन्तु छोड़ने की भी देखो, लोग लगाते हैं क्या होड़

खुद न छोड़ सकते हैं सारे, क्योंकि छोड़ना बड़ा कठिन।
किन्तु छोड़ने वालों को क्यों- रोका जाए कर अड़चन

मेरे लिए यही उत्तम है, कर देना उस धन का त्याग ।
त्याग-मार्ग से पुष्ट हुआ करता है अन्तर का वैराग ॥
पहले अथवा पीछे हमको, किन्तु अवश्य छोड़ना धन ।
धन का बता प्रलोभन पैदा, करते हो क्यों आकर्षण ॥
आज्ञा दें दीक्षा लेने की, सुनो विनति प्यारे सुत की ।
बात सिर्फ़ है एक यही अब, आप और मेरे हित की ॥

दीक्षा की कठिनाइयाँ :

दोहा

सुन कर बातें पुत्र की, सोचें दिल दरम्यान ।
इक ही वाणी से हुआ, ज्ञान आज ही आन ॥
मेरे जैसे भक्त जन, प्रवचन सुनते रोज़ ।
किन्तु कभी होता नहीं, विकसित ज्ञान-सरोज ॥
उपजाऊ होता अधिक, बालक का दिल - खेत ।
मिट्टी की मिट्टी मिली, नहीं जरा भी रेत ॥
चिकने पत्थर सदृश हम, कच्चे घट सम बाल ।
जान-बूझ कर नृपति फिर, रखता एक सवाल ॥

पुत्र ! सत्य है, अद्वितीय है, नैयायिक है, है संशुद्ध ।
निरुपम है, निर्वाण-मार्ग है, 'वीर' प्ररूपित धर्म प्रबुद्ध ॥

पुत्र ! पता है दीक्षा लेकर, कितने नियम पालने हैं ?
पुत्र ! पता है दीक्षा लेकर, कितने दोष टालने हैं ॥
बने मोम के दाँतों से, ये-चने चवाने होते हैं।
मोह-जनित संस्कार आत्मगत, पूर्ण दवाने होते हैं ॥
गंगा जैसी महानदी की, धारा में सम्मुख जाना।
सिन्धु भुजाओं से तर जाना, और किनारों को पाना।
असि-धारा पर नंगे पैरों, चलने जैसा समझो काम।
कवल बालुका का लेने में, नहीं स्वाद का होता नाम।
महा शिलाओं का उत्तोलन, करना जैसे हाथों से।
सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, क्या संयम की बातों से।
पंच महाव्रत पालन करना, पंच मेरु जितना है भार
बड़ा कठिन होता है बेटा, लेकर के पहुँचाना पार

ऊंच-नीच-मध्यम कुल से जो, भिक्षा में मिल जाएगा
ऐसा क्या आहार तुम्हें वह, बोलो सुख से भायेगा
अस्नानव्रत बड़ा कठिनतम, करना नहीं कभी शृंगार
थक जाओगे, दुख पाओगे, करते पैदल उग्र विहार

सर्दी-गर्मी सह न सकोगे, तुम इस कोमल काया से
घवड़ा जाते हो देखो तुम, अभी कष्ट की छाया से

नहीं रात में खाना-पीना, नहीं दवा भी लेना है।
धीरज का पूरा परिचय, आजीवन ही देना है॥
जो कोई अपशब्द कहेगा, और करेगा जो अपमान।
क्षमावान बन सहना होगा, कहलाना होगा गुणवान॥
'महावीर प्रभु' के शासन में, अनुशासन का रखना ध्यान।
आज्ञा धर्म, कर्म है आज्ञा, आज्ञा सबसे बड़ी प्रधान॥
प्रभु-चरणों में आत्मसमर्पण, बोलो क्या कर पाओगे ?
जिस श्रद्धा से लेते हो क्या, वैसा उसे निभाओगे ?
सारी विधियां स्वयं समझते, फिर भी मैं समझाता हूँ।
नाते एक पिता के अपना, सच्चा फ़र्ज़ निभाता हूँ॥
संयम - जीवन स्वीकारोगे, सच्ची समता धारोगे।
बेड़ा पार उतारोगे जब, मन की ममता मारोगे॥
अभी गृहस्थाश्रम में रहकर, करलो संयम का अभ्यास।
पूर्वाभ्यासों से ही होते, जैसे विद्यार्थीजन पास॥
फिर दीक्षा ले लेना बेटे ! नहीं करेंगे मना कभी।
जल्दी-जल्दी में बोलो क्या, अच्छा कारज बना कभी॥

पुत्र का अडिग निश्चय :

दोहा

सारी बातें आपकी, सुनी लगाकर ध्यान।
इन सब कष्टों का मुझे, है पहले से ज्ञान॥

कायर।
कष्ट साधना है संयम की, उससे डरता है कायर।
क्षत्रिय भाग खड़ा होगा क्या, होते होंगे जब फ़ायर॥
क्लीब पुरुष क्या लेगा संयम, लेगा तो क्या पालेगा।
धोरी वृषभ लिए बोझे को, नहीं बीच में डालेगा॥
कापुरुषों का काम नहीं है, रहता जिनका चित्त मलीन।
सत्पुरुषों का सत्य पराक्रम, कभी नहीं होता है क्षीण॥
धीरों, वीरों, शूरों का दृढ़- निश्चय वालों का है काम।
जब तक ध्येय नहीं पा जाते, करते नहीं कहीं विश्राम॥
काया कोमल होने पर भी, जीवन सफल बनाऊंगा।
सच्चा क्षत्रिय होकर के क्या, कष्टों से घबराऊंगा॥

गीत

कष्टों का खौफ़ दिल में, किंचित नहीं मैं लाऊं।
होकर तुम्हारा बेटा, डरपोक क्यों कहाऊं ?
जीवन का क्या भरोसा, जल बीच है पतासा !
पा काल का सन्देशा, जानूं न कब सिधाऊं।
रोगों का घर है तन यह, जाए न साथ धन यह।
इनमें फंसा के मन यह, बाज़ी क्यों हार जाऊं
जो कुछ बने बनालूँ, बस लाभ मैं उठालूं।
संयम खुशी से पालूं, जीवन सफल बना

अमरता के

महावीर जो जिनेश्वर, आए हैं जो यहां पर।
चरणों में उनके जाकर, 'चन्दन' मैं सिर झुकाऊं॥

एक दिन का राजा :

सुनकर भाव पुत्र के पक्के, मात-पिता ने सोचा मन।
संयम लेगा अब न रुकेगा, अपना प्यारा यह नन्दन॥
"यदि दीक्षा लेना ही है तो, ले लेना कुछ हर्ज नहीं।
इच्छा एक हमारी पूरण, करने का क्या फ़र्ज नहीं?
राजा तुम्हें बनाकर अपने, हाथों से करना अभिषेक।
एक दिवस के लिए भले ही, तुमको राजा लेंगे देख॥
'राजगृह' के सिंहासन पर, प्यारे सुत को बिठला कर।
हम भी हर्षान्वित हो लेंगे, अपने मन में इठला कर॥
अच्छे उत्तम कामों में तो, बहुत विघ्न आ जाते हैं।
जल्दी करो, करो मत देरी, विद्वज्जन फ़रमाते हैं॥"

"मुझे विलम्ब असह्य हो रहा, पूज्य पिताजी! पल भर का।
कितना बड़ा एक दिन होता, इन्तज़ार करते नर का॥"

इतना कहकर मौन हो गया, 'मेघकुमार' महा विद्वान।
मौनं सम्मति का लक्षण है, कहते ऐसे चतुर-सुजान॥

दोहा

सिर्फ़ एक दिन के लिए, करें मनोरथ पूर्ण।
मंगवाया सामान सब, मात-पिता ने तूर्ण ॥

कौटुम्बिक पुरुषों ने सारी, सामग्री विधि की तैयार।
मात-पिता के मन में छाया, एक वार तो हर्ष अपार ॥
कलश आठ सौ चौसठ लाए, स्वर्ण, रुप्य, मणि, माटी के।
दर्शन वहां हो रहे अपनी, रीति और परिपाटी के ॥
सभी तरह की औषधियां हैं, सभी तरह के हैं फल-फूल।
सभी तरह के श्रेष्ठ गन्ध ले, आये मौसम के अनुकूल ॥
सभी तरह का जल मंगवाया, सभी तरह की मिट्टी और।
सभी वस्तुएं बन जाती हैं, भारी प्यारी ऐसे ठौर ॥
सर्व ऋद्धि,द्य ुति,बलका दर्शन, करती जनता हर्ष विभोर।
सभी तरह के मंगल बाजे, गूँज रहे हैं चारों ओर ॥
जय-जय नन्दा,जय जय भद्दा, बोल रहे करते अभिषेक।
माता-पिता मनाते खुशियां, अपने प्यारे सुत को देख ॥
जितना बाक़ी रहा जीतना, जीतो जीतो की है बात।
जितने जीत लिये हैं उनका, रक्षण करिये दीनानाथ !
पूरे मगध देश पर शासन, करते करियें सुखोपभोग।
राजा हो तो ऐसा ही हो, याद करेंगे सारे लोग ॥

माता और पिता ने मिलकर, किया पुत्र को फिर अभिषेक।
सीमंधर तू, सीमंकर तू, क्षेमंकर तू बेटा ! एक॥
पुरुष प्रवर तू, तू पथदर्शक, अद्भुत कारज करता तू।
पुरुषसिंह तू, पुरुष गन्धहस्ती- है कभी न डरता तू॥
बोलो राजा बेटा ! अब क्या, हुक्म आपका है हम पर ?
फ़रमावोगे जैसा वैसा, करने को हम हैं तत्पर॥
अभिप्रेत हाज़िर कर देंगे, अनभिप्रेत का करके नाश।
व्यक्त करो जो कुछ भी हो इस- वक्त आपकी मन अभिलाष॥
मात-पिता की इच्छा पूरण- की है मान हमारी बात।
हम से अब पूरी करवावो, अपने मन की प्यारी बात॥

क्या छिपा ?

दोहा

मेरी इच्छा आप से, छुपी कहां है आज।
क्या बाक़ी कहना रहा, सोचो जी महाराज !

मेरी इच्छा एक यही है, लावो दीक्षा के उपकरण।
'रजोहरण' इक पात्र 'कुत्रिका- पण' से मंगवावो तत्क्षण॥
नापित को बुलवाया जाए, यही हुक्म अब मेरा है।
मेरा-तेरा छोड़ दीजिये, दुनिया रैन बसेरा है॥

मात-पिता हो गए सहमत, 'मेघ' पुत्र की बातों से।
देखो दीक्षा दी जायेगी, सुत को अपने हाथों से॥
'मेघकुमार' हो रहा है खुश, अनुमति संयम की पाकर।
मात-पिता भी शान्त हो गये, प्यारे सुत को समझाकर॥

मेघकुमार-कथा का वर्षण, हुआ दूसरा यहां समाप्त।
उच्च कोटि का ज्ञान देखिये, सम्वादों से होता प्राप्त॥
'चन्दन' नन्दन को दीक्षा की, अनुमति देना वड़ा कठिन।
नहीं डिगाने पर भी डिगता, सच्चे वैरागी का मन॥

दोहा

मेघ कथानक मेघ सम, वर्षण वर्सण तुल्य।
'चन्दन' बीज विराग के, बोए जायं अमूल्य॥
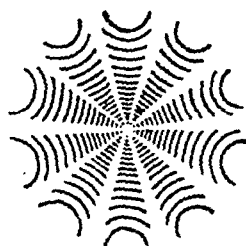
अथ तृतीय वर्षण

दोहा

वर्षण आया तीसरा, श्रोता बनो सचेत ।
बरस रहा है ज्ञान-जल, सींचो अपना खेत ॥
रात-दिवस रहते बने, राग-रंग में मस्त ।
किन्तु देखिये सूर्य अब, होने वाला अस्त ॥
बचपन बीता प्रेम से, गई जवानी ज़ोर ।
वृद्धावस्था आगई, मांग रहे क्या और ?
जर्जरित तन हो गया, खड़ी सामने मौत ।
धर्म-ध्यान कर लीजिये, जगा लीजिये ज्योत ॥
धर्म सार आधार है, है संसार असार ।
जाने से पहले ज़रा, करिये सोच-विचार ॥

फिर कुछ बनने का नहीं, अभी बनालो काम।
बैठ शान्ति से—प्रेम से, ले लो प्रभु का नाम ॥

श्रेणिक राजा' ने अब अपना, किया सेवकों से आदेश।
करवाया जाता है उनसे, करते हों जो काम हमेश ॥
'तीन लाख मुद्रा ले जावो, लावो दो का तो सामान।
नापित को बुलवा लाना है, अभी साथ में अपने स्थान ॥'

सेवक गए 'कुत्रिकापण' से, 'रजोहरण' ले आए 'पात्र'।
नापित को आने का बोला, सुनकर फूला उसका गात्र ॥
ले आए हैं दोनों चीजें, नापित को ले आए साथ।
सेवक वे उत्तम होते हैं, काम करें जो हाथों-हाथ ॥

नापित अब नरपति से बोला, मेरे लायक कहिये काम।
राजा ने फ़रमाया—तुमको, दिया जायगा बड़ा इनाम ॥
सुरभित जल से हाथ-पैर धो, मुंह पर बांध लीजिये वस्त्र।
साफ़ करो, सम्भालो जो भी, काम लिए जायेंगे शस्त्र ॥
निष्क्रमण के योग्य केश का, कर्शन तुम्हें बनाना है।
केवल चतुरंगुल ही रखकर, शेष साफ़ करवाना है ॥
अधिक कहें क्या तुमको भाई, चतुर-निपुण तुम भारी हो।
जैसा करना कैसा करना, बात जानते सारी हो ॥

अन्तिम हजामत :

सुनकर हुक्म लगा नापित अब, विधियुत करने अपना काम ।
होशियार का ही आता है, सभी जगह पर पहला नाम ।।
माता खड़ी ले रही केशों— को तब अपने झोले में ।
आंसू हैं आंखों में जैसे, मोती भरे कचोले में ।।
कर्तित केश सुगन्धित जल से, धोकर उजले वस्त्र लपेट ।
रखे रत्न की डिबिया में ज्यों, रखते हैं गहनों का सेट ।।
उत्सव,पर्व,प्रसव,शुभ अवसर, जब-जब घर में आयेंगे ।
तब इन पावन केशों के हम, दर्शन कर सुख पायेंगे ।।
केशों के दर्शन से मेरे, प्यारे सुत के दर्शन मान ।
हुआ करेगा हम सब का— कल्याण, हमारा है अनुमान ।।

दिया गया नापित को तत्क्षण, एक लाख का दान महान ।
ऐसी एक हजामत से हो– जाता कर्त्ता का कल्याण ।।

शिविका और सवारी :

उत्तराभिमुख सिंहासन पर, प्यारे सुत को बिठलाया ।
सर्व सुगन्धित जल से स्वर्ण- कलश भर-भरकर नहलाया ।।

रोएंदार सुगन्धित अंगोछे— से पोंछा सारा गात।
घिस चन्दन गोशीर्ष किया है, लिप्त मनोहर प्यारा गात॥
हवा सांस की लग जाने से, जो कपड़े उड़ जाते हैं।
भार नहीं होता है बिलकुल, वे बहुमूल्य बताते हैं॥
हंस-पंख से उजले सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाये।
कुण्डल,हार,मुकुट,कटिसूत्रक, चूड़ामणि गहने लाए॥
अंगुलियों में लगी दीखने, रत्नमुद्रिकाएं उत्तम।
मालाओं से लदा हुआ सुर, पादप से क्या लगता कम॥

कहा सेवकों से 'श्रेणिक' ने- शिविका शीघ्र करो तैयार।
जिसको कन्धे लिए हुए चलते- हों मानव एक हज़ार॥
चित्र विचित्र किए हों जिस पर, दर्शनीय, शुभ, सुन्दर, कान्त।
मणि-रत्नों से बनी जालियां, मिटा रही हों सारा ध्वांत॥
लगी घंटियां टण-टण करती, आने की देती आवाज।
सूर्य सहस्र उतर आए हों, शिविका का लेकर के व्याज॥
नाम पालखी का है समझो, समझो कोई देव-विमान।
मानो थी पहले से हाज़र, पीछे किया गया फ़रमान॥

प्राची दिशि सम्मुख सिंहासन- पर बैठा है 'मेघकुमार।'
देवकुमार स्वयं आया या- नया हुआ कोई अवतार॥

न्हा-धो सज्जित हो मां बैठी, दाएं भद्रासन ऊपर।
बाएं बैठी धात्री ओघा— पात्र पास में कर लेकर॥
रजत,कुन्द,हिमसदृश उज्ज्वल, छत्र हाथ में थामे एक।
युवती रूपवती पीछे आ— बैठी बैठी पुण्य विवेक॥

शंख,कुन्द, दृग, फेन-पुंज सम, उज्ज्वल लेकर दो चामर।
दोनों तर्फ युवतियां दो बैठीं, हैं शिविका में आकर॥

युवती एक अग्निकोण में, बैठी ले जल की झारी।
सम्भवतः रास्ते में कोई, अगर मांग भी ले वारी॥

चन्द्रकान्त वैडूर्यरत्न से, बना हुआ है जिसका दंड।
पंखा झिलती युवती आगे, बैठी जिसमें भरा घमण्ड॥

"सदृश वय,त्वग् सदृश,सदृश- वेश, और सम आभूषण।
एक सहस्र, आदमी ऐसे, बुलवा लावो गत-दूषण॥"
कौटुम्बिक बुलवा लाए वे— आए बोले शीस झुका।
"दें आदेश हमारे लायक, काम पड़ा क्या कहो रुका?"
"सहंस वाहिनी शिविका को तुम, वहन करो मिलकर सारे।"
हुआ हुक्म का पालन 'चन्दन', जय-जय के लगते नारे॥

चलने की तैयारी सारी, जमा भीड़ है भारी भी।
एकत्रित हो गए शहर के, लाखों ही नर-नारी भी॥
मंगल कारज, मंगल वेला, मंगल सुने जा रहे बोल।
मंगल गाने गाए जाते, और बजाए जाते ढोल॥
आठों मंगल आठ स्त्रियां ले, सम्मुख आकर खड़ी हुई।
मानो–सुन्दर स्वर्ण पुतलियां, विधि के द्वारा घड़ी हुई॥
सधवाएं हैं स्वयं मंगला, शकुन शास्त्र का शुभ आदेश।
द्रव्य, क्षेत्र का, काल,भाव का, अलग-अलग होता सन्देश॥

दीक्षा की शोभा यात्रा :

आठों मंगल सब से आगे, उनके पीछे विजय ध्वजा।
सिंहासन पर है चरणपादुका, 'मेघकुंवर' की रखी सजा॥

लाठी, भाले, धनुष-बाण से, सज्जित भी थे लोग अनेक।
चोटी वाले, दाढ़ी वाले, मोरपिच्छियों वाले देख॥

खेलकूद दिखलाने वाले, नृत्य-गान करने वाले।
हंसने और हंसाने वाले, सब का मन भरने वाले॥

मंगल उत्सव की विघ्नों से, रक्षा करने वाले साथ।
वीणावादक मंगलपाठक, करने वाले मीठी बात॥

जय हो-जय हो ज़ोर-ज़ोर से, बोल रहा था सारा संघ।
लिखने में क्या आ सकता है, इतना सुन्दर बना प्रसंग॥
तदनन्तर थे उच्च जाति के, अश्व एक सौ आठ भले।
घोड़ों के पीछे इतने ही, मत्त मतंगज साथ चले॥
चले हाथियों के पीछे रथ, संख्या में थे इक शत आठ।
रथ-रथ में थे बैठे योद्धा, अस्त्र-शस्त्र का लेकर ठाठ॥
इनके पीछे पैदल सेना, शस्त्रों से सज्जित चलती।
बिना पुण्य के ऐसी शोभा, नहीं देखने को मिलती॥
शंख, झल्लरी, मुरज, हुडुक्का, भेरी, दुंदुभि और मृदंग।
ध्वनियां साथ मिली सारों की, अलग-अलग बजने का ढंग॥

मंगल अवसर पर द्रव्यार्थी, मांग रहे हैं दान विशेष।
पाकर दान सोचते मन में, ऐसे अवसर मिलो हमेश॥

लोगों की शुभकामनाएं :

"अजित इन्द्रियों को जीतो, जित- पालन श्रमण धर्म का कर।
बसो सिद्धि नगरी में भगवन् ! वहीं आपका शाश्वत घर॥
चित्त स्वास्थ्य से कर्म शत्रुओं- का कर देना उपमर्दन।
'शुक्लध्यान' के द्वारा पाओ, 'केवलज्ञान' तथा दर्शन॥

जीत परीषह और उपद्रव, शान्त दान्त भय रहित बनो।
सादि अनन्त निरामय अविचल, अजर-अमर पदसहित बनो॥
ऐसी शुभ आशीषें देते, बोल रहे हैं बारम्बार।
धन्य! धन्य! है जन्म आपका, सफल बनाते नर-अवतार॥

लोक भावना :

"देखो ये दीक्षा लेते हैं, तुम भी क्यों न ले लेते।
लेते हों तो बोलो इनके, साथ तुम्हें भी दे देते॥
देखो इनने राज्य पाट का, सारा मोह उतारा है।
तुमको क्यों संसार बतावो, लगता इतना प्यारा है?
आठ विवाहित स्त्रियां छोड़कर, लेते संयम राजकुमार।
एक न छोड़ी जाती तुम से, तुलनात्मक भी करो विचार॥
बेटे-पोते देख लिए हैं, भोग लिए हैं सारे भोग।
फिर भी नहीं छोड़ते पीछा, कितना बड़ा भोग का रोग!!
भोग छोड़ जायेंगे निश्चय, छोड़ नहीं पावोगे तुम।
चौरासी के चक्कर में ही, अब गोते खावोगे तुम॥"

"मुझे दे रहे हो तुम शिक्षा, आप छोड़कर निकल पड़ो।
कहना ही है सरल, स्वयं कर त्याग, नया इतिहास घड़ो।

चौराहों पर चहल-पहल :

'राजगृहपुर' के चौराहों, से जब निकली असवारी।
देखी नहीं आज से पहले, इतनी भीड़ बड़ी भारी॥
रंग-ढंग से सजी सवारी, सजे हुए थे सारे जन।
देख रहे थे खड़े किनारे, अपने-अपने प्यारे जन॥
'अमुक रहे वे-अमुक रहे वे, देखो इधर जरा झांको।
मेरी अंगुली के आगे से, नजर टिका करके राखो॥
देखो वह स्त्री कैसी भोली, सजी हुई अच्छी लगती।
देखो पीछे रही अमुक अब, जाती है भगती-भगती।
देखो अमुक रो रहा बालक, देख रहा चढ़ कंधों पर।
देखो अमुक नाच करता है, चढ़ कर अपने बन्दों पर।
देखो आज अमुक भी आया, क्या इसको भी हुआ विराग।
पक्का नास्तिक था यह तो क्या, इसको अच्छा लगता त्याग।
दया धर्म को नहीं मानने, वाले बोल रहे हैं धन्य!
धर्म-जन्य संस्कारों का फल, देखो कैसा मिला अनन्य।

दुष्कर-दुष्कर व्रत लेने को, धर्म-साधना करने को।
'मेघकुमार' जा रहा देखो, आज तारने तरने को।
स्वयं तरेगा लोगों को भी, उपदेशों से तारेगा।
अपनी सात पीढ़ियों को भी, भव से पार उतारेगा।

मुनि बनने के बाद एक दिन, दर्शन करने जायेंगे।
इनकी 'चन्दन' सत्संगति से, हम भी लाभ उठायेंगे॥

गुणशैलक वन में :

चलते-चलते पहुँच गए हैं, 'गुणशैलक' वन में सारे।
जहां विराज रहे थे अर्हन्, 'महावीर' प्रभुवर प्यारे॥
देख दूर से ही प्रभुवर को, अपने वाहन छोड़ दिए।
नत मस्तक, आंखें प्रभु सम्मुख, हाथ सभी ने जोड़ लिए॥
प्रभु-चरणों में तिक्खुत्तो से, वन्दन करते हर्ष विभोर।
'मेघकुमार' निहार रहा है, चन्दा को ज्यों भद्र चकोर॥

वोले मात-पिता ओ भगवन् ! पुत्र हमारा मेघकुमार।
वैरागी बन कर आया है, दीक्षा करने को स्वीकार॥
कीचड़ में पैदा होता है, जल में रखता सदा निवास।
उन से लिप्त न होता पंकज, करता अपना अलग विकास॥
काम-भोग से जात, जात यह, काम-भोग में वना न लिप्त।
सुप्त नहीं है, है यह जागृत, परिचय इसका यों संक्षिप्त॥
जन्म-मृत्यु का और बुढ़ापे- का भय इसको है भारी।
इसीलिए लेने को आया, संयम भव-संकटहारी॥

कृपा कीजिये दीनदयालो ! भवसागर के तारनहार !
शिष्य रूप भिक्षा देते हैं, शीघ्र इसे करिये स्वीकार ॥

प्रभु की स्वीकृति :

मात-पिता की विनती पर, 'प्रभुमहावीर' ने ध्यान दिया।
अपना शिष्य बनाने का शुभ, आग्रह इनका मान लिया ॥
गए इशानकोण में उठकर, 'मेघ' और सारा परिवार।
अपने ही हाथों से सारे, गहने-कपड़े दिए उतार ॥
रोती-रोती मां ने अपने, आंचल में झेला सामान।
वेश साधु का पहनाया है, करते-करते यह फरमान ॥

"संयम में यत्ना से रहना, नया-नया करना आयाम।
निकल रहे हो जिस श्रद्धा से, वही सिद्ध कर लेना काम ॥
प्रव्रज्या के पालन में तुम, किंचित् करना नहीं प्रमाद।
दीक्षित होने का पाओगे, तभी कहीं जा पूरा स्वाद ॥
जिस मारग से तुम जाते हो, यही हमारा भी हो पन्थ।
श्रावक यही मनोरथ करता, कब बन पायेंगे निर्ग्रन्थ ॥"

हित-मित शिक्षाएं दे करके; प्रभु वन्दन कर आए घर।
'मेघकुमार' स्वयं करते हैं, अपने शिर का लोच इधर ॥

दीक्षा और शिक्षा :

'महावीरप्रभु' ने दीक्षा विधि, करवाई है सब सम्पन्न।
विधियां बतलाई जीने की, कुछ भी रखा नहीं प्रच्छन्न॥
बैठो, उठो, चलो, ठहरो, या- जागो, सोवो, दो व्याख्यान।
खावो, पीवो, बोलो पहले, संयम का रखना है ध्यान।
ऐसा कुछ भी नहीं करो जिस- से औरों का हो व्याघात
सब के हित में अपना हित है, यही साधना की शुरुआत
जीव दया ही धर्म बड़ा है, जीव-जीव हैं सभी समान
अपने सुख के ख़ातिर कैसे, लिए जायं औरों के प्राण

किया पान भगवद् वाणी का, 'मेघमुनि' ने रखकर ध्या
बात उसी दिन की अब श्रोता, सुनना देकर दोनों का

अनिद्रा और अधैर्य :

बीता सारा दिवस खुशी से, समय हुआ जब सोने
बड़े और छोटे मुनि लेते, क्रमशः स्थान बिछौने
अच्छी-अच्छी जगह रोक ली, बड़े-बड़े सन्तों ने
'मेघमुनि' को स्थान मिला है, देखो दरवाजे के

नियम और विधियों से सारे, होते हैं शासन में काम।
लिया न जाता, ले न सकेगा, पक्षपात का कोई नाम ॥
दीक्षा की पर्याय अधिक हो, वही बड़ा कहलाता है।
पीछे दीक्षा लेने वाला, उसको शीश झुकाता है ॥

कोई सोते, कोई जगते, कोई करते हैं स्वाध्याय।
कोई आते, कोई जाते, किसे-किसे अब रोका जाय ॥
शारीरिक चिन्ता के खातिर, मुनिवर आते-जाते हैं।
सोए हुए 'मेघ मुनिवर' को, मानो सभी जगाते हैं ॥
हाथ छू गए, पैर छू गए, कभी छू गए कोई शिर।
लांघ-लांघ कर जाते सारे, नहीं किसी को ज़रा फ़िकर ॥
इधर-उधर करवटें बदलते, नींद नहीं ले पाए हैं।
'मेघमुनि' के मन में ऐसे, भाव रात को आए हैं ॥

घर चला जावूंगा :

"मैं 'श्रेणिक' का पुत्र, 'धारिणी- देवी' का आत्मज प्यारा।
कभी कष्ट का काम नहीं था, बस सुख ही सुख था सारा ॥
जब मैं घर में था तब देखो, सारे श्रमण और निर्ग्रन्थ।
मेघ ! मेघ ! कह आदर करते, दिखलाते थे प्रेम अत्यन्त ॥

आज सभी ये श्रमण ज़रा भी, मेरा रखते नहीं ख़याल।
पहला ही दिन हुआ अभी तो, जीवनभर का पड़ा सवाल ॥
रात आज की कट जाने से, चला जाऊंगा वापिस घर।
भरपाया है इस दीक्षा से, नहीं व्यवस्था सुन्दरतर ॥
नवदीक्षित मुनि को क्या ऐसे- तैसे वरता करते हैं।
मुझे कुचलने को ही मानो, इधर-उधर ये फिरते हैं ॥
मुझे पता होता यदि पहले, तो मैं क्यों वनता अणगार।
क्यों इनके पैरों में सोता, सहता क्यों ये कठिन प्रहार ॥
अपने अन्तर मन की पीड़ा, इनको कहने से क्या लाभ।
सूर्योदय होते ही प्रभु को, दिया जायगा सही जवाब ॥"

'आर्तध्यान' से पीड़ित मानस, नरक सरीखा दुख माना।
कब दिन निकले,कब प्रभु-पूछूं, कब फिर हो घर पर जाना ॥
चिन्तित,आर्त्त दुखीजन के क्षण, होते हैं कितने भारी।
इधर एक क्षण, और सुखी की, उधर जिन्दगी हो सारी ॥
सुख क्या है ? दुख क्या है ? इसकी मिली यही परिभाषा।
मन ने जो मंजूर किया-सुख, बाक़ी का दुख है खासा ॥

पुनः गृहस्थाश्रम में जाना, मन में 'मेघ' विचारा है।
चढ़ती-पड़ती रहती ऐसे, परिणामों की धारा है ॥

वीती रात, प्रभात हुआ मुनि, आए महावीर के पास।
वंदन नमन किया विधियुत, पर- चेहरा अधिक उदास-उदास॥
घर जाने के लिए पूछना, आने लगा बड़ा संकोच।
घर ही जाना है तो बोलो, कल क्यों करवाया था लोच ?

प्रभु का सन्देश :

हाथ जोड़कर खड़े हुए मुनि, बोले महावीर भगवान।
मेघ ! आज क्या हुआ तुम्हारा, फिर से घर जाने का ध्यान ?
सोए थे जब तुम रास्ते में, मुनिजन आते-जाते थे।
हाथ-पैर के संघट्टों से, क्षण-क्षण तुम्हें जगाते थे॥
नींद नहीं आने से तुम को, पीड़ा अधिक हुई महसूस ?
"घर जावूंगा पूछ प्रभु को, अब तो होते ही प्रत्यूष॥"
यही कल्पना लेकर के तुम, क्या आए हो मेरे पास ?
पूछ नहीं पाते हो कुछ भी, खड़े हुए हो बने उदास॥
क्या यह अर्थ समर्थ बतावो, 'मेघ' तभी 'जी हां' बोले।
संयम में स्थिर करने को फिर, जन्मान्तर के पट खोले॥

मेघ का पूर्व जन्म :

प्रभु बोले—अय मेघ मुनि! तुम, अपना पिछला जन्म सुनो।
इससे, उससे, उससे पहले, भव का सारा भाव सुनो॥

गिरिवैताढ्य तलहटी में तुम, हाथी बनकर रहते थे।
नाम 'सुमेरुप्रभ' से सारे, वनवासीजन कहते थे॥
चन्द्रकिरण सम,दुग्ध-फेन सम, शरत्काल के मेघ समान।
शंख सरीखा उज्ज्वल सुन्दर, वर्ण सफेद तुम्हारा जान॥
सातों अंग सुडौल पुष्ट तन, बड़ा प्रशस्त बना संस्थान।
सात हाथ की ऊंचाई, नव- लम्बाई, दस मध्य सुजान!
मस्तक बड़ा विशाल मनोहर, पुष्ट प्रदेश वराह समान।
अजा-उदर-सा उदर समुन्नत, मांसल सुन्दर अधिक पिछान॥
कर्ण, कपोल, सूंड, दान्त, नख, सुन्दर आकृति वाले थे।
दिखते बड़े पहाड़ सरीखे, बने हुए मतवाले थे॥
बहुत हस्तियों हस्तिनियों का, यूथ विशाल तुम्हारा था।
सब से घिरे हुए रहते थे, उनका एक सहारा था
पथदर्शन लेते रहते थे, तुम से हस्ती एक हज़ार
कभी अकेले हस्ती तुम से, मांग लिया करते सहका
तुम अपनी परिवार वृद्धि का, पूरा-पूरा रखते ध्या
संख्या के बल पर ही सारे, माने जाते हैं बलव
नित्य प्रमत्त बने रहते थे, विषय भोग क्रीड़ा में
भोग पिपासा प्रतिदिन बढ़ती- हुई तुम्हारी भी अ
कभी गुफाओं के भीतर तुम, कभी पर्वतों के
कभी किनारे नदियों के तुम, जल में कभी-कभी

कभी कमल वाले सरवर में, कभी पंक में बने निमग्न ।
वनों, काननों, उद्यानों में, क्रीड़ा करते थे निर्विघ्न ॥
बावड़ियों में कभी, कभी नदियों, के संगम स्थानों में ।
हस्तिनियों के साथ विचरते, कभी खेत के धानों में ॥
कोई वनचर नहीं रोकता, डरते अपने मरने से ।
बड़े सुखी थे इसीलिए तुम, मन का चाहा करने से ॥

वन में दावानल :

वक्त एक-सा नहीं किसी का, सुख ही सुख में बीता है ।
किसी कल्प में नहीं उम्र से, अधिक आदमी जीता है ॥
बांसों का संघर्षण होकर, वन में लगी भयंकर आग ।
घास-पेड़ सब जलते मानो, महाकाल का गाते राग ॥
तेज हवा के झोंके उसका, लगे बढ़ाने पूरा वेग ।
उपदेशों से ज्यों बढ़ता है, आत्मार्थी नर का संवेग ॥
जले हुए भीतर से पादप, खड़-खड़ करके गिरते हैं ।
अनासक्त मानव के जैसे, कर्म शीघ्र [illegible] हैं ॥

मृत खर्गोश हिरन आदिक पशु, [illegible]
दावानल से भीत हुई है, [illegible]

[illegible]

सुलग रहा है कहीं-कहीं पर, धीरे-धीरे फिर भी वन।
झगड़ा करके आए हो ज्यों, शीघ्र न होता ठण्डा मन ॥
दावानल के बुझ जाने पर, वन के पशु-पक्षी सारे।
इधर-उधर सब निकल पड़े हैं, क्षुधा-पिपासा के मारे ॥
नदियों का जल पहले से ही, सूख गया था गर्मी से।
जैसे प्रेम टूट जाता है, इकतर्फी हठधर्मी से ॥
कांव-कांव करते हैं कौवे, शिथिल पड़े प्यासा से पंख।
ज़हरीले कीड़े भी अब तो, भूल गए हैं अपना डंक ॥
सूरज और अधिक तपने पर, प्राणी सारे त्रस्त हुए।
तुम अपने परिवारसहित क्षुत्, तृट् से अति संत्रस्त हुए ॥
वज्र सरीखी चिंघाड़ों से, मानो फोड़ रहे आकाश।
पाद प्रहारों से भूतल का, मानो लगा फूलने सांस ॥
ऊंची पूंछ उठाकर अपनी, सूंड सभी ने ली संकोच।
पानी कहां मिलेगा हमको, हुआ सभी के मन में सोच ॥
तोड़ टहनियां लगे गिराने, बल्लरियों की जड़ें उखाड़।
छोटे जीवों पर तो मानो, गिरा दिया है बड़ा पहाड़ ॥
लुट जाने से देश नृपति की, जैसे होती दशा बुरी।
तीव्र हवा से प्रेरित नावा, इधर गिरी ज्यों इधर गिरी ॥
भूख-प्यास की दु:सह पीड़ा- भय से घबड़ा उठे सकल।
जाएं किधर हाय! क्या खाएं, काम नहीं कर रही अकल।

दन्त-मूशलों से उसने फिर, किए पीठ में तीक्ष्ण प्रहार।
सत्य कहा है क्रोधोदय में, हो जाते हैं नष्ट विचार॥
एक बार, दो बार, तीसरी- बार किए हैं अधिक प्रहार।
हां-हां ! हो-हो ! मजा आगया, याद करो अपना व्यवहार॥

बदला लेकर खुशी मनाता, पानी पीकर चला गया।
करता बुरा मूढ़ यह प्राणी, और सोचता भला किया॥

तुम बूढ़े थे फंसे हुए थे, सभी तरह से थे लाचार।
परवशता से सहना पड़ता, अन्यायी का अत्याचार॥

वेदना और अन्तकाल :

मेघ ! तुम्हारे सारे तन में, हुई वेदना भारी व्याप्त।
अपने कर्म बिना भोगे ही, कैसे होते कहो समाप्त॥
जगह-जगह पर घाव हुए थे, दर्द हुआ सारे तन में।
कहा न जाता, लिखा न जाता, जो आता संवेदन में॥
तिल में तेलव्याप्त ज्यों रहता, पीड़ित सारा हुआ वदन।
पित्तज्वर दाहज्वर से तुम, जलते करते घोर रुदन॥
एक नहीं, दिन रात सात तक, पाया है कर्मों का भोग।
वहीं मर गए, होता है, जो होता है अपना संयोग॥

पुनः हाथी का भव :

छोड़ा एक शरीर दूसरा, और शरीर किया तैयार ।
घूम रहा है चक्र काल का, पलट रहा सारा संसार ॥
पर्यायें ही नज़र आ रहीं, दुनिया में इस चेतन की ।
सदा अमूर्त अवस्था होती, आत्मा के संवेदन की ॥
काल अनन्त हो गया ऐसे, जन्म-मरण करते-करते ।
फिर भी भव के भय से प्राणी, नहीं कहो कैसे डरते ?
करणी के अनुसार योनि में, जन्म लिया करता है जीव ।
कर्मप्रधान जगत है सारा, जैन धर्म की है यह नींव ॥

आर्त्त अवस्था में मर करके, हाथी का भव पाया फिर ।
गंगा महानदी के दक्षिण- तट पर विंध्याचल गिरिवर ॥
मत्त गंधहस्ती के द्वारा, गज करेणुका-कुच्छी से ।
जन्म वसन्त समय में पाया, पुण्योदय की लच्छी से ॥
जवा-कुसुम-से, लाक्षा-रस-से, कुंकुम-से रक्तोत्पल-से ।
सन्ध्या रंग सरीखे सुन्दर, लाल वर्ण थे हलचल से ॥

हस्तिनियों के उदर देश पर, रख वचपन में शुण्डादण्ड ।
वनों, पर्वतों में घूमा करते थे रखते वहुत घमण्ड ॥

यौवन और जातिस्मरण :

चार दन्त अत्यन्त चारुतर, नाम-'मेरुप्रभ' किया गया।
बाल्यभाव से मुक्त बने जब, यूथपति पद दिया गया।
हस्तिनियां थीं, साथ सात सौ, आधिपत्य करते उनका।
सुखपूर्वक थे सदा विचरते, मज़ा लूटते जीवन का।

जेठ महीना आया वन में, लगी भयंकर दावानल।
जैसा पिछले भव में वर्णन, किया गया है वही सकल।
लिए यूथ को घूम रहे तुम, वन में इधर-उधर भागे।
सारा साथ भागता पीछे, तुम थे उन सब के आगे।
कहीं उपद्रव इसी तरह का, मैंने पहले देखा है।
लेश्याओं की-परिणामों की, शुद्ध हो गई रेखा है॥
'जातिस्मरणज्ञान' के द्वारा, पूर्वजन्म देखा अपना।
लगा सोचने-जागृत हूँ या— मुझे आ रहा है सपना?
ऐसा ही है यह दावानल, देखा आज दूसरी बार।
इससे बचने का अब हम को, करना होगा सही विचार॥

जीवन किसे नहीं हैं प्यारा, तुमको भी वह प्यारा था।
दुख से बचने का दृढ़ निश्चय, मन में तुमने धारा था॥

सुरक्षा का साधन—मण्डल :

सायंकाल उसी दिन सारे, एक स्थान बैठे मिलजुल ।
गंगा तट पर बनवाना है, गोलाकार बड़ा मण्डल ॥
निश्चय किया सभी ने ऐसा, आया देखो वर्षाकाल ।
काम हुआ प्रारम्भ साथ में— सारा यूथ लगा तत्काल ॥
हिला-हिला कर जड़ें उखाड़े, बड़े-बड़े जो पेड़ खड़े ।
काष्ट, पत्र, तृण और लताएं, कभी बीच में नहीं अड़े ॥
उठा सूंड से दूर कहीं पर; ले जा करके डाल दिए ।
अब मण्डल के इर्द-गिर्द ही, रहकर नित सम्भाल किए ॥
ज़ोरदार जब वर्षा होती, तब तुम वहीं पहुँच जाते ।
घास-फूस जो उगा हुआ कुछ, होता साफ़ बना आते ॥
चारों दिशि में चार कोश का, साफ़ स्वच्छ रखते मण्डल ।
यहां नहीं जल पायेंगे हम, जल जाए चाहे जंगल ॥
नहीं जलाने लायक कुछ भी, यहां रखा है हमने अब ।
'जातिस्मरण ज्ञान' के द्वारा, किया यही था तुमने सब ॥
अन्तिम वर्षा के दिन में भी, घूम घुमाकर फिर आते ।
साफ़ सफाई मण्डल की कर, सारे कहीं निकल जाते ॥
एक बार, दो बार, तीसरी- बार स्थान को साफ़ किया ।
यूथ सुरक्षा का साधन यह, तुमने अपने आप किया ॥

गंगा महा नदी के दक्षिण— तट पर विन्ध्याचल के मूल।
जीवन का आनन्द भोगते, यूथ सदा सारा अनुकूल॥
ग्रीष्मकाल के प्रारँभिक दिन, क्रीड़ा करते विचर रहे।
हस्तिनियों के साथ मस्तियां- पर तुम सारे उतर रहे॥
भर भर शुण्डादण्ड तुम्हारे— पर वे धूल उछाल रहीं।
आधी तुम पर आधी अपने— पर ही वापस डाल रहीं॥
ऋतु के फूलों की ले आता, अपने साथ समीर सुगन्ध।
सूंघ-सूंघ कर तुम बन जाते, ज़ोर-ज़ोर से और मदान्ध॥
गन्ध युक्त मद झरता रहता, गीले रहते सदा कपोल।
हस्तिरत्न का पद पाया था, करता रहता अति कल्लोल॥

सूखी तरुवर की शाखाएँ, दिनकर तपने लगा प्रचण्ड।
अधिक करों का भार बढ़ाकर, मानो भूपति देता दण्ड॥
सूखे पत्ते कूड़ा कर्कट, उड़कर छा लेते आकाश।
इस मिष से वन लगा बोलने, अभी यही है मेरे पास॥

व्याघ्र, शेर, चीते, भालू भी, लगे घूमने इधर-उधर।
पानी पीने की कोशिश में, मानो निकले हैं बाहर॥

तेज़ हवा की आवाजों से, लगे जानवर भी डरने।
घोर भयावह जंगल में क्या, मानव आता है मरने ?

पुनः दावानल :

इस में कभी-कभी उस वन में, लगती ही रहती है आग।
इस वन के पशु-पक्षी सारे, उस वन में जाते हैं भाग ॥
धुएं से आकाश भर गया, घास-फूस जल भस्म हुआ।
जगह-जगह पर जंगल में वह, भारी भूतल भस्म हुआ ॥
नहीं भागने का था रास्ता, ज्वालाओं का कोट बना।
नहीं बचेंगे - नहीं बचेंगे, मन में भय का गोट बना ॥
नयन घूमने लगे तुम्हारे, भय के मारे चारों ओर।
मण्डल में चल ठहरें सारे, समझी यही सुरक्षित ठौर ॥
पहले से ही जमा हो गए, वहां जंगली जीव अनेक।
ऐसे लगता था अब हस्ती, नहीं समा सकता है एक ॥

खरगोश और तू :

किन्तु सभी ने धीरे-धीरे, मण्डल में पाया है स्थान।
हिला-हिला ज्यों डाला जाता, धान्य और अथवा सामान ॥

सिंह व्याघ्र,वृक,भल्लुक सूकर, शशक, लोमड़ी और सियाल।
हिरण, बिल्लियां, बारहसिंगा, गेण्डे, चीते, वानर, व्याल॥
मरने के भय से इन सब ने, आकर रोक लिया मण्डल।
चतुरांगुल की बात छोड़िये, जगह नहीं धरने को तिल॥
पैर रहे अड़, अड़ती पूंछें, अड़ते हैं आपस में हाथ।
जाति वैर को आज भुलाकर, किन्तु सभी बैठे हैं साथ॥
शत्रु कौन है ? मित्र कौन है ? आया ? कौन नहीं आया ?
नहीं किसी को पता अभी है, क्षण भर का जीवन पाया॥
स्वच्छ, साफ़-सुथरा मण्डल है, यहां नहीं आ सकती आग।
अगर यहां भी आयेगी तो, कहीं न जा सकते हैं भाग॥
कीड़े और मकोड़े जैसे, बसते हैं जाकर बिल में।
वैसे ही सब बैठ गए हैं, मरने का डर ले दिल में॥
उसी समय मैं मेघ ! तुम्हारे, तन में खुजली आई है।
उसे मिटाने को तुमने तब, अपनी टांग उठाइ है॥
इधर भीड़ को बलवानों ने, धक्का एक लगाया है।
जगह पैर रखने की थी, खरगोश वहां पर आया है॥
वापस रखने लगा पांव जब, सुसिये पर आई करुणा।
ऐसे विकट समय में सुन्दर, परिणामों की है स्फुरणा॥
प्राण, भूत, सत्वानुकम्पया, पैर उठाए रखा अधर।
यदि रख देता पांव भूमि पर, तो सुसिया वह जाता मर॥

कुमार

खरगोश की रक्षा करता हुआ हाथी

तूने अपना पांव उठाया, अपना तन खुजलाने को।
तीन पांव पर खड़ा रहा तू, इक खरगोश बचाने को॥

करुणा का महान फल:

मेघ! उसी क्षण तुमने बांधा, आयुकर्म मानव गति का।
सारा पुण्य प्रताप समझिए, अनुकम्पा की परिणति का॥
किस क्षण में किस योनि-जाति के, कर्म बांध लेता है जीव।
आठ कर्म का वर्णन 'चन्दन', जैन धर्म का सूक्ष्म अतीव॥
कर्म बांधने, कर्म तोड़ने, में आत्मा है सदा स्वतन्त्र।
किए हुए सारे कर्मों के, भोग भोगने में परतन्त्र॥
जब-जब समय कर्म का पकता, तब-तब फल दिखलाते हैं।
कोई तो हंस कोई रोकर, अपना कर्ज चुकाते हैं॥
शुभ परिणामों से शुभ आयुः, जाति,स्थिति,गति,नाम मिले।
बीज आक का बोया हो तो, आम कभी भी नहीं फले॥

उसके बाद वही दावानल, रहा सुलगता ढाई दिन।
ढाई दिन की छिन-छिन पूरी, की जीवों ने तो गिन-गिन॥
दावानल बुझ गया सभी जब, शान्त हो गया देखो वन।
जितने प्राणी एकत्रित थे, सब निकले थे उत्सुक मन॥

अपनी-अपनी गति से, मति से, पहुँचे सारे अपने स्थान ।
जीव मात्र में होता ही है, कुछ-कुछ तो विकसितविज्ञान ।।
ढाई दिन की भूख-तृषा से, पीड़ित प्राणी फिरते हैं ।
जिसे जहां जो मिला उसे वह, खाकर वहीं विचरते हैं ।।
तेरे हाथी और हथिनियां, निकल पड़े हैं मण्डल से ।
विखर बीड़ियां जाती जैसे, देखो खुल्ले बण्डल से ।।
शिथिल शरीर बना था सारा, तुम्हें बुढ़ापा आने से ।
दुर्वल क्लान्त बने ठूंठे से, ऊंचा पैर उठाने से ।।
चला गया खरगोश और सब, चले गये मेरे साथी ।
भूख-तृषा मेरे से ज्यादा, और निकाली ना जाती ।।
तुमने अपना पांव भूमि पर, रखने का जब किया प्रयास ।
स्वयं गिर पड़े मानो पृथ्वी, ऊपर गिरा कहीं आकाश ।।
स्थूल शरीर संभल नहीं पाया, हुई वेदना भारी व्याप्त ।
तीन रात-दिन भोग वेदना, जीवन लीला हुई समाप्त ।।

तू वही है :

सौ वर्षों की उम्र भोग कर, 'राजगृह' 'श्रेणिक' के घर ।
कूख धारिणी राणी की पा, जन्मे हो तुम पुत्र प्रवर ।।
बचपन बीता और जवानी- के दिन देखे सुन्दरतम ।
इतने ही में 'राजगृह' में, इधर विचरते आए हम ।।

सुन वाणी वैराग्य प्राप्त कर, अनुमति लेकर दीक्षा ली।
सिद्धि प्राप्त करने की समुचित, सचमुच में सब शिक्षा ली॥
एक रात का कष्ट जरा-सा, सहन नहीं कर पाये तुम?
पुनः गृहस्थाश्रम में जाने- की इच्छा दिल लाए तुम?

पुनः आत्म जागरणा :

तीन भवों की बीती बातें, महावीर के पास सुनी।
'मेघमुनि' की मनोभावना, ऊंची और प्रशस्त बनी॥
लेश्याएं निर्मल बनने से, पूर्व भवों का हुआ स्मरण।
क्षय, उपशम कर्मों का होता, होता ज्ञान तभी उत्पन्न॥
जैसा सुना महावीर से, वैसा सारा जाना हाल।
बिल्कुल सही बताया भगवन्! धन्य! धन्य! हे दीन दयाल!
द्विगुणित हर्ष हुआ है दिल में, हो आया तत्क्षण रोमाञ्च!
आनन्दाश्रु निकल पड़े हैं, छूटा झूठा सभी प्रपञ्च॥
बारम्बार विनय दिखलाता, प्रभु के सम्मुख जोड़े हाथ।
पांच महाव्रत पुनः दीजिये, कृपा कीजिये दीनानाथ!
महाव्रतों का पुनः प्रभु ने, उच्चारण करवाया है।
जैसे पहले शिक्षायें दीं, वैसे ही समझाया है॥
हाथ जोड़ कर ग्रहण किया फिर, महावीर का वह उपदेश।
जिससे कि कट जाएं जड से, जन्म-मरण के सब संक्लेश॥

दोहा

प्रभु तो दीनदयाल थे, करुणा के भण्डार ।
'मेघमुनि' का कर दिया, अजब-गजब उद्धार ॥
अस्थिर चित्त असंयम प्रिय को, संयम में सुस्थिर करके ।
'मेघमुनि' को किया उपकृत, क्या गुण गायें जिनवर के ॥

कृतज्ञता-ज्ञापन :

बोला—जो उपकार आपने, आज किया है भारी यह ।
भूलूंगा न दीनदयालो ! मैं तो आयु सारी यह ॥
रुल जाता भवसागर में जो, पाता आज सहारा न ।
दुनिया के इस चक्कर का फिर, मिलता जल्द किनारा न ॥
तन-मन से सेवा सन्तों की, निश-दिन खूब बजाऊंगा ।
दो नयन सिवा इस काया की, परवाह जरा न लाऊंगा ॥
निभना भारी दयाधर्म का, मुश्किल है बिन आंखों के
अतः सदा मैं सदके निश-दिन, जाऊंगा इन आंखों के ॥
हर्षित हो फ़िर जिनवर ज़ी को, अपना शीस झुकाते हैं ।
ज्ञानी गुणियों, मुनियों से वे, आगम पढ़ते जाते हैं ॥
'राजगृहपुर' में ज़ब-कब भी, भिक्षा को वे जाते हैं ।
कोमलता, तप, त्याग देख कर, सारे लोग सराहते हैं ॥

कहते थे नर-नारी मुख से, त्याग इसी को कहते हैं।
मिले सुखों को ठोकर मारी, जग हित करते रहते हैं॥
भक्ति, ज्ञान की स्वयं मूर्ति बन, सदा धर्म फैलाते हैं।
लेते नहीं चढावे बिल्कुल, अनासक्त कहलाते हैं॥
दया दुंदुभि देखो कैसी, मुनि ने मधुर बजाई है।
हिंसा झूठ हटाकर दुनिया, सीधे राह लगाई है॥

दोहा

यश;-कीर्ति 'मुनिमेघ' की, फैल रही चहुँ ओर।
इधर तपस्या पर दिया, मुनि ने अपना जोर॥

अणगारों के पास किया ज्यों, शास्त्रों का पूरा अभ्यास।
घोर तपस्याओं के द्वारा, कर्मों का कर रहे विनाश॥
बेले, तेले, चौले करते, करते देखो मासखमण।
ज्ञान, ध्यान, तप, जप में रहते, रत हैं सच्चे सन्त-श्रमण॥

प्रतिमाएं और गुणरत्न संवत्सर :

'राजगृहपुर' से प्रभुवर ने, देखो अपना किया विहार।
जगह-जगह पर जैनधर्म का, ऐसे ही तो हुआ प्रचार॥

थोड़ा सा इस तप का वर्णन, करना यहां जचा उपयुक्त।
शास्त्र सामने रहा हमेशा, नहीं चला जाता उन्मुक्त॥
सोलह तो उपवास बाद में, बेले दस बतलाए हैं।
तेले आठ सुनो छः चोले, पांच पंचोले आए हैं॥
छः के चार, सात से लेकर, ग्यारह तक जो नम्बर हैं।
तीन बार सब करने होते, कहते ऐसे जिनवर हैं॥
बारह से सोलह तक सारे, आते दो-दो बारी जी!
'मेघमुनि' ने सभी तपस्या, विधि से पार उतारी जी!

शारीरिक कृशता :

दुर्बल देह बनी है ज्यों-ज्यों, आत्मा निर्बल सबल हुई।
प्रभु करुणा से मेघ मुनि की, मनोभावना सफल हुई॥
सूखे पत्ते, सूखे लक्कड़, शुष्क कोयले तृण जैसे।
गाड़ा भर कर ले जाने से, खड़-खड़ वे करते ऐसे॥
हिलते-चलते आते-जाते, सभी हड्डियां बोल रहीं।
कुछ भी नहीं रहा हमारे- अन्दर अन्तर खोल रहीं॥
सूखा, लूखा, मांस रहित तन, चट-चट की देता आवाज।
इस मिष से सूचन करता है, तुम्हें मिलेगा अविचल राज॥
भस्म राशि से ढकी हुई ज्यों, अगनी दिखती है निस्तेज।
ऊपर तेज रहित हैं मुनिवर, अन्दर चमक रहा तप तेज॥

संथारा 'पादोपगमन' ले, नहीं मृत्यु की देखूं राह।
ऐसी उत्तम अन्तिम इच्छा, हुई 'मेघ मुनि' को सोत्साह॥

प्रभु का पूर्ण समर्थन :

निकला सूरज आए मुनिवर, 'महावीर प्रभु' जी के पास।
वन्दन नमन किया फिर बैठे, लेकर अपने मन की आश॥
नहीं बहुत ही दूर, बहुत ही- निकट नही बैठे जाकर।
ओ मेहा ! प्रभु ने संबोधित, किया स्वयं ही करुणा कर॥
ऐसे अध्यवसाय हुए थे, आज तुम्हारे इस मन में।
क्या यह बात सही है?सुनकर, फूले 'मेघ मुनि' तन में॥
हां प्रभु!बिल्कुल सत्य यही है, इसीलिए मैं आया हूँ।
'संथारा' करने की आज्ञा, लेने को ललचाया हूँ॥
'यथा सुखं' हे देवानुप्रिय ! नहीं प्रमाद कभी करना।
सुनकर बहने लगा हर्ष का, झर-झर करता निर्झरना॥

अन्तिम क्षमा याचना :

'तिक्खुत्तो' का पाठ बोलकर, नमन किया है प्रभुवर को।
पुनरुच्चारण किया व्रतों का, मानो सींचा तरुवर को॥

गौतमादि सारे श्रमणों से, खमतखामना करते हैं।
छोटे-बड़े सभी श्रमणों को, बिलकुल नहीं विसरते हैं॥
कभी किसी का भूल-चूक से, किया अगर मैंने अपराध।
क्षमा मुझे कर देना सन्तो ! बनकर दिल के सिंधु अगाध॥
प्रभु की आज्ञा प्राप्त होगई, मैं लूंगा अब 'संथारा।'
यात्री ज्यों सामान साथ में, ले लेता अपना सारा॥
सभी साधुओं ने सुन करके, कहा—बहुत ही अच्छा काम।
धन्य! धन्य हो! मेघ ! मुक्त बन, पहुँचो अजर-अमर पद धाम॥

विपुलगिरि पर :

साथ बड़े सन्तों को लेकर, पर्वत पर वे आते हैं।
मेघ सरीखी श्याम शिला पर, सूखा घास बिछाते हैं॥
पूर्व दिशा की ओर मुंह कर, बैठे धर कर पद्मासन।
मानो किसी बड़े राजा का, लगा हुआ है सिंहासन॥
अंजलिपुट हो शीस झुकाया, किया 'वीरप्रभु' को वन्दन।
बैठा हुआ यहीं पर करता, हे प्रभु ! शतशः अभिनन्दन॥
आप वहीं से देख रहे हो, जो कुछ भी मैं करता हूँ।
तुम्हें, तुम्हारी आज्ञा को ही, सम्मुख लिए विचरता हूँ॥
सारे पापों को छोड़ा था, मैंने पहले प्रभु के पास।
वैसे ही अब छोड़ रहा हूँ, धर कर पूरा वीर्योल्लास॥

इष्ट, कान्त, प्रिय, तन जो मेरा, छोड़ रहा इसकी ममता।
जब तक श्वासोच्छ्वास चलेगा, सदा रखूंगा मैं समता॥
जैसे बड़े वृक्ष की शाखा, कट करके गिर जाती है।
हिलती-डुलती नहीं ज़रा भी, स्थिरता को अपनाती है॥

देह विसर्जन करके मुनिवर, आत्मभाव में लीन हुए।
होते हुए जीव के भी वे, उससे सत्य विहीन हुए॥

आए हुए साथ में मुनिवर, सेवा - धर्म बजाते हैं।
ज्ञान सुना कर परिणामों की, धारा खूब चढ़ाते हैं॥
उत्तर साधक के लायक सब, काम बजाते रहे स्थविर।
अन्त समय में बिना सहायक- के होता जीवन दुर्भर॥
अच्छे स्थविर सहायक हों तो, मरण समाधि-युत होता।
आर्त, रौद्र परिणामों से वह, सन्त सदा विरहित होता॥
अन्त समय में मिला सहारा, वही सहारा सच्चा है।
अंगुली बिनां थमाए कैसे, चलता बोलो बच्चा है॥
एक मास तक का संथारा, संयम पाला बारह साल।
'मेघ मुनि' ने शुभ भावों से, पाया है अब अन्तिम काल॥

कायोत्सर्ग किया स्थविरों ने, व्युत्सर्जन मृत तन का कर।
लेकर के उपकरण सभी वे, आए गिरि से स्वयं उतर॥

'गुणशैलक' उपवन में आए, महावीर प्रभुवर के पास।
वंदन-नमन किया है विधि युत, बतलाया पूरा इतिहास ।।

दोहा

दोष अठारह से रहित, दीनानाथ दयाल।
'मेघमुनि' के उपकरण, लें सारे सम्भाल ।।

स्थविरों का प्रश्न और प्रभु का उत्तर :

भद्र-शान्त प्रकृति वाला मुनि, मृदु-मार्दव गुण से सम्पन्न।
शिष्य विनीत आपका भगवन्, कहां हुआ होगा उत्पन्न ?
बोले प्रभु-सुविनीत शिष्य मुनि, मेघ गया है 'विजय' विमान।
होता है आयुष्य वहां, तेतीस सागरोपम परमाण ।।

मनहर छन्द

भोग के समस्त भोग, देवयोनि वाले फिर
खेतर विदेह में, मनुष्य तन पायेंगे।
दुनिया के भोग छोड़, संयम से मन मोड़
शुक्लध्यान द्वारा सारे, करम खपायेंगे

जनम न जरा जहां, रोग नहीं सोग नहीं
मृत्यु नहीं दोष नहीं, स्थान अपनायेंगे
आत्मिक अनन्त सुख, 'चन्दन' मिलेगा वहां
वापिस कभी भी लौट, कर नहीं आयेंगे ॥

सिद्ध बनेगा, बुद्ध बनेगा, मुक्त बनेगा 'मेघकुमार।'
महावीर प्रभु ने फ़रमाया, 'चन्दन' पूर्ण हुआ अधिकार ॥

कथासार :

उपालम्भ आत्मा को देने, कहा गया है यह अधिकार।
दया पालिये—दया पालिये, सारा यही कथा का सार ॥
सांसारिक कामों को करते, आत्मा रहता बहुत प्रसन्न।
धर्म प्रवृत्ति करते टाइम, तू क्यों हो जाता है खिन्न?
धर्म नहीं करने वाला ही, शत्रु स्वयं का स्वयं सदा।
नाम मात्र का मानव, मानव- नहीं, वस्तुतः वही गधा ॥
सारे योग मिले हैं फिर भी, आंखें खोल नहीं सकते।
मानव जन्म अमोल मिला है, इसको तोल नहीं सकते ॥
अविहित कार्य छोड़ दो सारें, विहित कार्य में रत बनकर।
लाभ उठालो पढ़कर अथवा, ज्ञानी सन्तों से सुनकर ॥

यही कथा का सार समझ लो, करुणा को अपना लेना।
कष्ट उठाकर आप किसी का, फ़ौरन कष्ट मिटा देना॥
पत्थर जैसा कठिन हृदयकर, जीना भी क्या जीना है ?
छोड़ सुधारस, विषका प्याला, पीना भी क्या पीना है ?
दयाधर्म का पालन अच्छा, या हिंसा करना अच्छा ?
भोग भोगते मरना अच्छा, या व्रत आचरना अच्छा ?
खुशी सभी को प्यारी लगती, नहीं किसी को प्यारा गम।
इसीलिए सब अपने दिल में, जीवमात्र पर रखें रहम॥

दया समान नहीं है अमृत, दया सभी धर्मों का मूल।
सब कुछ याद रहा करता है, किन्तु दया क्यों जाते भूल ?

अगर दया-देवी का दिल में, होगा किंचित् भी सम्मान।
लूट सकेंगे आप कभी न, किसी जीव के प्यारे प्राण॥
नहीं हाथ से शस्त्र उठेगा, नहीं चलेगा कोई तीर।
पीर आपको होती जैसे, होती औरों को भी पीर।

कभी किसी अपराधी पर यदि, करना होगा कभी प्रहार।
फिर भी दयाधर्म के दिल में, आयेंगे ही पुण्य विचार॥
यह अपराध न करता तो क्यों, मुझे मारना होता आज।
अगर नहीं मैं मारूं मुझ को, कायर कहता सभी समाज॥

इसीलिए श्रावक कहता है, निरपराध को नहिं मारूं।
जितना शक्य मुझे लगता है, उतना ही व्रत मैं धारूं॥

पूर्ण दया पालन करने का, नाम महाव्रत पहला है।
तीन करण तीनों योगों से, रस्ता कहीं न सहला है॥

दया धर्म का लिए सहारा, सारे धर्म रहे हैं फूल।
वृक्ष फलेगा फूलेगा दृढ़- अगर रहेगा उसका मूल॥
दयाधर्म उठ जाने से ही, उठ जायेगा सब व्यवहार।
एक पलक में मच जाएगा, सारे जग में प्रलयंकार॥
दया, प्रेम, सहयोग, शान्ति पर, आधारित है जन जीवन।
वैर वैर से ही बढ़ता है, अनुभवगम्य सुरम्य वचन॥
'सुख देने से सुख मिलता है, दुख देकर दुख पाना है।'
इसी सूत्र को सभी सयाने- लोगों ने सच माना है॥
सत्ता के बल, धन के बल पर, जिसे सताया जाएगा।
बदला लेने को वह अगले, भव में वापस आएगा॥
तब सोचोगे—मेरे सर पर, यह क्या आफत टूट पड़ी।
किन्तु पाप से भरी हांडियां, आज अचानक फूट पड़ी॥
श्रद्धा पूर्वक सोच लीजिये, जैसी करनी वैसा फल।
इसमें फर्क नहीं पड़ सकता, चाहे जावो कहीं निकल॥

कर्म आपके साथ-साथ हैं, कभी नहीं होते न्यारे।
पहले कर्म आपको प्यारे, आप कर्म को अब प्यारे॥
अपने कर्म आपसे कैसे, छुप सकते हैं बोलो जी!
उदयकाल में खुल जाएंगे, चाहे तुम मत खोलो जी!
खुल्ले पृष्ठों जैसा जीवन, रखो मधुर अपना व्यवहार।
मर जाने के बाद आपको, याद करेगा यह संसार॥
महावीर प्रभु की वाणी का, श्रवण करो कुछ मनन करें।
'चन्दन' बन्धन तोड़ कर्म के, मोक्ष मार्ग पर गमन करें॥

'ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र' का, लिए-सहारा खड़ा चरित्र।
सुनने वाले और वांचने- वाले होंगे परम पवित्र॥
शास्त्रों में जो लिखे गए हैं, सत्य सत्य है एक वचन।
प्रभु-वाणी का गणधर देवों- ने ही देखो किया कथन॥
जैनधर्म के आचारों को, और विचारों को पढ़ना।
मेरा यही अभिप्राय है, आगम सारों को पढ़ना॥
आगम अगम कहे जाते हैं, गुरुगम से कुछ मिलता है।
एक सूत्र का सभी जगह क्या, यकसां अर्थ निकलता है?

रचयिता की ओर से :

मेरी इस लघु रचना में यदि, नजर किसी को आए दोष।
सूचित मुझे किया जाएगा, तभी मुझे होगा संतोष॥

इसीलिए श्रावक कहता है, निरपराध को नहिं मारूं।
जितना शक्य मुझे लगता है, उतना ही व्रत मैं धारूं॥

पूर्ण दया पालन करने का, नाम महाव्रत पहला है।
तीन करण तीनों योगों से, रस्ता कहीं न सहला है॥

दया धर्म का लिए सहारा, सारे धर्म रहे हैं फूल।
वृक्ष फलेगा फूलेगा दृढ़- अगर रहेगा उसका मूल॥
दयाधर्म उठ जाने से ही, उठ जायेगा सब व्यवहार।
एक पलक में मच जाएगा, सारे जग में प्रलयंकार॥
दया, प्रेम, सहयोग, शान्ति पर, आधारित है जन जीवन।
वैर वैर से ही बढ़ता है, अनुभवगम्य सुरम्य वचन॥
'सुख देने से सुख मिलता है, दुख देकर दुख पाना है।'
इसी सूत्र को सभी सयाने- लोगों ने सच माना है॥
सत्ता के बल, धन के बल पर, जिसे सताया जाएगा।
बदला लेने को वह अगले, भव में वापस आएगा॥
तब सोचोगे—मेरे सर पर, यह क्या आफत टूट पड़ी।
किन्तु पाप से भरी हांडियां, आज अचानक फूट पड़ी॥
श्रद्धा पूर्वक सोच लीजिये, जैसी करनी वैसा फल।
इसमें फर्क नहीं पड़ सकता, चाहे जावो कहीं निकल॥

कर्म आपके साथ-साथ हैं, कभी नहीं होते न्यारे।
पहले कर्म आपको प्यारे, आप कर्म को अब प्यारे ॥
अपने कर्म आपसे कैसे, छुप सकते हैं बोलो जी !
उदयकाल में खुल जाएंगे, चाहे तुम मत खोलो जी !
खुल्ले पृष्ठों जैसा जीवन, रखो मधुर अपना व्यवहार।
मर जाने के बाद आपको, याद करेगा यह संसार ॥
महावीर प्रभु की वाणी का, श्रवण करो कुछ मनन करें।
'चन्दन' बन्धन तोड़ कर्म के, मोक्ष मार्ग पर गमन करें ॥

'ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र' का, लिए-सहारा खड़ा चरित्र।
सुनने वाले और बांचने- वाले होंगे परम पवित्र ॥
शास्त्रों में जो लिखे गए हैं, सत्य सत्य है एक वचन।
प्रभु-वाणी का गणधर देवों- ने ही देखो किया कथन ॥
जैनधर्म के आचारों को, और विचारों को पढ़ना।
मेरा यही अभिप्राय है, आगम सारों को पढ़ना ॥
आगम अगम कहे जाते हैं, गुरुगम से कुछ मिलता है।
एक सूत्र का सभी जगह क्या, यकसां अर्थ निकलता है ?

रचयिता की ओर से :

मेरी इस लघु रचना में यदि, नजर किसी को आए दोष।
सूचित मुझे किया जाएगा, तभी मुझे होगा संतोष ॥

कविता लिखते समय बहुत ही, रखा गया है सम्यक् ध्यान।
'मुझ से भूल नहीं होती है, ऐसा मुझे नहीं अभिमान ॥
वाचक, पाठक, श्रोता मिलकर, यदि इसको अपनाओगे।
ऐसा करके ही 'चन्दन' का, साहस सत्य बढ़ाओगे ॥
नये चरित्रों का चित्रण में, नये ढंग से करूं सदा।
जिसके द्वारा जन जीवन में, धर्म भावना भरूं सदा ॥
गुरुवर जी की कृपा दृष्टि से, मेरी मेहनत सफल हुई।
स्याही और कलम मति मेरी, एक साथ में विमल हुई ॥
मण्डी जो पंजाब प्रान्त की, सभी मण्डियों में आला।
दया धर्म के भक्त जहां पर, मधुर नाम है 'बरनाला' ॥
दो हजार अट्ठाई विक्रम– का चौमासा सुखकर है।
जहां तीसरी बार रचा, संगीत मनोहर-सुन्दर है ॥

दोहा

पढ़कर इसको प्रेम से, सद्गुण लेना सीख।
देखो मेरी राय में, यही रहेगा ठीक ॥
त्रिशलानन्दन 'वीर' का, बहुत बड़ा उपकार।
'चन्दन' वन्दन कीजिये, नित उठ बारम्बार ॥
वर्षण बरसा तीसरा, धान हुआ तैयार।
मानो मेघ चरित्र का, बहुत बड़ा उपकार ॥

☆

प्रशस्ति

युग वदलता है प्रतिक्षण, वक्त बीता जा रहा।
जो गया वह फिर न आता, 'काल' यह बतला रहा॥
किन्तु जो नरदेव इस, भू पर सफल अवतार ले।
दुःख, भय और द्वन्द्व करते, दूर सब संसार के॥
मार्ग दिखलाते निरन्तर, विश्व के कल्याण का।
विश्वमंगल काम उनका, धर्म है निर्वाण का॥
है अमित उपकार उनका, सकल ही संसार पर।
कर रहे कल्याण हम, उनके वचन-आधार पर॥
ज्ञान की वह विमल ज्योति, वीर प्रभु—महावीर थे।
जगत जीवों के वे त्राता, धीर थे—गम्भीर थे॥
हैं विराजे वे हमारे, हृदय के अस्थान में।
बुझ न सकती यशःज्योति, काल के तूफान में॥

चरम तीर्थङ्कर जिनेश्वर, वर्धमान सुज्ञात सुत।
सुबह-सायंकाल 'चन्दन', नमन करता भाव युत॥
धर्मशासन विजयकारी, चल रहा उनका प्रवर।
हैं हुए आचार्य उनके, पट्टधर शुभ ज्योतिधर॥
जैन का उज्ज्वल सितारा, विश्व में चमका दिया।
भूले हुए लाखों जनों को, सत्य-पथ दिखला दिया॥
है विशद उज्ज्वल उन्हीं की, ज्ञान त्रिपुटी युक्त यह।
धर्म की आम्नाय सच्ची, क्लेश-द्वेष विमुक्त यह॥

धर्म ज्योति, धर्मनेता, 'धर्मदास' आचार्य वर।
आम्नाय स्थानकवासी, को गर्व है आप पर॥
दम, दया का सत्य का, जय नाद जग में था किया।
अन्धकाराच्छन्न युग में, धर्म-दीप जला दिया॥
संघ उनका यह यशस्वी, सत्य का अनुयायी है।
प्रमुख गुण पूजा यहां, युग-युग से चलती आई है॥

शिष्य उनके थे यशस्वी, 'योगराज' महा मुनि।
आचार्यवर सच्चे तपस्वी, थे मनस्वी सद्गुणी॥
सप्त व्यसनों का कराया, त्याग जन-जन को बहुत।
धर्म का उद्योत कर. सब को दिखाया सत्य-पथ॥

उनके विमल चरित्र की थी, छाप जन-जन पर अटल।
जो शरण में आगया बस, कर गया जीवन सफल॥

पूज्य 'हजारीमल' मुनिवर, शिष्य उनके थे कमाल।
थे धनी छत्तीस गुण के, थे आचार्य बे-मिसाल॥
मर्म बतला दान का और, धर्म दया मय का प्रखर।
ज्ञान - नौका में बिठा, तारे हजारों अज्ञ नर॥

'लालचन्द जी' पूज्य उनके, शिष्य अति गुणवान थे।
क्षमा के अवतार थे वे, सत्य की इक शान थे॥
प्राप्त कर जन-जन की श्रद्धा, ना अहं का नाम था।
शान्त मुख और मधुर वाणी, बोलना ही काम था॥
आचार्य 'गंगाराम जी' थे, शिष्य उनके ज्ञानवान।
धर्म का डंका बजाया, थी निराली आन-बान॥
तत्त्वज्ञानी ज्ञान की, गंगा बहाई जगत में।
चरण कमलों में शरण ले, शान्ति पाई जगत ने॥

जैन अम्बर में चमकते, जो सितारे एक थे।
'पूज्य जीवनराम जी', उज्ज्वल विमल विवेक थे॥

शिष्य गंगाराम जी के, गंग सम पावन हृदय।
ज्ञान की गरिमा ग़जब थी, था अजब उनका विनय॥
घूम बांगर, दिल्ली, बागड़, मारवाड़, मेवाड़ में।
कष्ट भारी थे सहे, नव क्षेत्र के प्रचार में॥
शान्त आत्मा परम त्यागी, लौ जली थी ज्ञान की।
कामना करते सदा थे, विश्व के कल्याण की॥

शिष्य उनके 'भगतराम जी, भक्त प्रभु के थे अटल।
भक्ति रस को बांट भक्तों– का किया जीवन सफल॥
मधुर भाषी, अल्प भाषी, और भक्ति लीन थे।
सिंह सम निर्भय विचरते, धर्म प्रचार प्रवीण थे॥

शिष्य उनके परम तेजस्वी, मनस्वी महा गुणी।
आचार्य 'श्रीचन्द्र जी' हुए, युग की अमोलक इक मणी॥
धर्म का उद्योत करते, हरते तम अज्ञान का।
क्या करूं वर्णन भला उस, जैन जग के भान का॥
दयाधर्म का झण्डा जगत में, आपने लहरा दिया।
सत्य - अहिंसा - शक्ति से, हिंसा का दिल दहला दिया॥
स्नेह उनके नयन में था, और मीठे थे वचन।
था खिला मस्तक उन्हीं का, ज्यों महकता हो चमन॥

'नवतत्व' 'सप्तनय' पुनि- 'सप्तभंग' 'षड्द्रव्य' का।
जब कभी करते विवेचन, तो सभी को श्रव्य था॥
गूढ तत्वज्ञान को भी, सरल सुबोध सुस्पष्ट कर।
सरस शैली से बनाते, श्रोतृ जन का कष्ट हर॥
थे खिंचे आते सहस्रों, मनुज भेद विभेद हर।
झूम उठते ज्ञान सुनकर, हृदय के सब खेद हर॥
गौर तन, तेजस्वी लोचन, औ चमकता भाल था।
ब्रह्मव्रत के तेज से, संदीप्त भाल विशाल था॥
मन सरल और शान्त था, प्रसन्न रहते थे वे नित।
इसलिये मुनिवृन्द में, सम्मान उनका था अमित॥
अन्तःवासी पूज्य श्री के, शान्तिसागर, धर्म धर।
'श्री श्रीपन्नालाल जी', महाराज गुरु मेरे प्रवर॥
आगमों में जो बताये, घोर तप और ध्यान जप।
शान्त मन से वे तपस्याएं, मेरे गुरुवर ने तप॥
कर्म का जंजाल मेटा, शुद्ध आत्मा स्वर्ण सम।
निस्पृही गुरुदेव को नित, वन्दना करते हैं हम॥
भक्ति युत सत्प्रेम मुझको, आज जनता दे रही।
और फिर दो शब्द सुनकर, ज्ञान भी कुछ ले रही॥
है उन्हीं की ही कृपा, वरदान जीवन का मिला।
भाग्य का 'चन्दन मुनि' के, पुष्प नित रहता खिला॥

पावन कथा 'मुनि मेघ' की, सत्प्रेरणा का श्रोत है।
भव्य जन के हृदय पथ, करती सदा उद्योत है॥
रंग शब्दों का मिला कर, कलम मैंने फेर दी।
कह न सकता चित्र कैसा, यह बना मेरे सुधी!

ढंग कविता का नहीं कुछ, ज्ञान पिंगल का नहीं।
इसलिए अय पाठको! लख दोष हंसना न कहीं॥
किन्तु इस में बात जो, अच्छी कोई तुमको लगे।
स्वीकार कर लेना उसे ही, हंस ज्यों मुक्ता चुगे॥
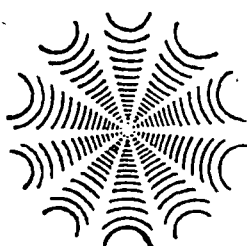
"श्री थावर्चापुत्र" श्रमण का, पढ़ो सरस संगीत भला।
विजय मौत पर पाने वाली, यहां मिलेगी श्रेष्ठ कला॥
अच्छा लगता हो वह लेले, सकुचाने की बात नहीं।
"शुक" सन्यासी का शिष्यों ने, दिया कहो क्या साथ नहीं ?
"सेलक ऋषि" सम समझ लीजिये, सेवनीय होता न प्रमाद।
पुनर्जागरण करने को यह, उदाहरण रख लेना याद॥
'पंथक मुनि' की शुभ सेवा का, अनुकरणीय न क्या आदर्श ?
नींद उड़ाने को ही मानो, हुआ शिष्य से गुरु-पद स्पर्श॥
धर्म-कथा से प्रथा धर्म की, जीवित रहती "मुनि चन्दन।"
हरती व्यथा मानसिक कायिक, वाचिक कट जाते बन्धन॥
प्रतिनिधित्व युग रुचियों का, कवि 'चन्दन मुनि' करता आया।
जिसने मथा उसी ने म्रक्षण, तत्क्षण ही तरता पाया॥

□

संगीत की आत्मा

प्रस्तुत संगीत 'श्री थावर्चापुत्र' मुनि की कहानी है। और है भोले बाल स्वभाव का स्वाभाविक चित्रण ! जिसे पता नहीं, कि पड़ोसी के घर नवजात शिशु का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। जिसे पता नहीं, कि ये मंगल गीत गाए जा रहे हैं। जिसे पता नहीं, कि मृत्यु के बाद क्यों और कैसे रोया जाता है। जिसे पता नहीं, कि ये गीत हैं या रोने की आवाज़ !

मां और पुत्र के सम्वाद से पुत्र की जिज्ञासा शान्त हुई या नहीं ? जिस पुत्र को दुनिया का भान न था वह मोक्ष के उपाय और मुक्ति-पथ प्रदर्शन के लिये प्रश्न छेड़ता है। मां न तत्त्व छुपाती है, न अपना ममत्व। अपने लाड़ले का विवाह एक ही नहीं बत्तीस कन्याओं के साथ किया।

वही 'श्री थावर्चापुत्र' समय आने पर एक हज़ार साथियों के साथ 'श्री नेमीनाथ भगवान' के पास प्रव्रजित हुए। जगत्कल्याण की कामना लेकर धर्म का प्रचार किया। आचार और विचार-शुद्धि पर बल दिया। जिनकी वाणी में ऐसा निर्मल और निश्छल बल था कि जिसने 'शुक' संन्यासी के मानस को बदल दिया।

मुनि जी ने अन्त में पुण्डरीक गिरि पर अनशन लेकर मोक्ष प्राप्त किया।

'श्री थावर्चापुत्र मुनि' के शिष्य 'शुक मुनि' ने भी गुरु-परम्परा को निभाया और मोक्ष को पाया।

'शुक मुनि' के शिष्य 'श्री सेलक राजऋषि' का पुनर्जागरण का उदाहरण एक नवीनीकरण लिये हुए है। गिर करके उठना सरल नहीं, कठिन नहीं, अत्यन्त कठिन है।

इस एक संगीत में तीन पीढ़ियां हैं। यह संगीत एक तीर्थंकरों का चिन्तन है। यह संगीत एक गणधरों का गुंफन है। यह संगीत एक आगम का अंग है। यह संगीत एक शिक्षाप्रद जीवनचरित्र, इतिहास और कथा है।

यह संगीत प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी भाषाओं में रचा हुआ होने पर भी मैंने इसे मेरी रुचि के अनुसार रचा है।

पाठक वृन्द संगीत की इस आत्मा को पढ़कर सन्तोष न कर लें, किन्तु पूरा संगीत पढ़कर ही सन्तोष करें।

—चन्दन मुनि

मंगलाचरण

दोहा

'श्री थावर्चापुत्र' का, लिखना चारु चरित्र ।
शब्द चित्र से प्रेरणा, लेना परम पवित्र ॥

'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग' का, लेकर के आधार ।
'चन्दन मुनि' लिखने चला, कथा विस्तृताकार ॥

भद्र बनो, भोले नहीं, तको नहीं छल छिद्र ।
कथा सुनो सद्भाव से, होकर के उन्निद्र ॥

नहीं वासनाएं रखो, भोग कर्म का भोग ।
धर्म ध्यान में निरत रखो, आत्मा का उपयोग ॥

मुनि जी ने अन्त में पुण्डरीक गिरि पर अनशन लेकर मोक्ष प्राप्त किया।

'श्री थावर्चापुत्र मुनि' के शिष्य 'शुक मुनि' ने भी गुरु-परम्परा को निभाया और मोक्ष को पाया।

'शुक मुनि' के शिष्य 'श्री सेलक राजऋषि' का पुनर्जागरण का उदाहरण एक नवीनीकरण लिये हुए है। गिर करके उठना सरल नहीं, कठिन नहीं, अत्यन्त कठिन है।

इस एक संगीत में तीन पीढ़ियां हैं। यह संगीत एक तीर्थंकरों का चिन्तन है। यह संगीत एक गणधरों का गुंफन है। यह संगीत एक आगम का अंग है। यह संगीत एक शिक्षाप्रद जीवनचरित्र, इतिहास और कथा है।

यह संगीत प्राकृत, संस्कृत, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी भाषाओं में रचा हुआ होने पर भी मैंने इसे मेरी रुचि के अनुसार रचा है।

पाठक वृन्द संगीत की इस आत्मा को पढ़कर सन्तोष न कर लें, किन्तु पूरा संगीत पढ़कर ही सन्तोष करें।

—चन्दन मुनि

मंगलाचरण

दोहा

'श्री थावर्चापुत्र' का, लिखना चारु चरित्र।
शब्द चित्र से प्रेरणा, लेना परम पवित्र॥

'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग' का, लेकर के आधार।
'चन्दन मुनि' लिखने चला, कथा विस्तृताकार॥

भद्र बनो, भोले नहीं, तको नहीं छल छिद्र।
कथा सुनो सद्भाव से, होकर के उन्निद्र॥

नहीं वासनाएं रखो, भोग कर्म का भोग।
धर्म ध्यान में स्थित रखो, आत्मा का उपयोग॥

बनी रही यदि वासना, कभी न होगा अन्त।
बिना वासना भोग से, बन्ध क्षीण अत्यन्त ॥

भोग - भुक्ति से मानिये, कर्मों का भुगतान।
मुक्ति-स्थान होता नहीं, 'चन्दन' भोग प्रधान ॥

जमा न हो नावें न हो, नहीं वहां व्यापार।
मुक्तात्मा का इस तरह, ख़त्म हुआ संसार ॥

भाव सदृशता हो भले, नहीं कथा में ऐक्य।
यथा प्रथाओं में यहां, 'चन्दन' भरा अनैक्य ॥

उत्तम त्याग - विराग हैं, विषय[1]-भोग हैं त्याज्य।
भाजक भाग विशेष फल, स्थिर है संख्या भाज्य ॥

पाठक पढ़कर प्रेम से, झुकें त्याग की ओर।
'चन्दन मुनि' की लेखनी, देती इस पर ज़ोर ॥

---

१ "नारायण" प्रभु लगन में, ये पांचों न सुहात।
 १ २ ३ ४ ५
विषय भोग, निद्रा, हंसी, जगत-प्रीत बहु बात ॥

१

अथ प्रथम अध्याय

द्वारावती

"द्वारावती" नाम की नगरी, मानो अलका का अवतार ।
पंचवर्ण वाले मणियों से, बना हुआ जिसका प्राकार ।।
जो धनपति की मति से निर्मित, विस्तृत बारह योजन में ।
जगन्मात्र की रचनाओं का, दर्शन ज्यों होता मन में ।।

"रैवत" की रमणीयता

नगरी के ईशानकोण में, उज्जयन्त है पर्वत एक ।
गगनाङ्गण को छूने वाले, जिसके ऊंचे शिखर अनेक ।।

आगम तुल्य अधिक दुर्गम है, है दुर्लंघ्य भवाम्बुधि सम।
गिनी न जाती बड़ी घाटियां, नहीं गुफाएं भी हैं कम॥

वृक्ष-लताएं मिले देखकर, लगता बसा गृहस्थाश्रम।
नर-नारी के मिलने का यह, क्या न अनादि-काल का क्रम?
गुच्छों द्वारा गुल्मों द्वारा, अन्धकार छाया रहता।
घूक सूर्य की किरणों का कब, स्पर्श-मात्र भी है सहता?

गिरि-विवरों से निकले निर्झर, कहते लो पीलो पानी।
ज्ञानी पुरुष यथा कहते हैं, लो भव्यो! सुनलो वाणी॥

फल वाले तरु फल देते हैं, फूल फूल वाले देते।
देना ही सीखा तरुओं ने, नहीं किसी से कुछ लेते॥
जड़ियां और बूटियां मिलतीं, उन्हें ढूंढ़ने वालों को।
शिष्य प्रशिष्य मिला करते हैं, यथा मूंडने वालों को॥

क्रोंच, मयूर, हंस, मृग, सारस, चक्रवाक कोयल के कुल।
सुख पूर्वक पलते रहते हैं, गिरि का वैभव यही विपुल॥
नृत्य अप्सराएं करती हैं, किसी शिखर पर घम घम घम।
देवलोक से बढ़कर मिलती, गिरि पर मन को शान्ति परम॥

जंघाचारण मुनि-चरणों से, शिखर पवित्र हुए सारे।
भव्य चाहते साधु पधारें, और हमें भव से तारें ॥

विद्याधर मिथुनों की मानो, भीड़ लगी रहती भारी।
प्रकृति सभी को प्यारी होती, नर हो चाहे वह नारी ॥
नित्योत्सव का एक विशेषण, खींच रहा है ध्यान विशेष।
सौम्य,सुभग,प्रियदर्शन था वह, "उज्जयन्त" का रम्य प्रदेश ॥

वासुदेव श्रीकृष्ण

वासुदेव श्रीकृष्ण वहां पर, राज्य किया करते सानन्द।
दक्षिण अर्ध भरत पर जिनका, आधिपत्य था पूर्ण अमन्द ॥
यादव कुल की रिद्धि-सिद्धि का, तेज सितारा था भारी।
बड़ी सुखी थी इसीलिये वह, पुरी "द्वारका" भी सारी ॥

थावर्चा सेठानी

वहां एक सेठानी रहती, "थावर्चा" था जिसका नाम।
ऋद्धिशालिनी, बुद्धिशालिनी, रूप-कला-गुण से अभिराम ॥
उसके एक पुत्र था सुन्दर, "श्री थावर्चापुत्र" भला।
छोटे को ही इसे छोड़ कर, पिता कभी का गया चला ॥

शिशु की माता मर जाने से, पालन दुष्कर हो जाता।
पितृ-वियोग सहा जाता है, सकुशल हो जिसकी माता।
धन-अभाव बालक क्या जाने, बालक जाने प्रेम-प्रभाव।
क्योंकि हुआ करता है शिशुओं का, 'चन्दन' पावन प्रेम स्वभाव।

बचपन की विशेषताएं

मां को शिशु प्यारा होता है, शिशु को होती मां प्यारी।
मां के आंचल में मिलती है, दुनिया की ममता सारी।
मां का आंचल क्रीड़ा स्थल है, घर का अंगन है संसार।
विहगों के बालक क्या करते, नील गगन में कभी विहार ?
मां के सिवा सिवा खेलों के, साधन क्या हैं शिशु के पास ?
समय पास कर पाए जिससे, कर पाए तनु-बुद्धि विकास॥
कभी महल की छत पर चढ़ना, नीचे कभी उतर आना।
खेलों से जब मन भर जाए, खेलों से भी रुक जाना॥
खेल खेलने से हो जाते, देह मलिन फिर वस्त्र मलिन।
कीचड़ लिपटा होने से क्या, नयन लुभाते नहीं नलिन ?

दूध, दही, मक्खन जब खाते, हाथ और मुंह भर जाते।
आधा बाहर गिर जाता है, आधा-आधा कर खाते॥

खाते अपने ही हाथों से, नहीं खिलाने से खाते ।
खाते-खाते भी लगते शिशु, अपनी मां को मन भाते ॥
धोते हाथ, पैर कब धोते, कब धोते मुखकमल भला ।
धोने भी कब देते हैं ये, रोने की जब याद कला ॥
नहलाने पर भी रोना है, रोना वस्त्र बदलने पर ।
काजल नहीं डालने देते, मां को खिजला देते डर ॥

भोले-भाले शिशु-जीवन से, मां बहलाती अपना मन ।
यौवन में भी मां दिखलाती, बतलाती अपना बचपन ॥
शिशु को मां कह करके माता, शिशु बन जाती आप कभी ।
दोनों के मन पाप नहीं है, हां भी ना है माफ सभी ॥
दोनों के दिल में सूना है, पल में गुस्सा पल में प्यार ।
कभी मारती माता शिशु को, मां को भी शिशु देता मार ॥
प्यार मार से, मार प्यार से, पाते कितना अधिक निखार !
बार-बार मां चूम-चूम कर, देख दीनता आया प्यार ॥

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

शिशु को मां से मां को शिशु से, जीवन-रस होता है प्राप्त ।
इसीलिये दोनों की ममता, दोनों में रहती है व्याप्त ॥

"श्री थावर्चापुत्र" एक दिन, चढ़ा महल की छत ऊपर ।
इसके कानों में पड़ते हैं, गीत मनोहर कर्ण-मधुर ॥
खोया-खोया खड़ा रहा बस, बालक वह भोला-भाला ।
मधुर-मधुर स्वर-लहरी ने कुछ, मन पर जादू-सा डाला ॥
क्या है ? क्या है ? और कहां है, प्रश्न उठे ऐसे मन में ।
प्रश्न एक ही बार-बार भी, उठता रहता बचपन में ॥
मां से ही पूछे जाते हैं, प्रश्न सरल मन बचपन में ।
प्रश्न स्वयं हल हो जाते हैं, 'चन्दन मुनि' जिन प्रवचन में ॥
शिष्य सुगुरु से, शिशु माता से, समाधान पाया करता ।
औरों के बतलाने पर भी, दोनों का मन कब भरता ॥
श्री थावर्चा-सुत ने नीचे, आकर पूछा माता से ।
प्रश्न पूछना उत्तम रहता, क्या न विषय विज्ञाता से ?

प्रश्न और उत्तर

मां ! मैं अभी गया था छत पर, सुने सुरीले स्वर मैंने ।
क्या है ? क्यों है ? तेरे से ये, प्रश्न किये मन भर मैंने ॥

मां बोली—बेटे ! सुन, पाया- पड़ौसी ने प्यारा लाल ।
गीत-गान का किया गया है, आयोजन यह बहुत विशाल ॥
गाये जाते हैं दुनिया में, जन्मोत्सव पर मंगल गीत ।
इन्द्र और इन्द्राणी ने मिल, चालू की थी पहले रीत ॥
हर्ष बधाई बांटी जाती, दान दिया जाता दिल खोल ।
कुल का, जग का दीपक होता, बालक एक रत्न अनमोल ॥
पहले पुत्र नहीं था इसके, और नहीं थी आशा भी ।
किस्मत बिना खेल में पड़ता, कभी न सुलटा पासा भी ॥
लेकिन आशा सफल होगई, सुत पाया प्यारा-प्यारा ।
माता वड़े प्यार से ऐसे, समाधान करती सारा ॥

दूसरा प्रश्न

सुनकर प्रश्न किया फिर सुत ने, एक और भी नया-नया ।
जब मैं जनमा तब भी ऐसा, आयोजन क्या किया गया ?

मां बोली—इससे भी बढ़कर, तेरा जन्म मनाया था ।
क्योंकि जिन्दगी में मैंने भी, पहला ही सुत पाया था ॥
धन की कमी नहीं जब घर में, मन की कमी नहीं रखते ।
जन्मोत्सव पर दान किया था, जितना भी हम कर सकते ॥

जाऊं, गीत सुनूं ?

अच्छा माता ! जाऊं छत पर, सुनूं सुरीले सुन्दर गीत ।
बालक के मन में भी होती, गीतों रीतों के प्रति प्रीत ॥

"जा बेटा ! जा, सुनले जितना, सुनना चाहे तेरा मन ।
चित्त प्रसन्न अधिक रहने से, लुभावना लगता वचपन ॥
छत पर चढा दुबारा बालक, गीत श्रवण की आशा कर ।
गीतों में माधुर्य नहीं अब, नहीं सुरीले लगते स्वर ॥
कहां गया रे ! हाय-हाय रे ! हमको मार गया क्यों रे !
कुलदीपक, कुलसूर्य हृदय का, सच्चा हार गया क्यों रे !
क्यों आया ? यदि आया तो क्यों, आकर वापस गया तुरन्त ?
ओ खुशियों के देने वाले ! क्यों खुशियों का करते अन्त ?
रोते सारे ही घर वाले, कौन इन्हें चुप करवाये ।
जो चुप करवाने आये थे, वे भी बोल नहीं पाये ॥"

श्री थावर्चा-सुत ने सोचा, ये सारे वे गीत नहीं ।
या इन गीतों के गाने की, होगी वैसी रीत नहीं ॥
मुझे नहीं प्रिय लगते हैं जब, मैं क्यों सुनता रहूं खड़ा ।
नहीं समझ में आने से ही, मन करता आश्चर्य बड़ा ॥

मां के सामने

दौड़ा-दौड़ा नीचे आया, बोला मां से ऐसे बोल।
उन गीतों में इन गीतों में, अन्तर आया कैसे ? बोल ॥
मैं नीचे आया था केवल, तुझे बताने सारी बात।
वापस जाकर सुने गीत जो, बदल गये सारे इक साथ ॥
पहले वाले प्रिय थे, अप्रिय- लगते अब ये गीत मुझे।
प्रिय कैसे अप्रिय बन जाते, बतला दे ये रीत मुझे ॥
तुझे पता तो होगा सारा, भेद खोलकर समझा दे।
सिरा खो गया है लच्छी का, अंगुलियों से सुलझा दे ॥

पुत्र के सामने

मां बोली—रे बेटा ! सुन तू, पहले वाले तो ये गीत।
गीत नहीं कहलाते हैं ये, मरने पर रोने की रीत ॥

क्या ? क्या ? कहकर पूछा सुत ने, क्या मरना क्या रोना मां ?
घर वाले रोते हैं रोता, घर का कोना-कोना मां !

मां बोली—बेटे ! जाने दे, मत पूछो ऐसी बातें।
ऐसी बातों से शिशुओं को, डरावनी लगती रातें ॥

पूछूं नहीं बात भी कैसे ? मात ! बात यह कैसी है ?
हाथ पकड़ कर बोला–कह दो, सत्य हक़ीक़त जैसी है ॥

मां बोली—बेटा ! बेटे के, आने से छाया था हर्ष।
जाने से अब रुदन मचा है, यही बात का है निष्कर्ष ॥

"मुझे नहीं जाने देती तू ? वह घर से क्यों चला गया।
जाने दिया अकेला उसको, मां ने काम न भला किया ॥"

"बेटा ! कोई साथ न जाता, जाता जीव अकेला ही।
लाता नहीं नहीं ले जाता, रुपया पैसा धेला ही ॥"

"मां ! मैं समझा नहीं ज़रा भी, साफ़-साफ़ समझावो तो।
सीधी-सादी बात बतावो, नहीं बघार लगावो तो ॥"

मां बोली—बेटा ! वह बेटा, काल-धर्म को प्राप्त हुआ !
जन्म लिया कहने को केवल, सारा खेल समाप्त हुआ ॥
साथ नहीं मरते घर वाले, मरता मरने वाला ही।
सिर्फ़ रिवाज उसे रोने का, घर वालों ने डाला जी !
जिसने जन्म लिया है जग में, जाना होगा उसे ज़रूर।
पता नहीं उसके रुकने का, स्थान यहां से कितनी दूर ॥

प्यारे पड़ौसी रोते हैं, नन्हा बालक मरने से।
वापस नहीं कभी भी आता, सोच-फ़िक्र अब करने से॥

सवाल पर सवाल

बोला बेटा—मां बतलावो, जीव भला क्यों मरता है?
बैठा क्यों न हमेशा रहता, क्यों न मृत्यु से डरता है?

चकित होगई माता सुनकर, बातें प्यारे बच्चे की।
कच्ची उमर अक़ल के कच्चे, लेकिन दिल के सच्चे की॥
बेटा! आयु पूर्ण होने से, जीव सभी मर जाते हैं।
कर जाते हैं भला-बुरा जो, तदनुकूल फल पाते हैं॥

"इतना और बतादे माता! अगर बताये सभी सवाल।
मरते हैं सारे ही लेकिन, मरने का क्या है भी काल?"

मां बोली—है काल निर्दयी, इसको होता खेद नहीं।
नाम काल का समवर्ती है, करता कोई भेद नहीं॥
काम ज़रूरी नहीं देखता, नहीं देखता बाल-युवा।
जो भी इसके हाथ लगा बस, [illegible] [illegible] सवाल हुआ॥

बोला बेटा—मां बतलावो, जीव भला

मरना सभी मनुष्यों को है, रहता कोई नहीं अमर ।
प्राणि मात्र का मृत्यु-साथ में, "चन्दन" चालू सदा समर ॥

क्यों मरता ? कैसे मरता है ? क्या होता मरने के बाद ।
वाद विवाद करो मत ऐसा, मां की बात रखोगे याद ॥
बालक हो तुम अभी कहां से, समझोगे बातें सारी ।
जाओ, खेलो, कूदो, खाओ, कहती है अम्मा प्यारी ॥

एक और बतादो

थावर्चा-सुत बोला—माता ! बात एक अब है बाक़ी ।
अपने से सम्बन्धित है वह, बात नहीं इस दुनिया की ॥
क्या मुझको भी मरना होगा ? इसका उत्तर देदो साफ़ ।
माता बुरा न माना करती, करती प्यारे सुत को माफ़ ॥

मां बोली—रे ! तुझको, मुझको, सबको भी [illegible] होगा ।
अन्तिम सफ़र एक दिन बेटे ! दुनिया [illegible] [illegible] होगा ॥
नहीं एक भी क्षण ऐसा है, [illegible] नहीं ।
अशरण हैं सारे ही प्राणी, [illegible] नहीं ॥
दानी, अभिमानी, [illegible]
सेठानी, रानी, [illegible]

आना चालू जाना चालू, रुकने पाता पन्थ नहीं।
इसीलिए इस क्रम का बेटे! आता भी है अन्त नहीं॥
गये, जा रहे हैं कितने ही, फिर भी दुनिया भरी पड़ी।
प्रतिदिन बारह बजते रहते, रहती है क्या घड़ी खड़ी?

बचने का उपाय

सुनकर उत्तर माता जी का, सुत का मन घबराया है।
सुन्दर समाधान पाने को, नया सवाल उठाया है॥
"बचा जा सके महाकाल से, है क्या कोई कहो उपाय?
अगर जानती तो बतलावो, उत्तर होगा ज्ञान-निकाय॥"

"है तो सही उपाय किन्तु वह, कर पाना है महा कठिन।
छिद्र सहित थैली में वायु, भर पाना है महा कठिन॥"

"कठिन सरल जैसा भी हो वह, नाम बतादे प्यारी मां!
काम बतादे ठाम बतादे, स्थाम बतादे प्यारी मां!"

मां बोली—श्री नेमिनाथ—प्रभु- चरणों में जो जाता है।
कठिन तपस्या द्वारा वह नर, विजय मृत्यु पर पाता है॥

शान्ति प्रेम करुणा के सागर, नेमि जिनेश्वर कहलाते।
महाकाल से बचने वाला, मार्ग सरलतम दिखलाते।
वीतराग प्रभु की वाणी का, प्रेम सहित जो पान करे।
ज्ञान करे, सद् ध्यान धरे, वह, बस अपना कल्याण करे।

"माता! कितने दिन तक ऐसी, कठिन साधना करनी है
अपनी करनी पार उतरनी, पहले पीछे भरनी है॥

मां बोली—बेटे! संयम का, आजीवन होता पालन।
ध्येय एक ही होता—करना, कर्म-मैल का प्रक्षालन।

वैज्ञानिक पद्धति

मां ने उत्तर स्पष्ट दिये जब, अर्थ बताया बालक को।
उलटी-सीधी बातों द्वारा, क्या भरमाया बालक को
बालक योग्य बना करता है, सच्ची बातें सुन करके।
सुन करके अपनाया करता, बुरा-भला भी चुन करके।
उत्तर सही नहीं देने से, शिशु पर पड़ता बुरा प्रभाव।
क्योंकि नहीं होता शिशुओं में, प्रतिभा का अत्यन्ताभाव।

भगवान कहां हैं ?

बेटा बोला—मां ! बतलावो, नेमिनाथ प्रभु अभी कहां ?
कभी यहां भी आते हैं या, जाती जनता पास वहां ?

मां बोली-जिन[1] नियत स्थान पर, डेरा नहीं जमाते हैं।
घूम-घूम कर उपदेशों से, सोया जगत जगाते हैं ॥

"कब आयेंगे ? बोलो माता ! समाचार क्या आते हैं ?"
"आते अपने आप, नहीं वे, पहले कुछ फ़रमाते हैं ॥"

संयम की भावना

अच्छा, मां ! मैं श्री जिनवर की, चरण-शरण में जाऊंगा।
महाकाल से बच पाऊंगा, अमर शान्ति अपनाऊंगा ॥
शान्ति जहां पर हो नहिं सच्ची, जीवन नहीं बिताऊंगा।
समझा सार जन्म का जो कुछ, उसको ही अब पाऊंगा ॥

---

१. राग द्वेष मोहादि शत्रून् जयतीति जिनः

अभी नन्हा है

बेटा ! अभी-अभी तू नन्हा, नन्हीं-नन्हीं बातें कर ।
बड़ी-बड़ी ये बातें तेरी, सुनकर मुझको लगता डर ।।
समझ नहीं पाती मैं कुछ भी, क्या कुछ यह तू कहता है ।
इस दुनिया में रहता है या, किस दुनिया में रहता है ?
मैं तो तुझको भोला-भाला, बालक जाना करती थी ।
दुनिया से अनभिज्ञ अभी तक, ऐसा माना करती थी ।।
इतना बड़ा विचक्षण है तू, इतना अधिक सयाना है ।
पहले नहीं कभी भी जाना, स्पष्टतया अब जाना है ।।
बेटे हो इकलौते मेरे, मेरे नयन सितारे हो ।
इस घर के मेरे जीवन के, बेटे ! एक सहारे हो ।।
जाने दूंगी नहीं तुम्हें मैं, घर पर ही ठहराऊंगी ।
सुनो लाड़ले ! लाड़ लड़ाकर, अपना दिल बहलाऊंगी ।।
कलाचार्य के पास भेज कर, विद्याध्ययन कराऊंगी ।
सुन्दर यौवन वय में तेरा, अद्भुत व्याह रचाऊंगी ।।
साधुपना कैसे लोगे ? मैं, आज्ञा नहीं सुनाऊंगी ।
व्याह बाद में जो भी करना, कभी नहीं अटकाऊंगी ।।

अभी उम्र है बिलकुल कच्ची, कच्ची बातें छोड़ो तुम ।
मां का स्नेह न तोड़ो, मां की- बातें भी मत मोड़ो तुम ।।

आज्ञा बिना नेमि प्रभुवर तो, शिष्य बनाते कभी नहीं।
आज्ञा है मेरे हाथों में, आज्ञा दूंगी अभी नहीं॥
मां से आज्ञा जो पानी है, जल्दी नहीं मचावो तुम।
जो कुछ अभी कहा है मैंने, उस पर अमल कमावो तुम॥

हृदय में उतरा

"श्री थावर्चापुत्र" हो गया, अपनी मां के सम्मुख मौन।
अधिकारों का उल्लंघन कर, विद्वद्वर बोलेगा कौन॥
वैराग्याङ्कुर हृदय-भूमि में, फूटे हैं वे देंगे फल।
फल देने के लिये चाहिये, बन जाएं तरु पूर्ण सबल॥
कमल सलिल में रहता जैसे, वैसे यह रहता घर में।
ऊपर से कुछ नहीं दीखता, जो कुछ है सो अन्तर में॥
प्रभु भी आज्ञा बिना न लेते, आज्ञा लेना है अनिवार्य।
आज्ञा सुख पूर्वक मिल जाये, करना होगा वैसा कार्य॥

मां का चित्त दुखाने से वह, दे सकती आशीष नहीं।
चौदह और पांच मिलने से, हो सकते ज्यों बीस नहीं॥
आशीषें जो नहीं मिलीं तो, बात बनी इक्कीस नहीं।
शान्ति परम वह होती 'चन्दन', जिसमें उठती टीस नहीं॥

आठ वर्ष का हो जाने पर, भेजा कलाचार्य के पास।
कलाचार्य करवाया करते, सभी कलाओं का अभ्यास ।।
शुभ नक्षत्र करण तिथि अति शुभ, शुभ आये हैं बेला बार।
शुभ कार्यों में शुभ चीजों का, लोग लिया करते आधार ।।
"थावर्चा-सुत" प्रतिभा शाली, शीघ्र ग्रहण कर लेता ज्ञान।
आयु भले छोटी हो लेकिन, बन जाता विद्वान महान ।।
सूक्ष्म सूचि से सूक्ष्म सिलाई, सूक्ष्म बुद्धि से सूक्ष्म रहस्य।
जो भी तत्त्व महत्त्व-पूर्ण हैं, "चन्दन" सारे सूक्ष्म अवश्य ।।

कला, ज्ञान, वय बढ़े परस्पर, मानो प्रतिस्पर्धा के साथ।
शुक्ल पक्ष में चन्द्र-कला के, घटने की क्या सुनते बात !
रूप और लावण्य रंग में, यौवन लाता पूर्ण निखार।
अलंकार सोने के जैसे, स्वर्णकार करता तैयार
कलाचार्य ने सेठानी से, कहा—कुंवर तैयार हुआ
विद्या-सागर मति-नावा से, "चन्दन" सकुशल पार हुआ

सेठानी ने कलाचार्य का, किया बहुत सम्मान बड़ा
ध्यान दीजिये ज्ञान कीजिये, मान बड़ा या पान बड़ा

कितना ही धन देदो चाहे, नहीं ज्ञान का होता मोल।
चेतन ज्ञान, अचेतन धन है, अलग-अलग दोनों का तोल ॥
सेठानी खुश, कलाचार्य खुश, खुश-खुश है थावर्चापुत्र।
कलाचार्य को छोड़, कला के, लिये लोग जायेंगे कुत्र ?
नहीं कलाओं कलिकाओं पर, कलि का कोई पड़ा प्रभाव।
कलियुग हो चाहे सतयुग हो, रखिये अपना भला स्वभाव ॥

विवाह का समय

सोए हुए अङ्ग अब सारे, जग जाते हैं पा यौवन।
पवन वसंती जब चलता है, खिल उठता है सारा वन ॥
तन भी जगता, मन भी जगता, लगता उसको जग प्यारा।
जगकर ही देखा जाता है, परखा जाता जग सारा ॥
भोग समर्थ जानकर सुत को, लगी सोचने सेठानी।
इभ्य कुलों की ही बालाएं, मेरे सुत के हित लानी ॥
एक सभी लाते हैं लेकिन, मैं ले आऊंगी बत्तीस।
नदियां यथा सैकड़ों होती, होता है ज्यों एक नदीश ॥

तन, धन, मन कमज़ोर अगर हों, निभती पत्नी एक नहीं।
बहुत पत्नियां जो लायेगा, उसमें बुद्धि विवेक नहीं ॥

[illegible] [illegible] रुचकर हो तो, रीति निभाई जाती है।
[illegible] [illegible] खिलाए, खाई जाती जितनी भाती है॥

श्रेष्ठ चयन

सेठानी ने अपने सुत के- लिये लड़कियां ली हैं देख।
रूप, रंग, वय, कला, ज्ञान फिर, देखा जाता विनय विवेक॥
घर, घरवाले देखे जाते, देख लिया [illegible] [illegible]।
अपने घर लड़की लाने में, रखना पड़ता पूर्ण ख़याल॥
कुल वधुओं से कुल की रक्षा, पूर्णतया हो पाती है।
कलहिनियां आजाने से वे, लजती और लजाती है॥
सम कुल वालों के मिलते हैं, खान-पान फिर रहन-सहन।
मन भी भरा हुआ होने से, कर सकता है भार-वहन॥
पति को, पति की मां को, घर को, खुश रखना भी [illegible]।
सभी भले हैं पुत्रवधू का, "चन्दन" अगर [illegible]॥

जो भी वस्तु व्यक्ति लाता है, चुन करके ही लाता है।
पुत्रवधू लाने में फिर क्यों, नहीं [illegible] [illegible] है॥
अच्छी क़िस्मत होने से ही, [illegible]।
वरना पड़ा सामने भी तो, [illegible]॥

थावर्चा-सुत का विवाह

बड़े सार्थवाहों की सारी, बालाएं बत्तीस चुनी।
बत्तीसों ने चुना हर्ष से, थावर्चा-सुत एक गुनी॥
एक दिवस में एक साथ में, पाणिग्रहण करवाया है।
द्वात्रिंशति द्वात्रिंशति दातें, दान-दहेज गिनाया है॥

देते भी लेते भी

देते मात पिता जब पुत्री, क्या धन देंगे साथ नहीं ?
कुछ भी नहीं दिया हो ऐसी, सुनी आज तक बात नहीं॥
घर अनुसार सभी देते हैं, लेते खुश होकर सज्जन।
यही दिया क्या ? यही दिया क्या ? बेवक़ूफ़ करते टन-टन॥
लड़की जब खुश होकर लेली, खुश हो करके लेलो दान।
दोनों के सम्बन्धों पर भी, ज़रा दीजिये अपना ध्यान॥
धन तो हाटों पर भी मिलता, मन क्या लोगे हाटों से ?
धन तुलता है बाटों द्वारा, मन तोलोगे बाटों से ?

सामाजिक लाभ

दान ग़रीबों ने पाया है, स्नेही मित्रों ने सम्मान।
प्रीतिभोज का आयोजन भी, किया गया है एक महान॥

अमुक व्यक्ति ने अमुक व्यक्ति पर, ऐसा भोज दिया भारी।
भारी से भारी देने की, एक तरह की बीमारी ॥
देखा देखी सें दुःख बढ़ता, बढ़ता झूठा आडम्बर।
बादल नहीं बने हों तो क्या, जल बरसा सकता अम्बर ?

अच्छे कपड़े-गहनों से क्या, कभी ढंका जाता तन-रोग ?
शक्ति नहीं जिसमें उठने की, नहीं काम आता सहयोग ॥
क्या कमज़ोर व्यक्ति भी सर पर, भार उठाकर चल सकता ?
जड़ें सूख जाने पर तरुवर, नहीं कभी भी फल सकता ॥
अपने पांवों की ताकत पर, जो नर रहता सदा खड़ा।
"चन्दन मुनि" युग की भाषा में, वो ही है धनवान बड़ा ॥

थावर्चा-सुत का सुख

"श्री थावर्चा-पुत्र" भोगता, पंचेन्द्रिय सुख-भोग विपुल।
शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध से, भोग सभी रहते संकुल ॥
पूर्ण प्रेम पाया है मां का, रम्य रमणियां पाई हैं।
किसी तरह का कष्ट नहीं हो, यही एक पुण्याई है ॥
मां सुख पाती, सुत सुख पाता, बहुएं भी सुख पाती हैं।
सुख ही देतीं सुख ही लेतीं, सुख से समय बिताती हैं ॥

"श्री थावर्चा" सेठानी का, पुरी द्वारिका में सम्मान।
अपने ही हाथों में होता, 'चन्दन' अपना रखना स्थान ॥

काम किसी के आने पर ही, दुनिया नाम लिया करती।
काम नहीं आने पर चक्के- दुनिया जाम किया करती ॥
तन से, मन से, धन से आओ, काम किसी के भी आओ।
"नहीं काम का है यह मानव", ऐसा तो मत कहलाओ ॥

"श्री थावर्चा-पुत्र" का, हुआ प्रथम अध्याय।
सदा सुझाती आ रही, पुण्य प्रकृति सदुपाय ॥

मां ने दिखलाया परम, अपने सुत पर प्यार।
नरक-द्वार बनता न क्या, प्यार बिना संसार ॥

रुचिकर लग सकते नहीं, तृप्तात्मा को भोग।
योग साधना के लिये, आते उत्तम लोग ॥

थावर्चा-सुत सोचता, समय मिले उपयुक्त।
श्रमण-धर्म स्वीकृत करूं, विचरूं बन उन्मुक्त ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

"श्री थावर्चापुत्र" की, फल जाती अभिलाष।
हमें द्वितीयोध्याय से, मिलता यही प्रकाश।

प्रभु का आगमन

नेमिनाथ भगवान पधारे, उज्जयन्त पर्वत पर आज।
नहीं अकेले आते हैं प्रभु, आता साथ मुमुक्षु समाज।
पूज्य त्रिलोकी के तीर्थंकर, फिर भी करते पाद-विहार।
पूर्ण स्वावलम्बन का जग को, पाठ पढ़ाते बारम्बार।
नन्दनवन उद्यान मनोहर, सुन्दर पादप वहां अशोक।
आज्ञा ले प्रभु आप विराजे, मानो फैला ज्ञानालोक।
समाचार पा करके आई, परिषद सुनने प्रभु-वाणी।
प्रभु-दर्शन की इच्छा रखते, "चन्दन" हलुकर्मी प्राणी।

श्री हरिको हर्ष

मिली सूचना प्रभु आने की, हरि ने पाया हर्ष महान।
दर्शन करने को जाना है, पाना है श्री प्रभु से ज्ञान।
कौटुम्बिक नर को बुलवाकर, दिया उसे ऐसा आदेश।
जन-मीलन के लिये बजावो, भेरी उत्कट वाद्य विशेष।

स्निग्ध, मधुर, गम्भीर शब्द से, पुरी द्वारका भर जाये।
आमन्त्रण देने भेरी के, स्वर- जावें क्यों नर जाये॥

आज्ञा शिरोधार्य कर सेवक, गया "सुधर्मा सभा" जहां।
जहां रखी है भेरी, देरी- किये बिना फिर गया वहां॥
लगा बजाने सेवक भेरी, शब्द हुआ गम्भीर मधुर।
मेघ शारदिक यथा बोलता, सुन लेता है सारा पुर॥
राजमहल से झोंपड़ियों तक, पहुंच गया भेरी का शब्द।
मानो मौसम विना आज यह, गाज रहा है कहीं नयाब्द॥
द्विपथ, चतुष्पथ, त्रिपथ,राजपथ, गलियों में गूंजी आवाज़।
महाराज श्री कृष्ण बुलाते, बजवाते हैं भेरी आज॥
शब्द नहीं पहुंचा हो ऐसा, द्वार नहीं घर बार नहीं।
शब्द कहीं प्रतिहत हो जाए, तो होता संचार नहीं॥
नगरी के बाहर-अन्दर भी, कोसों में भेरी बोली।
भेरी की बोली सुन करके, लोगों ने आंखें खोली॥
जिन-जिन लोगों को जाना था, वे सारे तैयार हुए।
हय गय रथ पालखियों पर, शीघ्र-शीघ्र असवार हुए॥

जिन्हें सवारी नहीं प्राप्त थी, वे आये पैदल चल कर।
सरल मनुष्य नहीं रुक पाते, झूठ-मूठ कोई छल कर॥

हरि ने देखा—सभी आगये, कहा—करो सेना तैयार।
विजयगंधहस्ती को लावो, पहनाकर सारे शृंगार॥
वासुदेव श्री कृष्ण होगये, पूर्णतया सज्जित तत्काल।
उत्सुकता होने पर देरी, होने का है नहीं सवाल॥

सपरिवार दर्शन करने को, चली सवारी सज करके।
सजकर जाने वाले जाते, नहीं किसी को तज करके॥
आप अकेले जाने पर भी, प्रभु-दर्शन हो सकते हैं।
प्रभु का प्रवचन सुन करके मन- संशय भी खो सकते हैं॥
साथ सभी को ले जाने से, लाभ सभी को मिल जाये।
कमल खिला क्या माना जाये, कली एक यदि खिल जाये॥
पहुंच गये हैं नन्दनवन में, जहां विराजे श्री जिनवर।
समवसरण-छबि निरख रहे हैं, आगन्तुक नर जी भर-भर॥
तिक्खुत्तो का पाठ बोलकर, वन्दन करते नर-नारी।
जैसे निधि होते हैं प्यारे, वैसे विधि होती प्यारी॥
स्थान,व्यक्ति,वय,समय देखकर, 'चन्दन' वन्दन करना जी !
वन्दन से भव-बन्धन टूटे, भाव सत्य आदरना जी !

श्री थावर्चा-सुत को भी जब, मिली सूचना सुखकारी।
प्रभु-दर्शन करने को आया, करके अपनी तैयारी॥

यथा स्थान सब बैठ गये हैं, सुनने को श्री जिनवाणी।
जिनवाणी के बिना भवाम्बुधि, तरा नहीं कोई प्राणी॥

धर्म-देशना

भव्यों! जीवन ज्योति जगाओ, पाओ अपना शुद्ध स्वरूप।
शुद्ध स्वरूप सिद्ध कहलाते, जहां नहीं हो छाया-धूप॥
आत्मा और शरीर अलग है, छोड़ो माया काया की।
माया पर ललचाना कैसा? रखो भावना आया की॥

बन्धन माना है ममता को, समता को मान है धर्म।
एक बांधती एक तोड़ती, रहती प्रतिपल पुद्गल-कर्म॥
आये हो मानव भव में तो, भव-बन्धन सब डालो तोड़।
इतने भव कर लेने पर भी, लगा सके क्या कोई जोड़?
जन्म-मरण है, मरण-जन्म है, अन्तर करना बड़ा कठिन।
इन दोनों के मध्य काल में, नहीं बीत सकता है दिन॥
भय है जन्म, मरण भी भय है, जीने में भी प्रतिपल भय।
भय से रहित अगर होना है, संयम करलो इसी समय॥

राग-द्वेष से ऊपर उठकर, समता का घर सम्भालो।
प्रेम, शान्ति, सच्ची करुणा का, जीवन में घन बरसालो॥

खाली हाथ चले जावोगे, पछतावोगे फिर मन में।
हाय ! नहीं कर पाये हम तो, कुछ भी मानव- जीवन में ॥

राज्य, ऋद्धि, वैभव क्षण भंगुर, जैसे छाया बादल की।
पल की खबर नहीं पड़ती जब, क्यों करते चिन्ता कल की ?
खुद की नहीं किसी को चिन्ता, चिन्ता है घर वालों की ।
घर वालों के लिये भागते, हालत बनी हमालों[1] की ॥
खाना पीना और कमाना, मौज उड़ाना जाना है।
क्या इतना भी जाना ? हमको- इकदिन आगे जाना है ॥
जाओगे, ले जावोगे धन,तन, परिजन को अपने साथ ?
यहीं छोड़ जावोगे आखिर, होंगे खाली दोनों हाथ ॥
सोने जैसी इस काया का, कभी नहीं होगा सोना।
सोना सोना करते देखो, कहीं न पड़ जाये रोना ॥
माटी से उपजी माटी को, माटी में मिल जाना है।
माटी के कच्चे वर्तन पर, मूर्ख बना दीवाना है।

दया, सत्य, सन्तोष अहिंसा, शील शुभंकर धारो जी !
विषय वासनाओं को मारो, मानव-जन्म सुधारो जी !

---

१. मजदूरों

शाश्वत सत्य सुनाया जाता, चाहे सुनो कहीं पर भी।
सत्य अगर स्वीकारा जाये, आये मुक्ति यहीं पर ही॥

प्रवचन की महिमा

सुनकर धर्म देशना सारे, चले गये हैं अपने स्थान।
स्थान-स्थान पर कब मिलता है, जीवन का यह ज्ञान-महान॥
सुनते गीत प्रीत से लेकिन, धर्म नहीं सुनते ये कान।
सुनते हैं लेकिन कब देते, सुनी हुई बातों पर ध्यान॥
सभी नहीं, कोई देता है, सुनी हुई बातों पर ध्यान।
कोई भी यदि ध्यान नहीं दे, तो न बोलते श्री भगवान॥
त्याग, नियम कुछ होता ही है, जब होता प्रभु का प्रवचन।
प्रवचन सुनना करना सार्थक, बन जाता इससे 'चन्दन'॥

प्रवचन द्वारा ही होता है, भव्यात्माओं को अवबोध।
प्रवचन द्वारा ही हटता है, जो उत्पन्न हुआ गति रोध॥
प्रवचन द्वारा ही होता है, जन-मन में उत्पन्न विचार।
प्रवचन द्वारा ही होता है, जन-मन में सद्धर्म प्रचार॥
प्रवचन द्वारा ही होता है, संयम पर अति दृढ विश्वास।
प्रवचन द्वारा ही होता है, मिथ्यात्वों का मूल वि

प्रवचन द्वारा ही होता है, दान, शील, सन्तोष समृद्ध ।
ऐसा नहीं समझिये प्रवचन, सुनने आते केवल वृद्ध ॥
मानव आते, सुर आते हैं, पशु-पक्षी भी आते हैं ।
अपनी-अपनी भाषाओं में, समझ सभी कुछ जाते हैं ॥

'थावर्चापुत्र' की विरक्ति

प्रवचन सुन करके आया है, थावर्चा-सुत अपने घर ।
प्रवचन का इसके जीवन पर, सबसे ज्यादा हुआ असर ॥
बीज विरक्ति-भाव का मन में, बचपन से जो पड़ा हुआ ।
प्रवचन सावन-घन वर्षन से, मानो सहसा बड़ा हुआ ॥
सोचा—मां से आज्ञा लेकर, संयम-व्रत स्वीकारूँ मैं ।
विषय-वासना त्याग जगत की, मानव-जन्म सुधारूँ मैं ॥
मां से बोला—अनुमति देदो, अब तो संयम लेने की ।
बचपन में जो बात कही थी, सुख से अनुमति देने की ॥

माता का मोह

मां बोली—रे बेटे ! कैसे, छोड़ सकेगा विषय विलास ।
तूने नहीं किया है अब तक, संयम का कुछ पूर्वाभ्यास ॥

तू ही एक सहारा मेरा, तू ही यदि जाएगा छोड़ ।
प्राण निकल जाएंगे मेरे, मेरे बेटे! स्नेह न तोड़ ॥
इन बत्तीसों का क्या होगा? ज़ब कर देगा इनका त्याग ।
आग समान भड़क जाएगा, तेरे प्रति इनका अनुराग ॥
ये आई हैं तेरे पीछे, सुख से जीवन जीने को ।
आई नहीं यहां पर बैठे, फटे-पुराने सीने को ॥

इनकी भूल हुई हो यदि कुछ, बेटे ! इनको करदो माफ ।
इन्हें सताने से लगता है, क्या जाने कैसा ही पाप ॥
जब आजाए वृद्धावस्था, तब ले लेना संयम-भार ।
बात अभी संयम लेने की, कैसे हो सकती स्वीकार ॥

मुनि जीवन के कष्ट

तन से कोमल, मन से कोमल, और वचन से तू कोमल ।
परीषहों का ताप लगेगा, जाएगा ज्यों मोम पिघल ॥
अनुशासन में रहना, बहना, आजीवन-व्रत लिये हुए ।
तेरे तो तेरी इस मां को, मात्र इशारे किये हुए ॥
नहीं इशारा करना पड़ता, पहले मैं रहती तैयार ।
मेरे सुत की चिन्ता मुझको, मेरा इतना-सा संसार ॥

प्रवचन द्वारा ही होता है, दान, शील, सन्तोष समृद्ध ।
ऐसा नहीं समझिये प्रवचन, सुनने आते केवल वृद्ध ॥
मानव आते, सुर आते हैं, पशु-पक्षी भी आते हैं ।
अपनी-अपनी भाषाओं में, समझ सभी कुछ जाते हैं ॥

'थावर्चापुत्र' की विरक्ति

प्रवचन सुन करके आया है, थावर्चा-सुत अपने घर ।
प्रवचन का इसके जीवन पर, सबसे ज्यादा हुआ असर ॥
बीज विरक्ति-भाव का मन में, बचपन से जो पड़ा हुआ ।
प्रवचन सावन-घन वर्षन से, मानो सहसा बड़ा हुआ ॥
सोचा—मां से आज्ञा लेकर, संयम-व्रत स्वीकारूँ मैं ।
विषय-वासना त्याग जगत की, मानव-जन्म सुधारूं मैं ॥
मां से बोला—अनुमति देदो, अब तो संयम लेने की ।
बचपन में जो बात कही थी, सुख से अनुमति देने की ॥

माता का मोह

मां बोली—रे बेटे ! कैसे, छोड़ सकेगा विषय विलास ।
तूने नहीं किया है अब तक, संयम का कुछ पूर्वाभ्यास ॥

तू ही एक सहारा मेरा, तू ही यदि जाएगा छोड़।
प्राण निकल जाएंगे मेरे, मेरे बेटे! स्नेह न तोड़॥
इन बत्तीसों का क्या होगा? जब कर देगा इनका त्याग।
आग समान भड़क जाएगा, तेरे प्रति इनका अनुराग॥
ये आई हैं तेरे पीछे, सुख से जीवन जीने को।
आई नहीं यहां पर बैठे, फटे-पुराने सीने को॥

इनकी भूल हुई हो यदि कुछ, बेटे! इनको करदो माफ।
इन्हें सताने से लगता है, क्या जाने कैसा ही पाप॥
जब आजाए वृद्धावस्था, तब ले लेना संयम-भार।
बात अभी संयम लेने की, कैसे हो सकती स्वीकार॥

मुनि जीवन के कष्ट

तन से कोमल, मन से कोमल, और वचन से तू कोमल।
परीषहों का ताप लगेगा, जाएगा ज्यों मोम पिघल॥
अनुशासन में रहना, बहना, आजीवन-व्रत लिये हुए।
तेरे तो तेरी इस मां को, मात्र इशारे किये हुए॥
नहीं इशारा करना पड़ता, पहले मैं रहती तैयार।
मेरे सुत की चिन्ता मुझको, मेरा इतना-सा संसार॥

नहीं इशारा करना होगा, कहना नहीं बोलकर भी।
भिक्षा लेने जाना होगा, नहीं दुवार खोलकर भी॥
आगे कोई भिक्षुक होगा, वहां नहीं जाना होगा।
नहीं जताना भी होगा मन, दु:ख नहीं लाना होगा॥
खाना होगा समभावों से, रूखा-सूखा भी खाना।
खाना पकता देख कहीं पर, नहीं वहां पर रुक जाना॥

सर्व रसों का सम्मिश्रण ही, माधुकरी में हो जाता।
साधु-स्वादु बन जाने से, क्या स्वाद-विजयव्रत हो पाता ?
असंविभागी मोक्ष न पाता, भिक्षा के फिर भाग करो।
गुरु के लिये, लिये नव मुनि के, प्राप्त भाग का त्याग करो॥
रोगी को दो पहले, पहले- करो निमन्त्रित सन्तों को।
सन्तों के पन्थों को जानो, पढ़ो पुराने ग्रन्थों को॥

मिलने और नहीं मिलने पर, हर्ष-दैन्य दिखलाना पाप।
अच्छा और बुरा बतलाकर, बतलाया है खाना पाप॥
कल के लिये बचा लेना कुछ, संग्रह करते सन्त नहीं।
सिक्थ-मात्र बासी रख पाये, है यह ऐसा पन्थ नहीं॥
कल के लिये सोचना पहले, संग्रह है परिणामों से।
अपरिग्रहव्रत दूषित बनता, "चन्दन" ऐसे कामों से॥

तीन करण से तीन योग से, नवविधि होते प्रत्याख्यान।
बहुत कठिन है बहुत सूक्ष्म है, जैन साधु के लिये विधान॥

यह उचित है

मुझे पता है बेटे! मैंने, मुनियों का जीवन देखा।
बड़ी निकटता से परखा है, इसीलिये खींची रेखा॥
पीछे पछतावा करने से, पापों का भागी बनना।
इसीलिये ऐसा मत बोलो, मुझे पूर्ण त्यागी बनना॥
त्यागी पुरुषों की वाणी पर, घर में रहकर करो अमल।
प्रतिपल जल में रहकर भी क्या, निर्मल रहता नहीं कमल॥
पूरा नहीं अधूरा ही नर, कर सकता क्या त्याग नहीं।
त्याग नहीं लेने से बोलो, क्या होता वैराग नहीं॥
मन से ही निर्णय ले लो, मैं, ऐसे - ऐसे जीऊंगा।
ऐसा - ऐसा खाऊंगा मैं, ऐसा - ऐसा पीऊंगा॥
नहीं किसी को मारूंगा मैं, बोलूंगा मैं झूठ नहीं।
उचित मुनाफ़ा लूंगा लेकिन, लूंगा ग्राहक लूट नहीं॥

विवाहिता के सिवा स्त्रियों पर, नज़र बुरी मैं नहीं करूं।
नहीं अमर्यादित धन-संग्रह- द्वारा मैं भण्डार भरूं॥

नहीं रात में खाना खाऊं, जाऊं बाहर नहीं कहीं।
रात्रि जगाऊं धर्म ध्यान में, सोऊंगा मैं अधिक नहीं॥
कायिक वाचिक और मानसिक, विनय बढ़ाता जाऊंगा।
नहीं वचन से, जीवन से मैं, पाठ पढ़ाता जाऊंगा॥
मेरे जीने से औरों को, जीने में कुछ कष्ट न हो।
मेरे सुख से औरों की सुख-सुविधाएं भी नष्ट न हो॥

बोलो बेटे! मानोगे यह, मैंने जो कुछ कहा अभी।
कहा अभी है इतना, पहले-बतला दे क्या कहा कभी?

पुत्र का निर्णय

बेटा बोला—था मैं भोला, मां! जब तूने रोक लिया।
मुझे विवाहित करके अपने, मन का पूरा शौक किया॥
तूने जो कुछ कहा सभी मैं, समझ रहा हूं पूर्णतया।
पूर्णतया ही जान-बूझ कर, अन्तिम निर्णय लिया गया॥
जीव भोगता ही आया है, योग-वियोग भोग-उपभोग।
लेकिन इन्हें त्यागने वाले, होते हैं विरले ही लोग॥
त्याग कठिन है, किन्तु कठिन भी, करने से ही होगा त्याग।
त्याग सरल लगता है उसको, जिसको हो जाए वैराग॥

बुरे काम के लिये न अनुमति, लेता—देता कोई नर।
त्याग अगर उत्तम है तो फिर, मुझे मनाही तू मत कर॥
मत कर चिन्ता कोमलता की, आत्मा मेरी है बलवान।
जो बलवान नहीं होते वे, तरु क्या बन सकते फलवान?
तेरा जाया संयम लेकर, तेरी कूख उजालेगा।
ध्येय बनाकर कर्म मुक्ति का, निश्चित उसको पा लेगा॥

करने वाले कब कहते हैं, कहने वाले कब करते।
कैसा ही युग हो "चन्दन मुनि" नहीं साधना सब करते॥

अनुमति का महत्व

अनुमति देनी ही होगी अब, अम्ब! बिलम्ब लगाओ मत।
इतना है अविलम्ब नहीं जो, गीत खुशी के गावो मत॥
अनुमति पाने से ही, मेरे- नहीं हर्ष का होगा पार।
दीक्षा लेने नहीं किन्तु तू- देने को होजा तैयार॥
दीक्षा की अनुमति देने से, पूर्ण समर्थन मिलता है।
क्या प्रस्ताव नहीं गिर जाता, अगर समर्थन हिलता है॥
प्रिय सुत के हित में ही होगी, अनुमति संयम लेने की।
जिद्द नहीं की मैंने अबतक, तेरे से कुछ देने की॥

मां से मांगे, हठ भी ठाने, ताने पल्ला जाये रूठ।
मां न रूठने देती सुत को, बात नहीं यह बिलकुल झूठ॥
किसी वस्तु के लिये किसी को, तूने किया निराश नहीं।
क्या दूं और कहां से दूं यह, चीज अभी तो पास नहीं॥
कोई भी आया लेने को, नहीं उसे इन्कार किया।
जो भी मांगा गया उसे सब, तूने झट स्वीकार किया॥

तेरे सुत के सिवा न कोई, अनुमति लेने आयेगा।
सुत आया अनुमति लेने को, और कहां पर जायेगा?
देदे-देदे अनुमति देदे, मुझे नहीं रुचता संसार।
प्यार खार में परिणत होता, ताना-तानी में क्या सार?

मांग मान ली

सुत की इच्छाओं के आगे, मां की इच्छा हार गई।
दीक्षा लेने की दी अनुमति, मांग एक स्वीकार भई॥

महोत्सव की तैयारी

निष्क्रमणोत्सव ऐसा हो जो, याद करे दुनिया सारी।
"थावर्चा सेठानी" करती, देखो कैसी तैयारी॥

प्राभृत[1] एक महर्घ्य[2] सजाया, लिये मित्र-नाती जन सा
चली आप सेठानी मिलने, रहते जहां द्वारकानाथ
महल-द्वार पर द्वारपाल ने, मार्ग दिखाया जाने का
द्वारपाल कब पूछा करता, कारण क्या है आने का

वासुदेव श्री कृष्ण जहां पर, आई आप वहां पर अब।
विनय सहित वर्द्धापन करती, बोली है सेठानी तब ॥
रखा सामने उत्तम प्राभृत, बात सुनाई है सारी।
मेरा सुत संयम लेने की, करता है प्रभु ! तैयारी ॥
प्रव्रज्या लेगा वह जिनवर- नेमिनाथ के चरणों में।
प्रभु चरणों की महिमा कैसे, वरणी जाये वरणों में ॥
राजकीय चिह्नों से उसका, निष्क्रमणोत्सव हो सोल्लास।
छत्र, मुकुट, चामर लेने को, आई मैं प्रभुवर के पास ॥

चलो मैं चलूं

स्वीकृत कर प्राभृत फिर सस्मित, सेठानी से हरि बोले।
चलो, उसे मैं समझाऊंगा, अभी-अभी दीक्षा क्यों ले ?

---

१. उपहार २. मूल्यवान

समझाने पर अगर न माना, उत्सव सभी करूंगा मैं।
धर्म-दलाली करने से भव-सागर शीघ्र तरूंगा मैं॥

विजयगंधहस्ती पर चढ़कर, हरि खुद आये उसके पास।
'थावर्चा सेठानी' पर था, श्री हरि का कितना विश्वास॥
वासुदेव के घर आने का, मतलब बहुत बड़ा सम्मान।
इससे यह अनुमान लगालो, सेठानी का क्या था स्थान॥

मेरी छाया में

थावर्चा-सुत ने श्री हरि को, उठकर सविनय किया प्रणाम।
किया प्रणाम विनय से जिसने, बना उसी का सारा काम॥
हरि बोले—तू दीक्षा मत ले, भोग बिपुल सुख-भोग भले।
किसी तरह का कष्ट न होगा, वासुदेव के बाहु-तले॥
तेरे पर से हवा गुजरती, उसे नहीं रोका जाता।
बाकी कोई तेरे ऊपर, नज़र न बुरी उठा पाता॥
आयेंगी जो भी बाधाएं, उन्हें नहीं आने दूंगा।
मेरे होते हुए तुझे कुछ, कष्ट नहीं पाने दूंगा॥
मत संकोच ज़रा भी कर तू, रुक जा दीक्षा लेने से।
कुछ भी बिगड़ा नहीं अभी तक, केवल अनुमति देने से॥

हां, रुक जाऊं

बोला थावर्चा-सुत—सविनय, एक बात मैं बतलाऊं।
एक बुढ़ापा, एक मौत को, रोक सको तो रुक जाऊं ॥
वासुदेव की छाया में फिर, विपुल भोग सकता हूं भोग।
आश्वासन दे सकते हैं वे, जो बलशाली होते लोग ॥

थावर्चा-सुत के कहने पर, हरि ने उत्तर दिया तुरन्त।
दुरतिक्रम्य हैं दोनों ही ये, रोक नहीं पाते बलवन्त ॥
नरपति, सुरपति और असुरपति, इनको रोक नहीं पाते।
सर्व कर्म क्षय करने पर ही, दोनों कष्ट नहीं आते ॥

मौत और बुढ़ापा

थावर्चा-सुत खुलकर बोला, देखो आंख खोलकर आप।
आप मुझे समझाने आये, क्या न समझती दुनिया साफ़ ॥
दुनिया में हैं जितने प्राणी, काल सभी को खाता है।
किसकी ताक़त है जो इसके, पंजे से बच पाता है ॥
आगा-पीछा नहीं देखता, पत्थर दिल कहलाता है।
बैठी कहीं न क्यों हो चिड़िया, बाज झपट ले जाता है ॥

कब आता कब ले जाता है, पता नहीं कोई पाता।
नाता नहीं किसी से रखता, नहीं दिखाता है खाता॥
रिश्वत खाता नहीं किसी से, पूरा-पूरा है न्यायी।
न्यायी दुखदाई लगता है, होने पर भी सुखदायी॥

अवधि अवधि ही कहलाती है, चाहे जितनी दी जाये।
अवधि पूर्ण होने का भय है, मौज कहां से की जाये॥
सोने पर जगने का भय है, जगने पर भय सोने का।
सोने का क्या करे आदमी, पता नहीं क्या होने का॥
रुक-रुक आता सांस हमेशा, पूर्णतया रुक जाता है।
कौन देखता रुक जाने से, सुख पाता दुःख पाता है॥
औरों के सुख-दुख की चिन्ता, करने से क्या होता है।
अपने ही जीने को प्राणी, रोता है तो रोता है॥
जीवन शान्ति, अशान्ति मृत्यु है, मरने का ख़तरा पल-पल।
जल भी बहता-बहता कहता, आज नहीं केवल कल-कल॥
आया यहां कहां से, जाना- होगा कहां यहां से फिर।
कहीं चले जावो, आयेगी- मौत घूमती अपने सिर॥

मौत बुरी या बुढ़ापा

मरने का दुख है क्षण भर का, ऐसे कहते संसारी।
मरने से भी बड़ा दुःख है, यहां बुढ़ापे का भारी॥

श्रवण नहीं सुन पाते बातें, आंखें पाती देख नहीं ।
मति अस्थिर हो जाने से ही, रहता पूर्ण विवेक नहीं ॥
दाडिम के दाने से सारे, दान्त कभी के गिर जाते ।
नशा-जाल जितने देही में, बात कफों से घिर जाते ॥

भोजन केवल रुचता लेकिन, पचता खाया हुआ नहीं ।
सुख पूर्वक जीने की फिर तो, क़रता कोई दुआ नहीं ॥

भौंरे सभी हंस हो जाते, हंसती जाती बालाएं ।
बाबाजी-बाबाजी कहकर, रुक जाती सुकुमालाएं ॥
थर-थर हाथ कांपते, मुंह में, सीधा रखा न जाए ग्रास ।
औरों को क्या आना है जब, पत्नी कभी न आये पास ॥
सेवा करते थके हुए सब, कहते ऐसे घर वाले ।
नहीं संभाला जाता हम से, इसे मृत्यु अब संभाले ॥
नहीं रात में नींद, दिवस में, भूख नहीं कुछ काम नहीं ॥
काम नहीं होने से अच्छा, लगता है आराम नहीं ॥

सहे न जाते, सुने न जाते, बदले युग के नये विचार ।
हाय! हाय! भगवान! यहां तो, बदल गया सारा संसार ॥
हमने ऐसा कभी न देखा, हम ऐसे थे, युग ऐसा ।
चाहे आज अधिक है घर में, लेकिन शुद्ध नहीं पैसा ॥

नहीं लाज है नहीं शर्म है, नहीं धर्म है कर्म नहीं।
पढे-लिखे पहले भी होते, होते वे वे-शर्म नहीं॥
एवरेस्ट की चोटी जैसा, बना हुआ है चौवारा।
एक सहारा है लाठी का, पासा है यह पौबारा॥

मित्र नहीं मिलने को आते, नाती लेते नहीं सलाह।
मेरे लिये जमाना सारा, वना कभी का वेपरवाह॥
मरते बाल, युवा मर जाते, मौत नहीं मेरी आती।
चिट्ठी चूहे कहीं लेगये, मिली नहीं मेरी पाती॥
जिया न जाता, मरा न जाता, जीना-मरना वना कठिन।
पंडित जी ने बतलाया था, वह भी निकल गया है दिन॥
दीर्घ आयु जो हो तो उसके, साथ स्वास्थ्य भी हो उत्तम।
बूढे नर कहते हैं ऐसे, जीएं कैसे जीएं हम॥
मरे हुए ही हैं हम केवल, हमें जलाना बाकी है।
जिन्दे नहीं जला सकते ये, कमजोरी दुनिया की है॥
नहीं चिता में भले जलाये, वोल-बोल कर जला रहे।
लिये हमारे ही सारे दिन, तीर तमंचा चला रहे॥

मर जाते तो अच्छा होता, जीने का क्या काम यहां।
करते आप न करने देते, पल भर भी आराम यहां॥

यह लावो, यह ले जावो बस, खड़े रहो हाज़र सारे।
जितने अधिक मुझे थे प्यारे, वे ही आज अधिक खारे॥

यही लाजिम है

मौत बुढ़ापे से बचने को, संयम अपनाना लाज़िम।
संयम अपनाने को प्रभु के, चरणों में जाना लाज़िम॥
चरणों में जाने को मां से, अनुमति भी पाना लाज़िम।
अनुमति पाने का कारण भी, मां को बतलाना लाज़िम॥
मुझे यहां समझाने को भी, हरि का है आना लाज़िम।
वैरागी को किसी व्यक्ति से, क्या है शरमाना लाज़िम?
संयम लेते हुए किसी को, क्या है फिसलाना लाज़िम?
जो लेता हो उसे प्रेरणा, देना दिलवाना लाज़िम॥
इसीलिये यह विनय आप से, देरी नहीं लगावो जी!
नेमि जिनेश्वर के चरणों में, संयम शीघ्र दिलावो जी!
एक यही अभिलाषा अब तो, इसको सफल बनावो जी!
जन्म-मरण के महाकष्ट से, पीछा श्याम! छुड़ावो जी!

यह करना है

सारे कर्म खपाना है, जा, नेमिनाथ के चरणों में।
जीवन सफल बनाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥

दुनिया को विसराना है जा, नेमिनाथ के चरणों में।
संयम को अपनाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥
गीत सत्य के गाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में।
आत्मा को उजलाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥
माया-मान मिटाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में।
क्रोध लोभ ठुकराना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥
क़ाबू मन पर पाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में।
बाना जैन सजाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥
निश्चल ध्यान जमाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में।
अजर-अमर बन जाना है जा, नेमिनाथ के चरणों में॥

श्री कृष्ण की दलाली

सुन थावर्चा-सुत की वाणी, श्रीपति चकित बने मन में।
आस्थावान पुरुष होता है, पूर्ण सफल निज जीवन में॥
निष्क्रमणोत्सव की तैयारी, राजकीय स्तर पर होगी।
जिसकी चर्चा बड़ी देर तक, 'चन्दन' हर घर पर होगी॥

श्री हरि कौटुम्बिक पुरुषों से, उद्घोषण करवाते हैं।
धर्म दलाली करने का शुभ, लाभ विशेष उठाते हैं॥

घोषणा

देवानुप्रिय ! थावर्चा-सुत, जन्म-मरण से भय पाकर ।
नेमि जिनेश्वर के चरणों में, दीक्षा लेता है जाकर ॥
राजा युवराजा या देवी, ईश्वर तलवर और कुमार।
कौटुम्बिक माडम्बिक श्रेष्ठी, सेनापति या साहूकार ॥
जो भी दीक्षा लेना चाहे, श्री थावर्चा-सुत के साथ ।
उसके लिये आज यह ऐसी, कहलाई जाती है बात ॥
दीक्षा लेने वालों के घर- वालों की सब सार संभाल।
सभी तरह से कृष्ण करेंगे, चिन्ता का है नहीं सवाल ॥
जिसके पास अगर कुछ है तो, रक्षण उसका करना जी !
जिसके पास नहीं कुछ है तो, उसके सम्मुख धरना जी !

रुके हुए व्यक्ति

कोई वृद्ध पिता माता के- लिये रुका था निज घर पर ।
कौन संभालेगा शिशुओं को, कोई ऐसा करता डर ॥
कोई नहीं कमाने वाला, घर वाले क्या खायेंगे ।
दीक्षा तो लेनी है, इनको– छोड़ कहां पर जायेंगे ॥
शय्या पर सोये रोगी को, छोड़ कहां से लें संयम ।
सेवा करने वाला कोई, मिल जाये तो लेलें हम ॥

लिया हुआ ऋण जो उतरे तो, संयम करना है स्वीकार।
ऐसे-ऐसे विविध तरह से, रुके हुए थे जो नर-नार॥
बाधाएं सब दूर हो गईं, नाम काम करवाया दर्ज।
जो भी धर्म-दलाली करता, करता अपना पूरा फ़र्ज॥

एक हजार वैरागी

एक हजार पुरुष निकले हैं, श्री थावर्चा-सुत के साथ।
देख प्रभाव घोषणा का यह, खुश-खुश बने द्वारकानाथ॥
प्रीतिभोज के आयोजन में, जैसे शामिल होते लोग।
संयम लेने में भी देते, उत्तम लोग सदा सहयोग॥
बारातों में जाते जैसे, दुलहन लाने मिलकर लोग।
संयम लेने में भी देते, उत्तम लोग परम सहयोग॥
सभा जलूसों में भी होते, यथा समय एकत्रित लोग।
संयम लेने में भी देते, उत्तम लोग सरस सहयोग॥
देश-सुरक्षा करने को भी, सेनाओं में जाते लोग।
संयम लेने में भी देते, उत्तम लोग सदा सहयोग॥

पकड़ो-पकड़ो चोर-चोर है, सुनकर दौड़े आते लोग।
संयम लेने में भी देते, उत्तम लोग उच्च सहयोग॥

श्री थावर्चा-सुत को सुख से, करवाया है उत्तम स्नान।
किया विलेपन चन्दन, चन्दन- घिस करके गोशीर्ष प्रधान॥
कपड़े गहने पहनाये हैं, कल्पवृक्ष सम सजा दिया।
सजा दिया क्या एक बार तो, कल्पवृक्ष को लजा दिया॥
मूल्य अधिक हो भार अल्प हो, करवाया उत्तम शृंगार।
शृंगारों से मोह नहीं मन, छोड़ रहा सारा संसार॥
ऐसे ठाठ-बाट को तजकर, संयम धारण करता है।
कहने का मतलब—वैरागी, कहीं न भूखों मरता है॥
कुल की और शहर की शोभा, शोभा श्री जिन-शासन की।
प्रभावना प्रवचन की करना, मनोभावना 'चन्दन' की॥

अलग-अलग शिविकाओं में सब, बैठे वैरागी सजकर।
बैठे मात्र दिखाने को ही, जाते ये दुनिया तजकर॥
थावर्चा-सुत की शिविका को, एक हज़ार पुरुष बहते।
एक हज़ार किरण वाला यह, सूर्य आगया जन कहते॥
एक सरीखी पोशाकों से, हैं वे एक, न एक हज़ार।
क्यों न सहस्र दुकानें हों पर, है तो एक बड़ा बाज़ार॥

एक सरीखे रंग-ढंग से, मानो हैं सारे भाई।
भाई-भाई कह सकते पर, एक नहीं इनके भाई ॥

निष्क्रमण यात्रा

एक हज़ार सजाए हाथी, अश्व सजाए एक हज़ार।
एक हज़ार सजे रथ, पैदल- सेना एक हज़ार निहार ॥
एक हज़ार सजी शिविकाएं, वाजे वजते विविध प्रकार।
सजी द्वारिका नगरी सारी, सजे हुए सारे वाज़ार ॥
हरि हलधर जव शामिल हैं तो, शामिल है हर घर हर नर।
निष्क्रमणोत्सव की शोभा पर, डालो अपनी एक नज़र ॥
चतुष्पथों पर बने हुए हैं, सुन्दर-सुन्दर तोरण-द्वार।
पहनाने के लिये खड़े हैं, लोग सूत के लेकर हार ॥
सधवाएं मंगल गीतों से, गुंजा रही हैं नभ मण्डल।
हिल-हिल कर स्वर मिला रहे हैं, कर्ण-युगल;स्थित मणि-कुंडल ॥
जल से भरा कलश लेकर के, खड़ी शकुन देती बाला।
नहीं सामने आती बाला, वस्त्र पहन करके काला ॥

झुक-झुक लोग देखते जैसे, मानो झुके झरोखे भी।
सभी देखने को झुकते जब, कौन किसे अब टोके जी !

भीड़ जमा है ऐसी भारी, नहीं निकलने पाता नर।
जाने दो कृपया जाने दो, मेरा तो घर रहा इधर॥
ठहरो-ठहरो अभी न निकलो, देखो आती असवारी।
असवारी के साथ आरही, पुरी द्वारिका भी सारी॥
वासुदेव के आजाने से, आ जाते सब अधिकारी।
एक हजार हो रही दीक्षा, आये उनके परिवारी॥
जय हो-जय हो जैनधर्म की, नेमिनाथ प्रभु की जय हो।
श्री थावर्चा-सुत की जय हो, प्राप्त विजय सुख अक्षय हो॥

"नन्दनवन" में

चलता हुआ जलूस अन्त में, नगरी-बाहर आया है।
एक-एक कर शिविकाओं को, यथास्थान ठहराया है॥
आगे कर वैरागी-दल को, जय से नभ गुँजाया है।
पैदल ही उन सारों ने अब, अपना कदम बढाया है॥

दीक्षा के पूर्व

दया-दिवाकर नेमिनाथ का, जिसदम दर्शन पाया है।
हाथ जोड़कर चरणकमल में, सब ने शीश झुकाया है॥

नमंसामि वन्दामि वोलकर, जीवन सफ़ल बनाया है।
संयम लेने को आये हम, भाव स्पष्ट वतलाया है॥
अहासुहं हे देवाणुप्पिय, प्रभु ने यों फरमाया है।
दिदिक्षुओं के दिल से निकला, हर्ष गगन में छाया है॥

मंगलमय ईशानकोण को, सब ने कदम उठाया है।
वस्त्राभूषण त्याग साधु का, वाना श्रेष्ठ सजाया है॥
चोटी की, की लोच स्वयं फिर, रोम-रोम हर्षाया है।
महामन्त्र नवकार सभी ने, मीठे स्वर से गाया है॥
पात्रों की कर झोली सब के, "औघा" काख दबाया है।
मुखड़े की मुखपत्ती ने मुख, चन्दा-सा चमकाया है॥
कर तैयारी आये, प्रभु को, मस्तक पुन: नवाया है।
संयम की हो दया, दयालो, सविनय शब्द सुनाया है॥

दीक्षा और शिक्षा

नेमि जिनेश्वर ने इन सब को, खड़ा विनय युत पाया है।
मंगलकारी दीक्षा का तब, "चन्दन पाठ पढाया है॥
सुखद साधना संयम की फिर, पद्धति युत समझाई है।
करना और नहीं करना क्या, खोल बात बतलाई है॥

त्याग सर्व सावद्य योग का, यही मन्त्र है दीक्षा का।
सावधान प्रतिपल रहना है, यही मन्त्र है शिक्षा का॥

प्रभु ने कहा—महाव्रत अपने, जितने स्वच्छ निभाओगे।
उतने-उतने अंशों में ही, संचित कर्म खपाओगे॥
धर्मध्यान में शुक्लध्यान में, करता है जो श्रमण रमण।
मोक्ष गमन उसका होता है, मिट जाती है जनम-मरण॥
राग-द्वेष को करके पतला, जो साधक रह जाते हैं।
स्वर्ग-लोक से आगे बिलकुल, कभी न वे जा पाते हैं॥
एक अनेक जन्म फिर करके, वे भी मोक्ष सिधाते हैं।
सदा-सदा को दुनिया में वे- चक्कर नहीं लगाते हैं॥
पाना हो जो इसी जनम में, मुक्ति शीघ्र तुम लोगों को।
सुमति-गुप्ति द्वारा अति निर्मल, करना तीनों योगों को॥
नहीं उपजने देना मन में, विषय-वासना भोगों की।
जड़ ही कट जाएगी इससे, जन्म-मरण के रोगों की॥
रखना उद्यम धर्म ध्यान में, और सदा तप तपने में।
हीनभाव मत आने देना, नहीं अहं भी अपने में॥

चार कषायों विषयों का जो, आ सेवन मंजूर नहीं।
दृढ विश्वास करो फिर तुमसे, मोक्ष ज़रा भी दूर नहीं॥

शिष्य मण्डली का स्वर

दीक्षा पाकर, शिक्षा पाकर, फूले नहीं समाये हैं।
वचन नहीं फरमाए भगवन्! मोती ही वरसाये हैं॥
जो भी है फ़रमाया उस पर, पूरा अमल कमाएंगे।
मोह-ममत्व-कषाय-विषय के, निकट कभी क्यों जाएंगे॥
बने सन्त हैं हम तरने को, तर करके दिखलाएंगे।
सदा साधना उत्तम करके, मुक्ति कर्म से पाएंगे॥
कृपा आपकी है जब पूरी, हम जैसे नादानों पर।
नहीं हटेंगे पीछे किंचित, खेल सकेंगे प्राणों पर॥
लक्ष्य बनाकर मात्र मुक्ति का, छोड़ा दुनियादारी को।
कर्म खपाकर देखेंगे बस, मुक्ति मोहिनी प्यारी को॥

ऐसे कहकर प्रभु-चरणों में, सविनय शीश झुकाते हैं।
नव दीक्षित मुनि श्रमण संघ में, शामिल तब हो जाते हैं॥

माता की आशीष

वासुदेव श्री कृष्ण खड़े हैं, खड़ी सामने सेठानी।
दोनों के मुख से मुश्किल से, निकल सकी है यह वानी॥

कभी "जैन स्थानक" में या फिर, वस्ती बाग बनाएंगे।
दूर रहा फल-फूल तोड़ना, कर भी नहीं लगाएंगे॥
हित मित सत्य कहेंगे वाणी, अमृत ही बरसाएंगे।
वचन असत्य स्वप्न में भी ये, नहीं जीभ पर लाएंगे॥

आज्ञा बिना कभी भी कोई, नहीं पदार्थ उठाएंगे।
वस्तु अचित तथा याचित से, अपना काम चलाएंगे॥
ब्रह्मचर्यव्रत नौ बाड़ों से, संयुत सतत निभाएंगे।
नारी जाती-स्पर्श से खुद को, खुद ही खूब बचाएंगे॥
अपरिग्रहव्रत धारी हैं ये, जड़ से लोभ भगाएंगे।
नहीं ममत्त्व देह पर होगा, जग पर क्या ललचाएंगे॥
नहीं करेंगे "राइभोयणं" दिन-दिन में ही खाएंगे।
सूर्य अस्त के बाद बूंद जल, मुख से नहीं लगाएंगे॥
हाथी घोड़े बग्घी या रथ, हरगिज नहीं मंगाएंगे।
होगा जाना जहां कहां भी, पैदल कदम बढाएंगे॥
किसी स्थान पर डेरा भी तो, अपना नहीं जमाएंगे।
घूम-घूम कर दुनिया में बस, दया धर्म फैलाएंगे॥

अग्नि जलाया नहीं करेंगे, भोजन नहीं पकाएंगे।
नहीं निमन्त्रण मानेंगे ये, माधुकरी ले आयेंगे॥

बनकर साधु मुफ़त मालों पर, मौजें नहीं उड़ायेंगे।
मुख पर की मुखपती को ये, दुनिया में चमकायेंगे॥
लक्ष्य मुक्ति का लेकर निकले, उसे नहीं विसरायेंगे।
लगता है बस अजर-अमर ही, बन करके दिखलायेंगे॥

गुणियों में, गुण-द्रष्टाओं में, चर्चा है यों आम यहां।
भूल गये थे और काम सब, हुई इसी में शाम वहां॥

शास्त्रीय भाषा में मुनि-जीवन

पंच समिति से समित होगये, तीन गुप्ति से गुप्त हुए।
मानो माया-मोह हृदय से, एक प्रकार विलुप्त हुए॥
अशुभ निवारण, कुशल-प्रवर्तन, योगों का कर लेना जी!
मुनि जीवन की दिनचर्या में, ध्यान एक धर लेना जी!
विषय असेवन करने से ही, "गुप्तेन्द्रिय" कहलाते हैं।
गुप्त ब्रह्मचारी बन करके, जीवन सफल बनाते हैं॥
बने 'अकोही' इसीलिये है, शान्त[1] और उपशान्त[2] प्रशान्त[3]।
'अममे' ममकारों से कैसे, होने देता मन आक्रान्त॥

---

१. सौम्यमूर्त्तित्वात् २. कषायोदयाऽभावात् ३. कषायोदयस्य विफलीकरण

सभी ग्रन्थियों के छेदन से, 'छिन्न ग्रन्थ' बनते निर्ग्रन्थ।
ग्रन्थ और आगम बतलाते, निर्ग्रन्थों का सच्चा पन्थ॥
गगन समान 'निरालंबी' हैं, 'सतत विहारी' वायु समान।
पद्मपत्र सम 'निरुपलेप' हैं, शंख समान 'निरंजन' जान॥
शारद सलिल समान हृदय हैं, 'विप्रमुक्त' हैं विहग समान।
'अप्रमत्त' भारण्ड विहग सम, चकित चित्त रखते निज ध्यान॥

'निष्प्रकंप' हैं मंदिरगिरि सम, पवन परीषह का पहचान।
संयम-भार निभाने में वे, 'स्थामवान'[1] हैं वृषभ समान॥
'सर्व सहा' साधु कहलाते, सर्व स्पर्श सह लेने से।
'खग्गि विषाण' समान एक हैं, एकाकी रह लेने से॥
'सुहुत हुताशन' जैसा तप का, तेज ज्वलन्त नज़र आता।
दर्शन करने वाला लेकिन, बिलकुल क्षोभ नहीं पाता॥
विजातीय द्रव्यों से हटकर, 'जात रूप' सम बना स्वभाव।
मन पर विषय-कषायों का कुछ, पड़ सकता अब नहीं प्रभाव॥

चन्द्र समान सदा 'शीतल' हैं, 'तेजस्वी' हैं सूर्य समान।
सागर सम 'गम्भीर' हृदय हैं, बनराजा सम मन 'बलवान'॥
तृण-मणि में कंकर-कंचन में, साधु उपेक्षित नित रहते।
चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, समताभाव सहित सहते॥

अपकर्त्ता पर हो उपकर्त्ता, मुनि वह 'वासी चन्दनकप्प।'
नहीं राग है, नहीं द्वेष है, नहीं अर्थ में व्यापृत अप्प[1] ॥
द्रव्य-क्षेत्र का काल-भाव का, मुनि-मन पर प्रतिबन्ध नहीं।
लग जाए प्रतिबन्ध जरा भी, 'चन्दन' फिर आनन्द नहीं ॥

जीने-मरने की आकांक्षा, कभी मर चुकी मुनि-मन से।
केवल 'कम्मखयट्ठाए' ही, जीते हैं मुनि जीवन से ॥

मुनियों की ज्ञानाराधना

'नेमि' जिनेश्वर की सेवा से, जीवन सफल बनाते हैं।
आज्ञा के अनुकूल हमेशा, अपना कदम उठाते हैं ॥
जहां जिनेश्वर जाते हैं, सब- साथ उन्हीं के जाते हैं।
और उन्हीं के सन्तों से वे, निश-दिन ज्ञान बढ़ाते हैं ॥
बारह अंग पढा है कोई, कोई अंग उपांग सभी।
सीखा मूल छेद भी सीखा ज्ञान नहीं विकलांग कभी ॥
बने साधु थावर्चा-सुत पर, चौदह पूर्वों के पाठी।
नहीं कभी उकताते मानो, ऐसी अद्भुत थे माटी ॥

---

१. यहां "अप्प" शब्द "नहीं" अर्थ में है। अल्प-थोड़ा अर्थ में नहीं।

चलती रहती साथ तपस्या, कभी-कभी ही खाते थे।
ज्ञान साधना तपःसाधना, द्वारा कर्म खपाते थे॥
क्षण भी कोई खाली उनको, नहीं कभी भी पाता था।
ज्ञान-ध्यान में प्रायः उनका, समय बीतता जाता था॥
साथी दीक्षित मुनियों का भी, समय सफल ही होता था।
एक पलक भी निष्फल कोई, नहीं कभी भी खोता था॥
चमक रहे थे चन्दा-से वे, सारे हीं उन मुनियों में।
होती थी बस गणना उनकी, परम उच्च ही गुणियों में॥

अगवानी बने

देख ज्ञान परिपक्व, देख तप, चारित्राराधन उत्तम।
थावर्चा-सुत मुनि पर करुणा, जिनवर जी की क्यों हो कम॥
ज्येष्ठ पुत्र को, ज्येष्ठ शिष्य को, पिता, सुगुरु देते हैं भार।
भार बिना सौंपे, कैसे वे, कर पायें गृहशासन पार॥
एक हजार साधुओं की अब, सौंपी जाती अगवानी।
काम अयोग्य नहीं करते हैं, जिनवर या केवलज्ञानी॥

अगवानी का आधार

त्यागी हो वैरागी हो फिर, ज्ञानी भी हो ध्यानी हो।
विनयवान हो न्यायवान हो, वही साधु अगवानी हो॥

प्रथम अंङ्ग का, मूल-छेद का, पाठी अमृतवानी हो।
मुनियों के संघाड़े में बस, वही साधु अगवानी हो।।
उक्त गुणों के बिना देखलो, जो अगवानी करता है।
आगम का फरमान साफ़ है, वह मनमानी करता है।।
नहीं तार सकता औरों को, नहीं स्वयं भी तरता है।
चौरासी के इसी चक्र में, सदा जन्मता-मरता है।।
सच्चे सतगुरु की आज्ञा को, जिसने भी आराधा है।
ज्ञान ध्यान चारित्र आदि को, उसी साधु ने साधा है।।
ऐसा साधु जहां भी जाता, आदर भारी पाता है।
अपना,अपने भक्तों का वह, बेड़ा पार लगाता है।।

भगवान से निवेदन

श्री थावर्चा-सुत मुनि बोले, नेमि जिनेश्वर से इक बार।
अगर आपकी आज्ञा हो तो, जन पद में हम करें विहार।।
एक हजार साधु मिल करके, जाएं करने धर्म–प्रचार।
धर्म-प्रचार साधुओं द्वारा, होता आया है हर बार।।
धर्म चलाने से चलता है, चलता कभी न अपने आप।
अपने आप चला करता है, जो परिचित होता है पाप।।
साधु जगाये नहीं देश को, कौन जगाने जायेगा ?
जगच्चक्षु[1] के बिना जगत क्या, कभी रोशनी पायेगा ?

---

१ सूर्य

'अहासुहं हे देवाणुप्पिय ! सुख से करो विहार-प्रचार।'
'चन्दन' शिष्य सुगुरु का ऐसा, मधुर-मधुर होता व्यवहार ॥

उद्धत शिष्यों से

आज्ञा देनी ही होगी यों, गुरु को नहीं दबाओ जी !
बिना दांत ही चने लोह के, शिष्यो ! नहीं चबाओ जी !
नहीं आप से होता, हमको- करने देते नहीं प्रचार ।
बूढ़े बाबा ! मर जाओगे, ऐसे मत बोलो ललकार ॥
आज्ञा मांगो बड़े विनय से, आज्ञा मिलने से जावो ।
जावो नहीं बिना आज्ञा ही, आज्ञाकारी कहलावो ॥

अध्याय की पूर्ति

थावर्चा-सुत होगये, श्रमण परम विनीत ।
रखी द्वितीयोध्याय ने, विनय धर्म की रीत ॥

श्रामण बनो विनयी बनो, बनो नहीं उद्दण्ड ।
'चन्दन' धर्म अखण्ड है, जो है विनय अखण्ड ॥

इति द्वितीयोऽध्याय :

३

अथ तृतीय अध्याय

मंगलाचरण

चलो तृतीयोध्याय में, करने धर्म - प्रचार।
होता धर्म-प्रचार से, दुनिया का उद्धार॥
थावर्चा-सुत श्रमण ले, शिष्यों का परिवार।
निकले धर्म-प्रचार हित, करते पाद विहार॥
जन-जन से जिस श्रमण का, बहुत बड़ा संपर्क।
वह मुनि धर्म-प्रभावना, करता बिना वितर्क॥
अणु-अणु पानी पवन से, जैसे होते शुद्ध।
'चन्दन' करते श्रमण जन, जन-जीवन उद्‌बुद्ध॥

महा मुनीश्वर थावर्चा-सुत, ऐसे आज्ञाकारी थे।
उच्चाचारी व्यवहारी थे, संयम[1] के अधिकारी थे॥

---

१. सं+यम अर्थात् सावधानी के साथ भलीभांति इच्छाओं का नियमन करना। इसके आठ भेद हैं—

(१) प्रेक्ष्यसंयम—मार्ग आदि को देखकर प्रवृत्ति करना।

(२) उपेक्ष्य संयम—साधु तथा गृहस्थों को आगम में बताई हुई शुभ क्रिया में प्रवृत्त कर अशुभ क्रिया से रोकना।

(३) अपहृत्यसंयम—संयम के लिये उपकारक वस्त्र पात्रादि वस्तुओं के सिवाय सभी वस्तुओं को छोड़ना।

(४) प्रमृज्यसंयम—मार्ग आदि को विधि पूर्वक पूजकर काम में लाना।

(५) कायसंयम—दौड़ने, उछलने, कूदने आदि का त्याग कर शरीर को शुभ क्रियाओं में लगाना।

(६) वाक्संयम—कठोर तथा असत्य वचन न बोलना और शुभ भाषा में प्रवृत्ति करना।

(७) मनसंयम—द्वेष, अभिमान, ईर्ष्या आदि छोड़कर मन को धर्म ध्यान में लगाना।

(८) उपकरणसंयम—वस्त्र पात्र पुस्तक आदि उपकरणों को संभाल कर रखना।

—तत्त्वार्थाधिगम भाष्य अध्याय ६ सू० ६

एक हज़ार साधुओं को ले, देश जगाते फिरते हैं।
हर प्राणी को श्री जिनवाणी, सरस सुनाते फिरते हैं॥
समता का, सन्तोष-शील का, शंख बजाते फिरते हैं।
जन-जन में फिर मानवता का, दीप जलाते फिरते हैं॥

क्रूर भावना दूर हटाकर, दया सिखाते फिरते हैं।
प्रेम-प्यार की सदाचार की, सुधा पिलाते फिरते हैं॥
अनेकान्त दर्शन का प्यारा, ध्वज लहराते फिरते हैं।
राग-द्वेष की कपट-क्लेश की, आग बुझाते फिरते हैं॥

सम्यग्दर्शन और ज्ञान का, रवि चमकाते फिरते हैं।
उलझे हुए विचारों में जो, मन सुलझाते फिरते हैं॥

श्रमणोपासक के व्रत बारह, सविधि बताते फिरते हैं।
महाव्रतों की महिमा ऐसी, सब समझाते फिरते हैं॥

नवतत्त्वों की विस्तृत चर्चा, खूब चलाते फिरते हैं।
षड् द्रव्यात्मक लोक-ज्ञान की, झड़ी लगाते फिरते हैं॥
वैर-विरोध बगैरह का बस, नाम मिटाते फिरते हैं।
सद्भावों की गंगा - यमुना, सुखद बहाते फिरते हैं॥
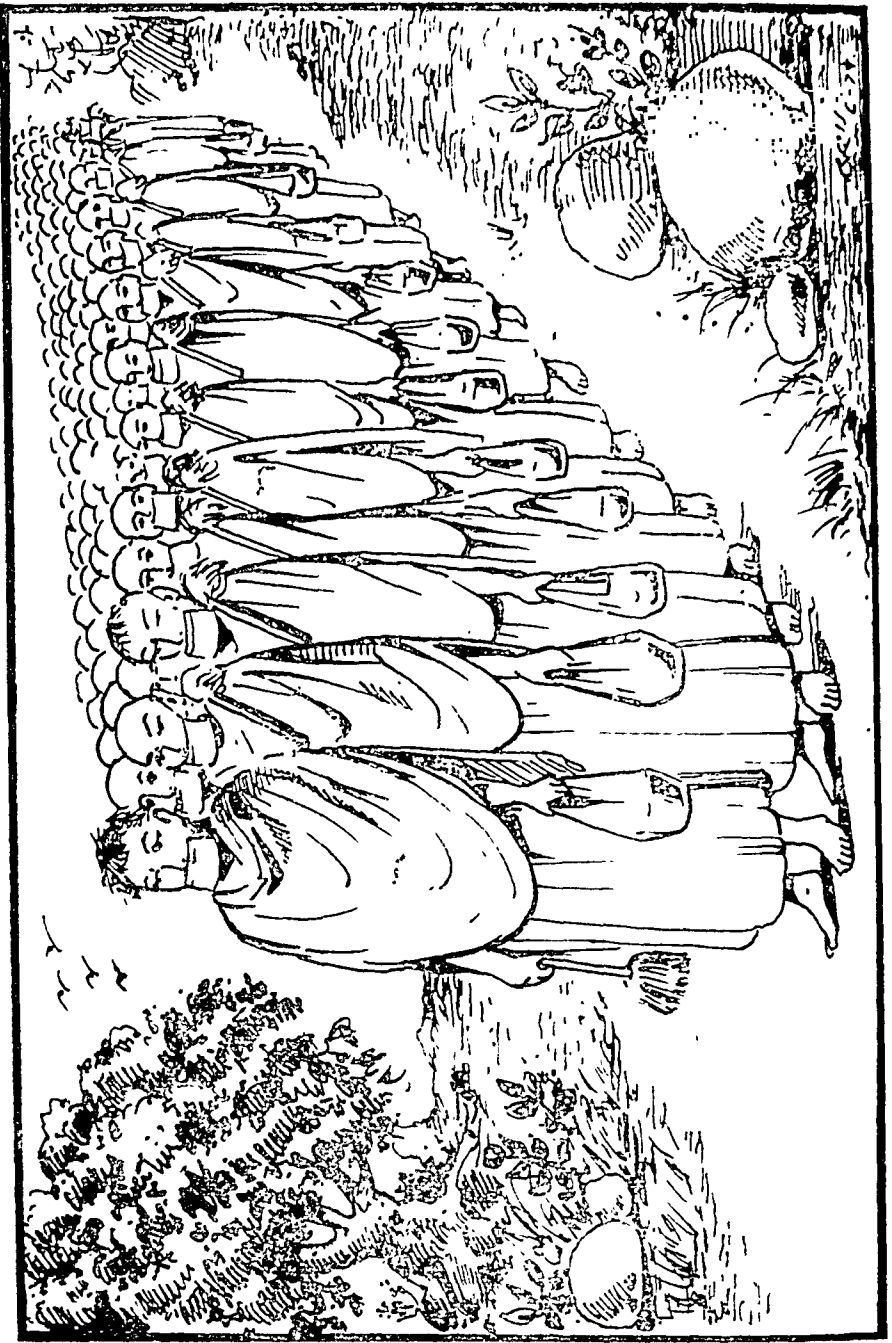
"मंगलकारी धर्म-भावना, जग फैलाते फिरते हैं"

बिछुड़े हुए बन्धुओं को वे, गले मिलाते फिरते हैं।
पाठ विश्व-मैत्री का पक्का, प्रथम पढाते फिरते हैं॥
भेद-भाव के बिना सभी को- ही अपनाते फिरते हैं।
व्याख्यानों की अमृत वर्षा, नित बरसाते फिरते हैं॥
मंगलकारी धर्म—भावना, जग फैलाते फिरते हैं।
सौ बातों की बात साधु का, फर्ज निभाते फिरते हैं॥

'सेलग पुर' में

अति सुन्दर पुर 'सेलकपुर' था, 'सेलक' था नरपति का नाम।
'पद्मावती' महारानी थी, 'मंडुक' युवराजा गुण-धाम॥
'पंथक' आदि पांचसौ मन्त्री, बुद्धिमान थे नीति कुशल।
नहीं कुशलता बिना प्रशासन, चारु रूप से सकता चल॥
स्वच्छ व्यवस्था देने का ही, शासन का होता है अर्थ।
स्वच्छ प्रशासन ही पृथ्वी पर, 'चन्दन' होता पूर्ण समर्थ॥

उद्यान का लाभ

नगरी के बाहर था सुन्दर, नाम 'सुभूमिभाग' उद्यान।
सर्व हिताय हुआ करता है, उद्यानों का सुन्दर स्थान॥

साधु-सन्त भी ठहरा करते, बड़े-बड़े उद्यानों में।
सुनते हैं यह आप सभी ही, प्रतिदिन के व्याख्यानों में॥
जहां जिनेश्वर प्रवचन करते, छाया करता वृक्ष अशोक।
बिना वनस्पति के बतलावो, जी सकता है क्या यह लोक?
हरा-भरा हो और खुला हो, खिला हुआ फ़ल-फूलों से।
स्थान-स्थान पर सजा हुआ हो, सुन्दर-सुन्दर झूलों से॥
विविध पक्षियों की आवाजें, सुनने को मिल जाती हों।
बिना खिलाये दिल की कलियां, एक-एक खिल जाती हों॥
घर पर नहीं चित्त लगता जब, उद्यानों में आते लोग।
उद्यानों की सेवाओं का, पूरा लाभ उठाते लोग॥

'सेलकपुर' में सन्त

श्री थावर्चा-सुत मुनि आये, 'सेलकपुर' में सुखकारी।
दर्शन करने प्रवचन सुनने, आये भारी नर-नारी॥
'सेलक' राजा, 'पंथक' मन्त्री, आदि सभी जन आये हैं।
एक हजार साधुओं के शुभ- मंगल दर्शन पाये हैं॥
मुनि ने धर्म कथा के द्वारा, मर्म धर्म का समझाया।
धर्म नहीं करने वाले ने, मानव का भव क्यों पाया?

पाया, पाया नहीं, बराबर, योनि पूर्ण कर चला गया ।
भला न अपना भला और का, किया नहीं वह छला गया ।।
धर्मी बन जाने से अपना, और पराया भी हित है ।
क्योंकि हिताहित निहित साथ में, तथ्य नहीं यह अविदित है ।।

धर्म से लाभ

हिंसा का यदि त्याग किया तो, जीव स्वतः बच जायेंगे ।
सत्य बोलने वाले से क्या, कोई धोखा खायेंगे ?
चोरी का यदि त्याग किया तो, बच जाता धन औरों का ।
किसे नहीं डर लगता बोलो, चोरों और ठगोरों का ।।
त्याग परस्त्री का करने से, निर्भय नारी लोक हुआ ।
शील, दया, सन्तोष, सत्य से, पूर्णतया आलोक हुआ ।।
अपरिग्रह व्रत अपनाने से, लोगों को भी मिलता धन ।
क्या न समाजवाद में संग्रह, पैदा करता है अड़चन ?
खाने की मर्यादा से ही, आधि-व्याधि आती है कम ।
असमय और अधिक खाने को, कहता कौन यहां उत्तम ?

यही धर्म है—सदाचार है, मानवता का मूलाधार ।
साधु लोग इस सत्य धर्म का, करते आये सदा प्रचार ।।

धर्म-नाम पर धोखा देना, धोखा खाना बड़ा अधर्म।
करो नहीं, होने भी मत दो, धर्म-नाम पर कहीं कुकर्म॥

व्रत ग्रहण

सुनकर 'श्री सेलक' राजा ने, बारह व्रत अपनाये हैं।
थी थावर्चा-सुत मुनिवर को, अपने गुरु ठहराये हैं॥
'पंथक' आदि सभी सचिवों ने, बारह व्रत स्वीकार किये।
व्रत की सारी विधियां समझीं, समझ सभी अतिचार लिये॥
भगवन् ! कोई दीक्षा लेता, हम श्रावक-व्रत ही लेते।
अपनी-अपनी शक्ति देखकर, दाता दान यथा देते॥
जितना ग्रहण करेंगे उतना, लाभ हमें ही होगा प्राप्त।
आत्म स्वार्थ परमार्थ बताया, होते सारे स्वार्थ समाप्त॥

गुणानुवाद

धन्य भाग्य ! गुरुदेव पधारे, धर्म द्विविध जो समझाया।
समकित मूल धर्म का होता, आज समझने में आया॥
सड़सठ भेद सुने समकित के, छूट गया मिथ्यात्व सकल।
गुणस्थान पहले से ही हम, पाये अब तक नहीं निकल॥

समकित बिना सभी व्रत होते, ज्यों विधवा स्त्री का शृंगार।
समकित युत व्रत सधवा स्त्री के शृंगारों सम समझा सार ॥
गुरु के बिना ज्ञान कब होता, बिना सूर्य के यथा प्रकाश।
भाग्य बिना श्री सतगुरु पर भी, क्या हो सकता है विश्वास ?

ऐसे त्यागी सन्त[1] कहीं पर, अपने को तो मिले नहीं।
मिले नहीं जब नयन परस्पर, कह सकते हम खिले नहीं ॥
धन्य ! हमारी किस्मत जिसने, ऐसा मेल मिलाया है।
धर्मी बन कर जीने का यह, सरल उपाय सुझाया है ॥
संवर करो, करो सामायिक, करो सफल नर की काया।
काया माया बादल—छाया, श्री सद्गुरु ने समझाया ॥
गाये जायें गीत सुगुरु के, गुरु ने हमें जगाया है।
गहरी गफलत में थे हम तो, कंधा पकड़ हिलाया है ॥
गुरु के बिना नहीं गति होती, ठीक समझ में आया है।
इसीलिये तो देख-भाल कर, हमने सुगुरु बनाया है ॥

राजा जी के साथ पांचसौ, श्रावक सचिव बने सच्चे।
समकितधारी पर उपकारी, शुद्धाचारी सब अच्छे ॥

---

१. गांठी दाम न बांधई, नहीं नारी से नेह।
कहे 'कबीर' ता साधु की, हम चरणन की खेह ॥

सुलभबोधि लोग

श्री थावर्चा-सुत मुनि के यों, भाषण मंगलकारी थे।
बने भक्त अनुरक्त वहां के, और बहुत नर-नारी थे॥
जब भी भाषण होता तब वे, सुनने को सारे आते।
मंगलपाठ प्रथम सुन लेते, पीछे पीते या खाते॥
गुरु-दर्शन गुरु-सेवा पहले, पीछे करते घर का काम।
धर्म ध्यान में कदम बढाते, लेते श्री जिनवर का नाम॥

श्रद्धा का चमत्कार

सच्चे गुरुदेवों पर जो नर, सच्ची श्रद्धा लाते हैं।
होते चकित स्वयं भी लखकर, ऐसा भाग्य जगाते हैं॥
लोक और परलोक साथ में, बन जाता मंगलकारी।
भव भयहारी श्री सतगुरु की, दर्शन सेवा है प्यारी॥
श्रद्धा किये बिना मानव यह, कभी नहीं कुछ पाता है।
संशयशील नाश हो जाता, गोता खाता जाता है॥
सच्चा ज्ञान मिले तो उस पर, श्रद्धा क्यों फिर कच्ची हो।
कांचन-मणि संयोग यही है, करणी फिर सब सच्ची हो॥
आज नहीं तो कल या परसों, बेड़ा हो जायेगा पार।
एक तरह से हुआ हुआ ही, समझा जाता है उद्धार॥

ऐसे ही दृढ धर्म-पुजारी, 'सेलकपुर' के वासी थे।
श्रावक सुलभबोधि बन करके, तरने के अभिलाषी थे॥

ठहरने की विनति

'थावर्चा मुनि' ठहर वहां कुछ, जाने की ठहराते हैं।
हाथ जोड़कर भक्त सभी वे, तभी सामने आते हैं॥
शीश झुकाकर बोले सारे, नहीं अभी है जाना जी!
और कई दिन यहां आपको, है हमने ठहराना जी!
शिक्षा भरे रसीले भाषण, हमको और सुनाना जी!
आप दयालु बड़े कहलाते, दिल न कठोर बनाना जी!
भूल हमारी जो भी हो वह, आप माफ़ फ़रमाना जी!
नहीं जानते विधियां सारी, विनति नहीं ठुकराना जी!
धर्म-प्रेम यह सत्य हमारा, मन में सदा बसाना जी!
हमें लाभ देकर के पूरा, आगे क़दम बढाना जी!
पता नहीं फिर लौट यहां पर, होगा कब तक आना जी!
जिनवाणी के हैं हम प्यासे, अमृत और पिलाना जी!

अभी और भी गफ़लत में हैं, उनके भाग्य जगाना जी!
नगर निवासी सभी चाहते, उत्तम लाभ उठाना जी!

श्रावकों का सम्मान

भरा प्रेम से, भरा धर्म से, आग्रह क्यों टाला जाये।
साधु-श्रावकों का है जोड़ा, प्रेम पूर्ण पाला जाये॥
पंच महाव्रत पलने में क्या, ये श्रावक आधार नहीं ?
जिन-शासन में साधु सिवा क्या, इनका कुछ अधिकार नहीं ?
श्रावक एक तीर्थ होते हैं, भूल नहीं जाते ये सन्त।
इसीलिये श्री जैन-संघ का, स्थान महत्त्वपूर्ण अत्यन्त॥
भाग धर्म के दो होते हैं, एक भाग है इनके पास।
हुआ श्रावकों की सेवा से, श्रमण-संघ का बड़ा विकास॥
विनति मानकर ठहरे मुनिवर, भाषण और सुनाये हैं।
अनगिनती ही दया धर्म में, उनने लोग लगाये हैं॥

विहार और दर्शन

आख़िर अवसर देख उन्होंने, आसन जमे उठाये हैं।
आगे और जगाने जग को, अपने क़दम बढाये हैं॥
राजा और नगर के वासी, दौड़े-दौड़े आये हैं।
करते देख विहार सुगुरु को, मन में विस्मय पाये हैं॥
जाने के ये भाव आपने, हमको नहीं बताये हैं।
बिना सूचना दिये किसी को, शिष्यों सहित सिधाये हैं॥

ऐसे तो निर्मोही मुनिवर, पहले नहीं लखाये हैं।
मान-बड़ाई से पग पीछे, अपने अहो! हटाये हैं॥
मंगलपाठ श्रवण को सारे, लोग सुबह जब आये हैं।
इसी बहाने मंगलकारी, दर्शन जाते पाये हैं॥
जुड़ी भीड़ थी फिर भी इतनी, जिसका कोई पार नहीं।
पता जिसे भी लगा, रहा फिर, कोई भी नर-नार नहीं॥

काफ़ी दूर सुगुरु के पीछे, कर जब जोड़े जाते हैं।
रुक कर एक जगह वे सब को, मंगलपाठ सुनाते हैं॥

दुबारा आना

सुनकर मंगलपाठ सभी वे, अपने भाव बताते हैं।
फिर भी आना गुरुवर! जल्दी, जल्दी जैसे जाते हैं॥
ज्ञान भरे जो दिये आपने, भाषण नहीं भुलायेंगे।
याद आपके मंगलकारी, वचन हमेशा आयेंगे॥
'संवर' या 'सामायक' जो कुछ, हम से बने-बनायेंगे।
नहीं अकारण नाग़ा उसमें, हरगिज भी हम पायेंगे॥
प्राणि मात्र की अनुकम्पा के, गीत हमेशा गायेंगे।
नशे-पते के झूठ-कपट के, निकट नहीं हम जायेंगे॥

सत्य, शील, सन्तोष, क्षमा से, जीवन को चमकायेंगे।
सुर-दुर्लभ नर भव को 'चन्दन', अब तो सफल बनायेंगे॥

अपने भाव निवेदन करके, वापस घर को आते हैं।
जाते-जाते रास्ते में वे, महिमा मुख से गाते हैं॥

सन्तों का प्रभाव

ऐसे सन्त नगर में अपने, विरले ही तो आते हैं।
इतने शान्त सरल फिर इतने, गंगा ज्ञान बहाते हैं॥
लोग उन्हें ठहराते हैं पर, ड़ेरा नहीं जमाते हैं।
बहता नीर हमेशा निर्मल, मुख से यही सुनाते हैं॥
होता अगर बनाना डेरा, अपना ही घर तजते क्यों।
जगह-जगह पर घूम-घूम कर, अरिहन्ताणं भजते क्यों॥
डेरा एक मोह का घेरा, चक्कर है चौरासी का।
छप्पर छोड़ बनाना बंगला, काम नहीं संन्यासी का॥
सच्चा सन्त कभी क्या फंसता, मोह मान के चक्कर में।
फ़र्क़ यही तो बहुत बड़ा है, गेही में इक फक्कड़ में॥
वास्ता नहीं जिन्हें बिलकुल भी, कभी कामिनी कंचन से।
इसीलिये आकर्षित होती, दुनिया उनके जीवन से॥

इस दुनिया में माया का वह, ज़बरदस्त इक फन्दा है।
जिससे बचने वाला कोई, विरला साधक बन्दा है॥
बनकर साधक इसके पीछे, बहुत भागते देखे हैं।
जग-तरने को त्याग किया था, त्याग त्यागते देखे हैं॥

बिरले वीर-बहादुर ही तो, पूरा त्याग निभाते हैं।
हीरा हो या हो फिर कौड़ी, दोनों नहीं उठाते हैं॥
नहीं वेश को, इसी त्याग को, देखो दुनिया झुकती है।
त्याग नहीं हो जहां, वहाँ फिर, झुकने से झट रुकती है॥
स्थूल-सूक्ष्म मति वाले सारे, साधु उसे ही कहते हैं।
जोरू से, जर से, घर से जो, दूर हमेशा रहते हैं॥
आयें चाहे कभी देवियां, इनके दर्शन पाने को।
शब्द 'बहन जो' का ही मुख से, कहते उन्हें बुलाने को॥
किसी बड़ी को 'माता जी' भी, कहते देखे जाते हैं।
और कभी भी किसी शब्द से, बिलकुल नहीं बुलाते हैं॥

जहां रहेंगे वहां रात को, नहीं नारियां आयेंगी।
दिन में भी फिर उचित समय पर, मिलकर दर्शन पायेंगी॥
नव-नव बाड़े ब्रह्मचर्य की, इनने ही बतलाई हैं।
और किसी ने ऐसी बातें, बिलकुल नहीं सुनाई हैं॥

वाणी में है अमृत इनके, होते देखो गर्म नहीं।
सोते-जगते चलते-फिरते, कभी भूलते धर्म नहीं॥
धूप कड़ाके की हो चाहे, छतरी नहीं लगाते हैं।
रहना शान्त परीषह सहना, गहना यह बतलाते हैं॥

खाना-पीना नहीं रात को, कितनी उग्र तपस्या है।
सरलतया हल होने वाली, यह तो नहीं समस्या है॥
त्याग बिना वैराग न टिकता, कहते सभी सयाने लोग।
नियमों पर उपनियमों पर भी, बड़ा कठिन रखना उपयोग॥
सच तो है ये सच्चा त्यागी, बनना नहीं सुखाला है।
बनकर त्यागी त्याग निभाता, अच्छी किस्मत वाला है॥
साधक वही साधना जिसकी, सचमुच में ही सच्ची है।
बाने से ही साधु बने यह, बात सर्वथा कच्ची है॥
सच्चा सन्त तरेगा खुद भी, और जगत को तारेगा।
वरना बीच-बचाला बनकर, जन्म अमोलक हारेगा॥
बना नहीं जाये यदि त्यागी, अपना घर त्यागे ही क्यों?
रचना-पचना जर-जोरू में, तो जग से भागे ही क्यों?

साधु बने तो बने पूर्णतः या फिर पूरा गेही हो।
पूर्वाचरित सुकृत से पाई, सफल मनुज की देही हो॥

श्री थावर्चा-सुत सम मुनिवर, बन जाने में सार सभी।
वरना तो यह किया कराया, हो जाये बेकार सभी ॥
देख तपस्या इनकी ऊंची, श्रद्धा पैदा होती है।
पूज्यनीय जीवन कहलाता, 'चन्दन' हीरा-मोती है ॥

मुखवस्त्रिका के संकेत

मुख पर की मुखपत्ति मनोहर, कैसी अजब सुहाती है।
(१)जैन निशानी (२) जीव दया का, प्यारा पाठ पढाती है ॥
करती है संकेत कभी भी, (३)बोलो मुख से झूठ नहीं।
(४) निंदा (५) चुगली द्वारा देखो, डाली जाये फूट नहीं ॥
(६) खाना नहीं अभक्ष्य कभी भी, (७) दी जाये क्यों गाली भी।
(८) नहीं किसी को कहनी वाणी, मर्म बताने वाली भी ॥
(९) उदर न भरिये ठांस-ठांस कर, ये सन्तोष सिखाती है।
बंधी हुई मुख पर मुखपत्ती, मुख की शान बचाती है ॥
ऊंची-नीची वाणी से जो, बात रहा हो कोई कर।
(१०) नहीं थूक के छींटें पड़ते, सम्मुख बैठे मानव पर ॥

११ हित १२ मित १३ मधुर वचन ही कहना, सबक शुद्ध सिखलाती है।
१४ शास्त्रों पर भी थूक न उछले, पढते समय बचाती है ॥

मुखपत्ती से ये शिक्षाएं, साधु नहीं जो पायेगा।
मुखपत्ती का कपड़ा- डोरा, क्या न व्यर्थ कहलायेगा ?
केवल नहीं निशानी है यह, भव्य गुणों से भरी हुई।
क्या लेगा ? क्या पालेगा व्रत, आत्मा है यदि मरी हुई ॥

विवेक भरा जीवन

वेश दूध-सा उज्ज्वल उनका, कितना मनको भाता था।
मन को उजला करने का वह, मानो कहता जाता था ॥
जितने भी मुखपत्ती वाले, नहीं पहनते जूते को।
कहते हैं—क्या साधु लोग भी, कहीं पहनते जूते को ?
देह-प्रमाण देखकर आगे, कदम टिकाते जाते हैं।
धीर वीर गम्भीर चाल से, चलते चित्त लुभाते हैं ॥
गर्मी में पग तपते हैं तो, सर्दी में फिर ठरते हैं।
बने मुक्ति के जो दीवाने, कहां फिक्र ये करते हैं ॥
भरी हुई है करुणा इनके, कोमल मन के कण-कण में।
लापरवाही कहते जिसको, नहीं जरा भी जीवन में ॥

कौन दयालु यहां पर होगा, इतना अहो ! ज़माने में।
परम विवेक लखा बस इनमें, हमने आने-जाने में ॥

छोटे-छोटे जीवों को भी, होता जीवन प्यारा है।
पहने जायें जूते कैसे, दया-धर्म जब धारा है॥
सफ़र रात में कभी न करते, देख दिवस में चलते हैं।
इसीलिये तो नियम दया के, इनसे पूरे पलते हैं॥
दुनियादारों से पर ऐसा, त्याग कहां हो सकता है।
जहां पूर्ण वैराग्य भाव हो, त्याग वहां हो सकता है॥
इतनी त्याग, तपस्या की ये, मुनियों की ही बातें हैं।
इतनी त्याग, तपस्या की ये, गुणियों की ही बातें हैं॥
इसीलिये तो सत्य-पुजारी, इनको शीश झुकाते हैं।
अपना सोया भाग्य जगाते, जीवन सफल बनाते हैं॥

ऐसे बात-चीत वे करते, पहुंच नगर में जाते हैं।
रह-रह करके याद सभी को, श्री सतगुरु जी आते हैं॥
सच्चा प्रेम इसी को कहते, भूले नहीं भुलाने से।
बेड़ा पार लगाने वाला, 'चन्दन' श्रमण जमाने से॥

लोक कल्याण

गांव-गांव में नगर-नगर में, मुनियों का होता उपदेश।
भूले-भटके मानवगण को, मिलती इससे शान्ति विशेष॥

जहां-जहां भी क़दम टिकाते, लोग झूम बस जाते है
पाकर दर्शन, प्रवचन सुनकर, फूले नहीं समाते है

कोई बारह व्रत ले लेता, कोई हिंसा तजता है
कोई आस्तिक बन करके फिर, प्रातः प्रभु को भजता है
तजा अभक्ष्य किसी ने खाना, अनछाना जल त्यागा है
सदाचार अपनाता कोई, दुराचार से भागा है
कमती ज्यादा तजा तोलना, मर्म खोलना छोड़ा है
और किसी ने करके साहस, झूठ बोलना छोड़ा है
नहीं करूंगा चोरी चुग़ली, जूआ नहीं रचाऊंग
कहा किसी ने सुरा-पान के, निकट नहीं मैं जाऊंगा
कहा किसी ने श्री सतगुरु से, नहीं निशा में खाऊंगा
एक वर्ष में षट्मासी तप, अपने आप बनाऊंगा
कहा किसी ने ब्रह्मचर्यव्रत, हम पति-पत्नी पालेंगे
बच्चे हैं जब, जान विपद में, और अधिक क्यों डालेंगे
कहा किसी ने—सप्त व्यसन के, नहीं पास में जाना है
सीधे रास्ते आना-जाना, धर्म-मर्म पहचाना है

कहा किसी ने—वीतराग के, गीत प्रीत से गाऊंगा
बड़े भाग्य से मिला अमोला, चोला सफल बनाऊंगा

कहा किसी ने-हे भगवन ! मैं, गाली नहीं निकालूंगा।
गाली देने वाले को भी, अपना मित्र बनालूंगा ॥
कहा किसी ने-हे गुरुवर ! मैं, नहीं करूंगा कभी बनाव।
हाव-भाव विभ्रम हैं मन-भ्रम, उत्तम होता सरल स्वभाव ॥

लाभ ही लाभ

है प्रत्यक्ष परोक्ष रीति से, मुनि-जीवन से लाभ महान।
वर्षा से, सरिता के जल से, फल-फूलों से क्या नुकसान ?
सदा लाभ ही लाभ समझिये, अगर उठाने वाला हो।
बिना उठाये पिया न जाता, रखा सामने प्याला हो ॥
करने-करवाने वाले भी, 'अत्तट्ठाए' करते हैं।
लिखकर नाम ठाम संख्याएं, नहीं रजिस्टर भरते हैं ॥
नहीं नाम से काम, काम है- करना केवल धर्म-प्रचार।
'चन्दन' मुनिजन करते आये, जन जीवन का जीर्णोद्धार ॥

'सोगंधिया' और 'सुदर्शन'

'सोगंधिया' नाम की नगरी, 'नीलाशोक' वहां उद्यान।
नगर सेठ है वहां 'सुदर्शन,' ऋद्धिमान गुणवान महान ॥

सुनिये एक परिव्राजक 'शुक,' वेदों के विद्वान महान।
एक हज़ार परिव्राजक हैं, विनयी शिष्य बड़े गुणवान॥
सांख्य तन्त्र का पालन करते, सांख्यतन्त्र का सदा प्रचार।
है अधिकार सभी को अपने, फैलाये आचार-विचार॥

शौच धर्म का मूल बताते, 'सोगंधिया' सिधारे हैं।
ठहरे अपने ही आश्रम में, लोक आरहे सारे हैं॥
'सेठ सुदर्शन' भी आया है, सुनने को व्याख्यान भला।
नहीं सभी में पाई जाती, 'चन्दन मुनि' व्याख्यान-कला॥
द्रव्य शौच है, भाव शौच है, शौच-धर्म भी द्विविध सुनो।
सांख्य धर्म के द्वारा विधियां, हो जाती फिर विविध सुनो॥
लेप लगा करके माटी का, जल से फिर धोया जाये।
शुचि हो जाती अशुचि वस्तुएं, द्रव्य-शौच यह कहलाये॥
भाव-शौच हो जाया करता, दर्भ तथा मन्त्रों द्वारा।
स्वर्ग-प्राप्ति का मार्ग सरलतम, समझाया 'शुक' ने सारा॥
सुना सभी ने नगरसेठ ने, शौच धर्म अपनाया है।
धर्म वही स्वीकृत करता नर, जो अपने मन भाया है॥

'सोगंधिका पुरी' से चलकर, चले गये 'शुक' और कहीं।
आते-जाते रहते हैं पर, रहते ये इक ठौर नहीं॥

सेठ आगया अपने घर पर, अपना धर्म निभाता है।
'चन्दन मुनि' अब सुनो सेठ का, जीवन पलटा खाता है ॥

"सोगंधिया" में "थावर्चापुत्र"

श्री थावर्चा-सुत मुनि आये, 'सोगन्धियापुरी' में अब।
सन्त घूमते-फिरते रहते, एक स्थान पर रहते कब ॥
परिषद आई प्रवचन सुनने, आया 'सेठ सुदर्शन' भी।
आकर्षित करने का होता, संतों में आकर्षन भी ॥
प्रवचन हुआ, सुना लोगों ने, चले गये सब अपने स्थान।
ज्ञान-दान देता दुनिया को, प्रायः सार्वजनिक व्याख्यान ॥

"सुदर्शन" के प्रश्न

'सेठ सुदर्शन' वन्दन करके, लगा पूछने मुनिवर से।
ज्ञान-वृद्धि करिये 'चन्दन मुनि', धर्ममयी प्रश्नोत्तर से ॥
'क्या मूलक है धर्म आपका ?' प्रश्न सेठ का सुन करके।
उत्तर सरल दिया करते मुनि, सरल शब्द ही चुन करके ॥
'विनय मूल है धर्म हमारा, उसके फिर होते दो भेद।
प्रथम भेद–'आगार विनय' है, धर्म नहीं होता विच्छेद ॥

अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत से, पांच, तीन फिर चार प्रकार।
ग्यारह पडिमाएं श्रावक की, प्रथम भेद का यह विस्तार॥

इसी धर्म का भेद दूसरा, है 'अणगार विनय' भारी।
तीन करण से तीन योग से, पंच महाव्रत सुखकारी॥
दश विधि प्रत्याख्यान, साधु की- पडिमाएं बारह होती।
धर्म प्रक्रिया द्वारा आत्मा, पूर्णतया पाता ज्योती॥
आठों कर्म ग्रन्थियों का ही, हो जाता इससे उच्छेद।
धर्म हमारा 'विनय मूल' है, ये दोनों हैं उसके भेद॥

मुनि का प्रश्न

मुनि ने पूछा—सेठ! तुम्हारा, धर्म कौनसा है बोलो।
उत्तर में यदि संशय हो तो, वह मेरे सम्मुख खोलो॥

बोला 'सेठ सुदर्शन'—मेरा, 'शौच मूल' कहलाता धर्म।
शौच-धर्म से स्वर्ग प्राप्ति है, और उसी से जलते कर्म॥
करने से अभिषेक अम्बु का, जल जाते हैं पाप सभी।
उसके आगे निर्बल हैं ये, दान, शील, तप, जाप सभी॥

भरा रुधिर से वस्त्र रुधिर से धोने से क्या होता साफ।
जल से कैसे धुल जायेंगे, किये हुए जो भी हों पाप ॥
जल से देह शुद्धि होती है, पाप-शुद्धि कैसे होगी।
नये रोग से रोग पुराना, नहीं मिटा सकता रोगी ॥
पाप लगा करता है अन्दर, बाहर उसका दाग नहीं।
अन्दर नहीं शुद्ध बन सकता, जब तक होता त्याग नहीं ॥
मैल धुला करता सोने का, ताप आग का लगने से।
मैल धुला करता आत्मा का, सोया अन्तर जगने से ॥
दधि से मक्खन निकला करता, अच्छी तरह बिलोने से।
मन्थन-चिन्तन बिना शुद्धि कब, होती जल से धोने से ॥
त्याग-तपस्या एक आग है, आत्मा एक सुवर्ण समान।
कर्म रूप मिट्टी का मल है, इससे आप करो अनुमान ॥
शील,सत्य से, सदाचार से, आत्मा हो सकती है शुद्ध।
आत्म शुद्धि यदि जल से हो तो, कौन करेगा मन से युद्ध ?

जल में रहने वाले सारे, जीव मुक्त हो जायेंगे।
दुनिया वाले प्राणी प्यारे, क्या प्यारे ! पछतायेंगे ?

धर्म पर आस्था

युक्ति युक्त वाणी सुन करके, 'सेठ सुदर्शन' पाया हर्ष।
ऊंचा, उत्तम, मोक्ष प्राप्ति का, जंचा उसे यह जैनादर्श॥
शौच मूल की छोड़ धारणा, विनय मूल को धार लिया।
प्रथम भेद 'आगार विनय' का, पूर्णतया स्वीकार किया॥
विनय मूल है धर्म आज से, गुरु निर्ग्रन्थ, देव अरिहन्त।
'सेठ सुदर्शन' ने अपनाया, सच्चा सम्यग्-दर्शन-पन्थ॥
क्या मिथ्यात्व टिका रहता है, पा जाने पर ज्ञान-प्रकाश।
संशय नहीं रहा करता है, आजाता है जब विश्वास॥

जीवन की उन्नति

हाथ जोड़ कर शीश झुकाकर, अपने घर को आता है।
बड़ी सावधानी से अपना, सच्चा धर्म निभाता है॥
नव तत्त्वों को, प्रतिक्रमण को, षट्विंशति फिर द्वारों को।
नित्य निकट आकर गुरुवर के, सीखा बोल-विचारों को॥
क्या बतलाएं अब हम कितना, सेठ बुद्धि का तीखा था।
बोल सतासठ समकित के भी, बहुत शीघ्र ही सीखा था॥
गुरु कृपया वह इसी तरह से, ज्ञान बढ़ाता जाता है।
दृढ़धर्मी प्रियधर्मी श्रावक, बन करके दिखलाता है॥

मंगलपाठ श्रवण वह करता, दर्शन प्रातः पाता था।
दर्शन करने से पहले वह, नहीं कभी कुछ खाता था॥
मनोयोग से सुनता प्रवचन, दान सुपात्र दिया करता।
घर पर, बाहर अनछाना जल, आप कभी न पिया करता॥

निशि में खाना कभी न खाना, जाना चाहे क्यों न कहीं।
खाते समय न कहता इसमें, मिर्च नहीं है, नोन नहीं॥
सन्तों का, श्री अरिहन्तों का, लेता सोते समय शरण।
कर्मावरण हटाने को वह, करता रहता सदाचरण॥
धर्म आभरण है जीवन का, उदर भरण का अर्थ नहीं।
उदर भरण करने वाला नर, तारण-तरण समर्थ नहीं॥
करण-योग जितने डाले हों, उतना ही होता है त्याग।
पूर्ण त्याग का मतलब होता, नहीं किसी का इसमें [illegible]॥

संवाद मिला

'शुक' परिव्राजक ने ये सारे, समाचार पाये विश्वस्त।
'सेठ सुदर्शन' शौच-धर्म का, रहा नहीं है अब अभ्यस्त॥
शौच-धर्म की छोड़ धारणा, इसने [illegible] [illegible] अपनाया।
जाकर दृष्टि सुधारूं उसकी, [illegible] [illegible] [illegible]

सोगंधिका पुरी में आये, साथ शिष्य हैं एक हज़ार।
शिष्य-प्रशिष्यों से बढता है, धर्माचार्यों का परिवार॥
आश्रम में उपकरण रखे सब, आये 'नगर सेठ' के घर।
'नगर सेठ' ने दिया न आदर, आसन से उठकर झुक कर॥

क्या कारण ?

'नगर सेठ' को मौन देखकर, बोले 'श्री शुक' संन्यासी।
ऊंचे संन्यासी होते हैं, भावों के भी अभ्यासी॥
पहले जब हम आते तब तू, करता कितना आदर-मान।
आज नहीं तू बोल रहा है, कैसे बदला तेरा ध्यान॥
शौच-धर्म को कैसे त्यागा ? विनय मूल क्यों अपनाया ?
बतलावो सब बात खोलकर, इसीलिये मैं हूं आया॥

सेठ का उत्तर

सुनकर उठा सेठ आसन से, हाथ जोड़ करके बोला।
खोला मौन, भेद भी खोला, नहीं धारणा से डोला॥
'श्री थावर्चापुत्र' नाम के, आये हुए यहां अणगार।
अन्तेवासी 'नेमिनाथ' के, शिष्य साथ में एक हज़ार॥

'नीलाशोक' नाम के वन में, सन्त विराज रहे सारे।
धर्माचार्य वही हैं मेरे, व्रत मैंने उन से धारे॥
नहीं छुपाना नाम सुगुरु का, और छुपाना धर्म नहीं।
नाम बताते क्यों शरमाते, यह तो कुत्सित कर्म नहीं॥
पाप छुपाया जा सकता है, नहीं छुपाया जाता बाप।
मां जो नाम बताया करती, वही बताती दुनिया आप॥

चलो चलें

सुनकर 'शुक' संन्यासी बोले, चलें अपन अब उनके पास।
देखें धर्माचार्य तुम्हारे, कितना रखते हैं अभ्यास॥
यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर, पायेंगे हम सही-सही।
वन्दन-नमन करूंगा मैं भी, शर्त साथ में किन्तु रही॥
अगर नहीं दे पाये उत्तर, शौच-धर्म तू लेना मान।
क्योंकि तुझे तो तेरे गुरु से, कभी न बढ़कर होगा ज्ञान॥

सुनकर 'सेठ सुदर्शन' बोला, चलो अभी हम चलते हैं।
सच्चे त्यागी पुरुष जगत को, नहीं वेश से छलते हैं॥

'शुक' संन्यासी 'सेठ सुदर्शन,' शिष्य साथ में एक हजार।
'नीलाशोक' नाम के वन में, आये करने धर्म प्रचार॥
श्री थावर्चापुत्र श्रमण के, सम्मुख 'शुक' ने प्रश्न रखा।
प्रश्नोत्तर के बिना पुरुष यह, भेद धर्म का प' न सका॥

प्रश्न पहला

'यात्रा आप मानते हैं क्या ? प्रथम प्रश्न का दो उत्तर।'
'जैन-धर्म में मानी यात्रा, स्पष्ट रूप बोले मुनिवर॥'

'अगर आपके यात्रा है तो, उसका बतला दो जी ! नाम।
जहां स्पष्ट चर्चा होती हो, वहां नहीं शंका का काम॥
तप संयम ही यात्रा, यात्रा, सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र।
इस यात्रा के द्वारा यात्री, करता जीवन धन्य-पवित्र॥
किसी नदी पर्वत पर जाना, नहीं मानते हम यात्रा।
यात्रा में हम देखा करते, आत्म नियन्त्रण की मात्रा॥

प्रश्न दूसरा

'यज्ञ कौनसा आप मानते ?' 'इन्द्रिय नो इन्द्रिय है यज्ञ।
प्रथम भेद में पंचेन्द्रिय का, दमन बताते श्री सर्वज्ञ॥

विस्मित होकर लगे सोचने, नहीं जोश में आये हैं।
परम सुयोग्य किसी गुरुवर ने, पक्के शिष्य बनाये हैं॥

मन्त्र दिया है इन्हें शान्ति का, धीरज समता रखने का।
चर्चावादी नाम न लेते, चर्चाओं में थकने का॥
बहुत सन्त ऐसे भी होते, जो लड़ने को आते हैं।
उत्तर उचित नहीं दे पाते, लोचन लाल दिखाते हैं॥
कच्चे गुरु के कच्चे चेले, क्या उत्तर दे पायेंगे।
प्रश्न पूर्व में जाता होगा, वे उत्तर ले जायेंगे॥
समाधान करना प्रश्नों का, सरल नहीं होता 'चन्दन'।
क्योंकि प्रश्न करने वाला तो, नहीं मानता है बन्धन॥

शास्त्र, समाज, समय भी देखो, देखो व्यक्ति, भावना, स्थान।
समाधान करने वाले को, इन बातों पर देना ध्यान॥

प्रश्न पांचवां

प्रश्न पांचवां किया जा रहा, सरिसवया[1] क्या भक्ष्य? अभक्ष्य?
प्रतिवादी को उलझाने का, कभी बनाया जाता लक्ष्य॥

---

१. सरसों के दाने, अथवा सदृश वयस—मित्र।

रिसवया को द्विविध बताया. मित्र-धान्य भी सरिसवया।
प्रथम भेद भी तीन भेद से, कहता हूं जो कहा गया॥

न्मा साथ, साथ में खेला, बड़ा साथ में सरिसवया।
रिसवया का प्रथम भेद यह, नहीं भक्ष्य है कहा गया॥
रिसवया जो धान्य बताया, होता द्विविध सचित्त-अचित्त।
मुक्षुओं का भक्ष्य न होता, जब तक रहती वस्तु सचित्त॥
भेद अचित्त दूसरा भी तो, कभी भक्ष्य है कभी अभक्ष्य।
ही अभक्ष्य बताया है जो, बना साधु का लेकर लक्ष्य॥
भक्ष्य वही होता है मुनि को, स्वाभाविक जो बना अचित्त।
वस्तु अचित अयाचित-याचित, भेद बताता हर्षित चित्त॥
मुनि के लिये अभक्ष्य अयाचित, याचित एषणीय है भक्ष्य।
सदा अभक्ष्य अनेषणीय है, सुनिये उत्तर देकर लक्ष्य॥
षणीय भी प्राप्त भोज्य है, भोज्य नहीं होता अप्राप्त।
सरिसवया का प्रश्न आपका, किया जा रहा यहां समाप्त॥

प्रश्न छठा

प्रश्न छठा रखते हैं ऐसा, क्या है भक्ष्य, अभक्ष्य कुलत्थ ?
भक्ष्याभक्ष्य कुलत्थ मानते, उत्तर ऐसा दिया पसत्थ॥

भेद कुलत्थी के दो होते, नारी, धान्य कुलत्थ भले।
प्रथम भेद के तीन भेद हैं, समझो तब तो काम चले॥
कुलवधु, कुल माता, कुल बेटी, तीनों माने गये अभक्ष्य।
धान्य कुलत्थ यथा सर्षप का, भेद बताया जैसे भक्ष्य॥

प्रश्न सातवां

प्रश्न सातवां किया मास का, क्या यह भक्ष्य अभक्ष्य कहो।
अभी सभी समझा देता हूं, मुनि जी बोले—शान्त रहो॥
भेद मास के तीन किये हैं, काल, अर्थ फिर धान्य भला।
यहां महीने बारह होते, काल मास का फल निकला॥
अर्थ मास का अर्थ बताया, सोना - चांदी - मासा धन।
दोनों ही ये भक्ष्य नहीं हैं, अर्थ सरल है नहीं गहन॥
धान्य मास जो भेद तीसरा, उड़द जिसे हम कहते हैं।
यहीं निपजता खपता देखो, जहां सदा हम रहते हैं॥
सरिसवया के तुल्य इसे भी, भक्ष्याभक्ष्य बताया है।
प्रश्न आपका टेढा-बांका, मैंने सरल बनाया है॥

प्रश्न आठवां

'आप एक हैं ? अथवा दो हैं ? अथवा हैं फिर आप अनेक।
अक्षय अव्यय और अवस्थित, क्या हैं आप कहो सविवेक ?'

जीव द्रव्य है एक जगत में, इसीलिये मैं भी हूं एक।
ज्ञान और दर्शन से दो हूं, स्पष्टतया करदूं उल्लेख ॥
आत्म प्रदेश असंख्य बताये, इसीलिये मैं आप अनेक।
अवन्धय नहीं प्रदेशों का है, अक्षय अव्यय मैं सविवेक ॥
घटते नहीं नहीं बढ़ते हैं, नित्य अवस्थित आत्म-प्रदेश।
हानि-वृद्धि का प्रश्न न उठता, इसीलिए यह शान्ति विशेष ॥
भूत-भाव-भवि मैं कहलाता, विविध विषय पर जब उपयोग।
चर्चा का यह विषय गहन है, क्या समझे साधारण लोग ॥
इससे अनेकान्त-दर्शन का, विषय होगया सारा स्पष्ट।
'शुक' परिव्राजक के संशय भी, हुए उत्तरों द्वारा नष्ट ॥

जीत हार का प्रश्न नहीं हो, वहां व्यक्ति होता संतुष्ट।
असंतुष्ट नर चर्चा द्वारा, और अधिक हो जाता रुष्ट ॥

'शुक' और जिज्ञासा

'श्री थावर्चा-सुत' मुनिवर को, 'श्री शुक जी' करते वन्दन।
निर्णय अगर निकलता हो तो, चर्चाओं का अभिनन्दन ॥
लगे प्रशंसा करने मुनि की, आप विचक्षण ज्ञानी सन्त।
उत्तर देने की प्रतिभा भी, बड़ी विलक्षण है अत ॥

द्व्यर्थी प्रश्न किये थे मैंने, जैसे-तैसे उलझाने।
सुलझा दिये आपने लेकिन, अलग-अलग ताने वाने॥
उलटे-सीधे प्रश्नों पर भी, नहीं आपने रोष किया।
और प्रश्न करने वाले को, नहीं आपने दोष दिया॥
युक्ति सहित होने से उत्तर, बुद्धिगम्य होते तत्काल।
नहीं बिछाया कहीं आपने, जटिल-कुटिल तर्कों का जाल॥

हे भगवन् ! मैं चाह रहा हूँ, सुनूं केवली-भाषित धर्म।
गुरु के बिना कौन समझाये, 'चन्दन' हमें धर्म का मर्म॥

वचनामृत का पान

'श्री थावर्चा-सुत' मुनिवर ने, बतलाया अब ज्ञान प्रधान।
सुधा-पान से बढकर होता, 'चन्दन' वचनामृत का पान॥
अमृत के प्याले पीने का, अवसर नहीं चूकते कान।
कान नहीं स्थिर होने से ही, अस्थिर हो जाता है ध्यान॥
ध्यान सही हो, ज्ञान सही हो, करो हर्ष का फिर अनुमान।
व्यक्ति भूल जाया करता है, धर्म स्थान में अपना भान॥
भौंरा क्या चीं-चीं करता है, पीने लगता जब मकरन्द ?
स्तन मुंह में आने से बालक, ज्यों रोना कर देता बन्द॥

नहीं चबाते समय किसी से, बोला जा सकता है बोल।
बोल-बोल देती है वापस, बोल नहीं पी सकती पोल॥

'शुक' संन्यासी गुरु-वचनामृत, पीने लगे मूंद कर नेत्र।
पहली वर्षा पी जाता है, तपा हुआ जो होता क्षेत्र॥
बड़ी शीतिमा अनुभव होती, श्री जिनवर की वाणी से।
भव्य प्राणियों से यह पूछो, मत पूछो अन्नाणी से॥

परिवर्तन का निर्णय

सांख्य धारणा छोड़, धारणा- जैनधर्म की धारूंगा।
शिष्य बनूंगा, एक आपकी- आज्ञाएं स्वीकारूंगा॥
जो उत्तम लगता हो उसको, अपनाने में लाज नहीं।
उत्तम काम न करने दे वह, होता सभ्य समाज नहीं॥
जब से जागे तभी सबेरा, गई-गई को जाने दो।
अगर समझ में आया रास्ता, तो रास्ते पर आने दो॥
बहकाने से, फुसलाने से, परिवर्तन करना है पाप।
चिन्तन पूर्वक जो परिवर्त्तन, वह आता है अपने आप॥
अगर नहीं परिवर्त्तन हो तो, जीवन का निर्माण नहीं।
नास्तिक से आस्तिक बनने का, होगा यहां विधान नहीं ?

जो विचार ऊंचे हों उनको, अपनाने में दोष नहीं।
बिना भावना परिवर्त्तन से, आता भी सन्तोष नहीं॥

शिष्यों की सम्मति

बात एक 'शुक जी' ने सोची, शिष्यों के भी सुनूं विचार।
एक नहीं है, ये भी मेरे, शिष्य साथ में एक हज़ार॥
मेरे साथ रहेंगे या ये, छोड़ेंगे अब मेरा साथ।
पूछे बिना पता क्या चलता, क्या है किसके मन में बात॥
बोले—शिष्यो! क्या कहते हो, रहते हो क्या मेरे साथ?
मैंने मेरे लिये अभी से, ऐसी-ऐसी सोची बात॥

शिष्यों का स्वर

बोल उठे तब इकदम सारे, हे गुरुवर! क्या कहते हैं?
छोड़ सुगुरु को शिष्य कभी क्या, भगवन्! पीछे रहते हैं?
सारे साथ रहे हैं अब तक, आगे भी बस रहना है।
इसके सिवा किसी को भी तो, और नहीं कुछ कहना है॥
पन्थ चुना है सही आपने, जीवन को चमकाने का।
है संकल्प हमारा सबका, पूरा साथ निभाने का॥

ऐसा प्रेम निभाने वाला, तरनहार कहलाया है।
एक तरह से जग से अपना, बेड़ा पार लगाया है॥
त्याग और वैराग्य-भाव से, जो न यहां घबराया है।
सच्चा वीर उसी को गुणियों- मुनियों ने बतलाया है॥
वीर-बहादुर हो तुम सच्चे, सच्चा ही सुख पाओगे।
कर्म काटकर मुक्ति स्थान में, आसन अचल जमाओगे॥

एक हजार दीक्षा

रजोहरण भण्डोवगरण सब, तत्क्षण अब मंगवाये हैं।
श्वेत चद्दरें चोलपटक भी, आसन भी तो लाये हैं॥
चेले सहस बने वे 'शुक' के, चेले 'शुक' 'थावर्चा' के।
निकले सुखद नतीजे देखो, 'चन्दन' तात्त्विक चर्चा के॥

डोरा डाल लगाई सब ने, मुखड़े पर मुखपती थी।
देती शुभ सन्देश विजय का, दुखड़े पर मुखपत्ती थी॥
राज्य किया करता है जैसे, नभ में चांद सितारों पर।
मुखपत्ती भी चमक रही है, सुन्दर मुखड़ों प्यारों पर॥
दुग्ध धवल-सा बाना सारा, अपनी शान दिखाता था।
शान्त दान्त मुद्रा जो लखता, चरणों में झुक जाता था॥

जैनागम यह बोल रहा है, नहीं कहानी-क़िस्सा है।
रखा वही का वही यहां पर, जो आगम का हिस्सा है॥
बीच-बीच में परिवर्द्धन जो, शास्त्र समर्थित है सारा।
चिन्तन-मनन-विवेचन विस्तृत, 'चन्दन' को लगता प्यारा॥

नया इतिहास

सारे चौदह पूर्वों का फिर, 'शुक मुनि' ने अभ्यास किया।
जैनधर्म को फैलाने का, भरसक एक प्रयास किया॥
जहां-जहां भी जाकर अपना, पावन वर्षावास किया।
मिथ्यातम जो फैल रहा था, उसका जड़ से नाश किया॥
अपना और साथ में जनता- का भी परम विकास किया।
स्वर्णाक्षर में लिखने लायक, कार्य एक यह ख़ास किया॥
श्रमणों के सत्कर्त्तव्यों का, उनने था अहसास किया।
इसीलिये तैयार निराला, जीवन का इतिहास किया॥

ध्येय प्राप्ति

श्री थावर्चा-सुत मुनि अपना, अन्त निकट जब पाते हैं।
'पुण्डरीक[१] गिरि' के शिखरों पर, अनशन करने जाते हैं॥

---

१. श्री आदिनाथ भगवान के "पुण्डरीक" गणधर के मोक्ष जाने से पुण्डरीक गिरि अर्थात् शत्रुंजय का नाम हुआ।

शनैः-शनैः पर्वत पर चढकर, किया शिला का प्रतिलेखन।
संथारा पादोपगमन कर, स्थिर कर लेते काया-मन॥
संलेखना मास की पूरी, साठ भक्त का है अनशन।
केवलज्ञान तथा दर्शन पा, सिद्धि स्थान में किया गमन॥

और अनेकों मुनियों का भी, अन्त निकट तब आया था।
साथ उन्हीं के उन सब ने भी, काया को वुसराया था॥
धर्मध्यान में शुक्लध्यान में, पहुंच तभी वे जाते हैं।
बनकर केवलज्ञानी अपने, आठों कर्म खपाते हैं॥
और तभी वे सभी साधुजन, मोक्षपुरी को पाते हैं।
आवागमन मिटाकर अपना, अजर-अमर बन जाते हैं॥
एक सहस यों साधु मुक्ति में, उनके साथ पधारे थे।
संयम का आराधन करके, अपने कारज सारे थे॥

कारण का अत्यन्ताऽभाव

धान्य रूप जब चावल होता, जन्म तभी तक लेता है।
उगता नहीं बाद में देखो, छाल छोड़ जब देता है॥
बतलाया आत्मा को चावल, छिलका कर्म कहाया है।
तब तक ही है जन्म-मरण भी, जब तक कर्म बक़ाया है॥

एक बार जो छिलका उतरा, चढता क्या फिर दोबारा ?
मुक्त-रूप हो इसी तरह से, जन्म किसी ने कब धारा ?

जन्म अगर ले मुक्तरूप भी, उसके फिर वह बाद मरे।
दुनिया और मुक्ति में अन्तर, कोई फिर क्या ख़ाक अरे !
बने दूध से दही, दही से- देखो माखन बन जाता।
माखन से घृत बन करके ही, शुद्ध रूप से छन जाता ॥
मगर कभी घृत, दूध, दही या- क्या माखन बन पाया है ?
कहो किसी वैज्ञानिक ने यह, चमत्कार दिखलाया है ?

मुक्त होगया ऐसे ही जो, जन्म नहीं फिर पाता है।
अजर-अमर अविनश्वर आत्मा, 'चन्दन मुनि' कहलाता है ॥

सुनिये चुनिये

श्री थावर्चा-सुत मुनिवर ने, सहस शिष्य अलबेलों ने।
मुक्ति-पुरी को पाया आख़िर, श्री सतगुरु के चेलों ने ॥
बने साधु थे यही भाव ले, पूरे उनके भाव हुए।
किसी एक के भी तो देखो, नहीं अधूरे चाव हुए ॥
श्री थावर्चा-सुत मुनिवर का, जीवन यह आदर्श सुनो।
भरे हुए हैं इस में हीरे, 'चन्दन' सतत सहर्ष चुनो ॥

अध्याय का समापन

श्री थावर्चा-सुत श्रमण, बने कर्म से मुक्त।
पूर्ति तृतीयोध्याय की, हुई यहां उपयुक्त ॥

कर्म निर्जरा के लिये, करना धर्म - प्रचार।
'चन्दन' श्रमण न चाहता, यश पूजा - सत्कार ॥

कर्म-निर्जरा के लिये, लिया श्रमण का वेश।
कर्म-निर्जरा के लिये, देना है उपदेश ॥

इति तृतीयोऽध्याय:

४

अथ चतुर्थ अध्याय

मंगलाचरण

'श्री थावर्चापुत्र' के, प्रमुख शिष्य 'शुकराज'।
परम्परा गुरुदेव की, जीवित रखते आज ॥
'शुक' संन्यासी ने किया, श्रमण - धर्म स्वीकार।
'चन्दन' रखते सुज्ञ जन, सत्य स्वतन्त्र विचार ॥
जो सच है मेरा वही, जिसका यह सिद्धान्त।
'चन्दन' उसको मानता, मुक्तिपुरी का पन्थ ॥
पढो चतुर्थोध्याय में, श्रेष्ठ धर्म - सम्वाद।
साग मसाला के बिना, श्रेष्ठ न देता स्वाद ॥

धर्मोद्योत लगे अब करने, श्रमणश्रेष्ठ 'शुक जी' प्यारे।
धर्माचार्य जगत में 'चन्दन', प्यारे ही होते सारे॥
दया-धर्म फैलाते जाते, सिखलाते उत्तम आचार।
शुद्ध विचारों के पलने का, है आचार प्रथम आधार॥

भोजन-शुद्धि

सब से पहले जनता को जो, उनने पाठ पढाया है।
धर्म-कर्म का परम सहायक, भोजन शुद्ध बताया है॥
अगर नहीं आहार शुद्ध तो, अन्तःकरण न होगा शुद्ध।
अन्तःकरण अशुद्ध अगर है, शुद्ध कहाँ से होगी बुद्ध॥
अतः अधिक से अधिक इधर ही, ध्यान लगाना पहले जी!
और काम हैं पीछे, भोजन- शुद्ध बनाना पहले जी!
अन्यायोपार्जित होना ही, दोष बड़ा है भोजन का।
धर्मी नर के लिये न भोजन, होता कभी प्रयोजन का।
चोरी, ठग्गी, बेईमानी, कर जो कपट कमाया है
अन्न वही अन्यायोपार्जित, शास्त्रों ने बतलाया
ब्रह्मचर्यव्रत धारी को या, मुनि को भिक्षा का अधिक
संसारी श्रम करके खाते, जान रहा सारा संस

बिना किये श्रम जो भी गेही, अन्न मुफ्त का खाता है।
तमोगुणी बन जाता है वह, ऊर्ध्व नहीं उठ पाता है ।।
तड़पे बछड़ा भूखा, भूखी- गैया नीर बहाती है।
उसका पय पीने से भी तो, शान्ति नहीं रह पाती है ।।

भोजन के तीन दोष

जाति-दोष[1] पहला कहा, आश्रय[2] और निमित्त[3]।
भोजन के ये दोष हैं, समझो सोचो चित्त ।।

जाति-दोष

वस्तु जन्म से ही जो दूषित, जाति-दोष वह जानो जी !
लहसुन मद्य-मांस ये इसके, अन्तर्गत पहचानो जी !

आश्रय-दोष

जाति दोष के बिना वस्तुएं, होजाया करती अपवित्र ।
आश्रय-दोष बना देता है, 'चन्दन' स्थितियां बहुत विचित्र ।।
शुद्ध दुग्ध भी सुरा-पात्र में, अगर टिकाया जायेगा ।
सुनिये साफ उसी को आश्रय- दोष बताया जायेगा ।।

जिस सज्जन ने सोच रखा हो, सज्जनता से जीने का।
सुरा-पात्र में रखा दूध क्या, होता उसके पीने का॥

मक्खी कीड़े बाल वगैरह, जिसमें भी पड़ जाते हैं।
उसी चीज को खाने के वह, पूर्ण अयोग्य बताते हैं॥

निमित्त-दोष

नाम निमित्त-दोष है इसका, सुनिये ध्यान लगा करके।
क्षुब्ध बनाना नहीं चित्त को, दूषित खाना खा करके॥
शान्ति चाहते अगर चित्त की, तीनों दोष हटा देना।
दूषित भोजन द्वारा जीवन, दूषित नहीं बना लेना॥
असावधानी के द्वारा कब ही, भोजन नहीं पकाना जी।
सड़ी-गली हों जो भी चीजें, नहीं काम में लाना जी!
आग जलाते समय देखकर, चींटी आदि बचाना जी!
लकड़ी भी घुण वाली कोई, हरगिज नहीं ज़लाना जी!

भोजन करने से फिर पहले, द्वार लखाया जाता है।
गुरु को, मुनि को और अतिथि को, वह बहराया जाता है॥

नों-दुखियों को भी तो कुछ, दिया-दिलाया जाता है ।
व से पहले नहीं अकेले, खाना[1] खाया जाता है ॥

ोर सुनो—आहार अधिक भी, करना नहीं मुनासिब है ।
ांस-ठांस कर उदर-कूप को, भरना नहीं मुनासिब है ॥
ति भोजन भी अपने मन को, सदा अशान्त बनाता है ।
म खाने वाले को बोलो, क्या आलस्य सताता है ?
वाद नहीं, तन-रक्षा ही है, भोजन का सद् ध्येय सुनो ।
नयोपार्जित, अधिक, अपावन, भोजन होता हेय सुनो ॥
भोजन-शुद्धि बताई इस पर, जो जन ध्यान लगायेंगे ।
चित्त-शुद्धि से शान्ति चित्त की, पाते ही वे जायेंगे ॥

---

१. तारुण्य युवतौ पितरौ सहोदरान्
बालान् स्वसारं पति पुत्र-वर्जिताम् ।
स्वीयान्यपत्यान्यतिथीन् समाश्रितान्
ना भोजयित्वा बुभुजे स्वयं जनः ॥

—पद्मानन्द [illegible]

बूढ़े माता-पिता, भाई, बच्चे, पति-पुत्र वर्जित [illegible] [illegible], [illegible]
सन्तान, अतिथि और आश्रितों को खाना खिलाकर [illegible] है ।

विचार-शुद्धि

जीने का आधार प्रथमतम, बतलाया जैसे आहार।
वह आहार-शुद्धि जब होगी, होंगे पहले शुद्ध विचार॥
शुद्धि विचारों की कर लेना, 'चन्दन' काम नहीं आसान।
बुरे विचार कहां से आते, क्या होता है इसका ज्ञान॥
बुरे-भले का भेद समझना, समझाना भी सरल नहीं।
सुरमा पिस डाले जल्दी से, ऐसी तो यह खरल नहीं॥
बुरे विचारों को भी देखो, क्या न भला माना जाता?
भले विचारों को भी देखो, गलने से छाना जाता॥
हिंसा बुरी, बुरी है चोरी, बुरा झूठ है मिथ्याचार।
बुरे व्यसन बतलाये सातों, माना क्रोध नरक का द्वार॥
बुरा अहं है, बुरा लोभ है, माया बुरी, बुरा है छल।
कभी नहीं मीठा हो सकता, कड़वे तुम्बे वाला फल॥
शिक्षा बुरी किसे भी देना, बुरी बात मानी जाती।
बुरी अशिक्षा, अति तिक्षा भी, बुरी ज़िद्द जानी जाती॥

निन्दा बुरी, बुरी चुग़ली है, बुरा परस्पर करना क्लेश।
बुरे विचार नहीं आने दो, रखना इतना ध्यान हमेश॥

विचारों का प्रभाव

जैसे आप विचार करेंगे, वैसे ही बन जायेंगे।
उच्च विचार अगर आयेंगे, जीवन उच्च बनायेंगे ॥
सत्संगति से, सद्वाचन से, मिलते स्वच्छ विचार सदा।
सन्मित्रों से, श्री सद्गुरु से, मिलता पावन प्यार सदा ॥
शुद्ध विचारों वाले का ही, होता है आचार भला।
भले आदमी का दुनिया में, होता ज्यों परिवार भला ॥
खाली मन में ही उठते हैं, क्षण-क्षण बुरे विचार यहां।
स्थान नहीं खाली होने से, पायेंगे संचार कहां ?
अगर स्थान है खाली तो दो, प्रभु को, गुरु को पहले से।
दहले की बाजी क्या बोलो, जीती जाती नहले से ?

आचार शुद्धि

अब आचार-शुद्धि का वर्णन, सब के सम्मुख आता है।
आचारों को देख-परख कर, जोड़ा जाता नाता है ॥
श्रमण श्रेष्ठ 'शुक' अपने भाषण, ऐसे अधिक सुनाते थे।
निर्बलताएं दूर हटाकर, लोग चुस्त बन जाते थे ॥

कहते थे वे—जिन लोगों का, अगर शुद्ध आचार नहीं।
लोक और परलोक कहीं पर, पाते वे सत्कार नहीं॥
नरक योनि, तिर्यंच योनि में, कष्ट घोर वे पाते हैं।
आसानी से मानव तन में, क्या दोबारा आते हैं?
जिसका शुद्धाहार नहीं है, जिसका शुद्ध विचार नहीं।
जिसका शुद्धाचार नहीं, क्या- उस नर को धिक्कार नहीं?

सदाचार-सा धर्म नहीं है, दुराचार-सा पाप नहीं।
किसी दुराचारी का लेखे, लगता भगवज्जाप नहीं॥

दुराचारी की दुर्गति

मन ही मन में बना रहे वह, चाहे कितना भगत बड़ा।
लेकिन सारा जगत समझता, भगत जगत को ठगत पड़ा॥
कोल्हू का ज्यों बैल देखलो, चक्कर खूब लगाता है।
लेकिन आंखें खुलने पर वह, वहीं स्वयं को पाता है॥
दिन भर चलने पर भी जैसे, रहे वहीं का वहीं अरे!
नहीं दुराचारी बढ सकता, चाहे जितने कदम भरे॥
जप,तप,माला, नित्य नियम वह, चाहे जितना करता हो।
क्या मजाल जो सुख-पथ पर पग, इक भी आगे धरता हो॥

नारी, नर का जिसका भी बस, दुनिया में आचार गया।
गया सभी कुछ उसका समझो, जीवन-बाज़ी हार गया॥
चला जगत से खालमखाली, दोनों हाथ पसार गया।
होना था कुछ हलका जिसको, उलटा लेकर भार गया॥
लेकर जन्म हंसाने वाला, करता हाहाकार गया।
आया था भवसागर तरने, डूब मगर मझधार गया॥

सदाचार की श्रेणी

सदाचार युत जीवन ही तो, पाता है सम्मान सदा।
सदाचार युत जीवन ही तो, दुनिया की है शान सदा॥
सदाचार युत जीवन ही तो, जीवन की है जान सदा।
सदाचार युत जीवन ही तो, बनता है धनवान सदा॥
सदाचार युत जीवन का ही, रहता निर्मल ध्यान सदा।
सदाचार युत जीवन का ही, फलता है जप, दान सदा॥
सदाचार युत जीवन ही तो, रखता कुल की कान सदा।
सदाचार युत जीवन को ही, कहते गुणी महान सदा॥

सदाचार युत जीवन की ही, उत्तम हो सन्तान सदा।
सदाचार युत जीवन का सब, करते हैं गुण-गान सदा॥

सदाचार युत जीवन को ही, कहते हैं उत्थान सदा।
सदाचार युत जीवन द्वारा, होता है कल्याण सदा॥
सदाचार युत जीवन ही तो, बनता है भगवान सदा।
सदाचार युत जीवन ही तो, पाता पद निर्वाण सदा॥

कहो कहां तक कोई, कोई- सीमित तो विस्तार नहीं।
सदाचार की महिमा का मुनि- 'चन्दन' कुछ भी पार नहीं॥

व्यवहार-शुद्धि

अब व्यवहार शुद्धि भी सुनलो, जो बतलाई जाती है।
व्यवहारी के व्यवहारों में, प्रतिपल पाई जाती है॥
बुरे व्यक्ति के साथ-साथ जो, भला आदमी जाता है।
बुरा नहीं होने पर भी वह, बुरा यहां कहलाता है॥

व्यवहार-शुद्धि के उदाहरण

[१]जैसे मदिरालय में जो जन, मिलने को भी जायेगा।
उसकी ओर ज़माना अपनी, अंगुलि क्यों न उठायेगा॥

[2]गणिका वाली गलियों में से, अगर ब्रह्मचारी जाता।
पापी पतित नहीं होने पर, बदनामी भारी पाता॥

[3]उष्णोदक की अगर बाल्टी, धरकर कोई कूए पर।
लिये स्नान के सोच रहा हो, आए सहसा सन्त उधर॥
जल लेने की विनति करे जो, लेगा सच्चा सन्त नहीं।
दुनिया वाले क्योंकि समझलें, उसको सलिल सचित्त कहीं॥

[4]जैनधर्म का जो भी कोई, सच्चा सन्त कहाता है।
किसी अकेली नारी को वह, क्या उपदेश सुनाता है ?
करता अधिक न बातें उससे, नहीं पास बिठलाता है।
मंगलपाठ सुनाते ही क्यों, पढने में लग जाता है ?
मन से ही लो इसका उत्तर, मुझे नहीं उच्चरना है।
रखने को व्यवहार-शुद्धि बस, उसको ऐसा करना है॥

[5]किसी पुरुष से किसी सती को, करनी अगर पढाई हो।
नहीं कल्पता बिलकुल पढना, पास नहीं जो बाई हो॥
बाई वही वयस्क चाहिए, बतलाओ क्यों बच्ची हो।
पालन करती पूर्ण नियम का, महासती जो सच्ची हो॥

करती जो मन चाहा अपना, अगर न नियम निभाती है।
नहीं कभी वह हरगिज अच्छी, सच्ची सती कहाती है॥

[६]सतियों को फिर कभी रात को, नहीं अकेले रहना है।
"बृहत्कल्प" आगम का सुनलो, 'चन्दन' जो कुछ कहना है॥
विश्व विदित इस जैन-धर्म की, सच्ची सती कहाए वह।
बालिग किसी श्राविका को जो, अपने पास सुलाए वह॥
नाबालिग वैरागिन को जो, अपने पास सुलाती है।
नियम होगया इससे पूरा, ऐसा जो बतलाती है॥
और किसी भी बाई को जो, सोने नहीं बुलाती है।
उक्त नियम की सुनो धज्जियां, ऐसी सती उड़ाती है॥
बिना सयानी बहन कल्पता, सतियों को कब रहना जी।
प्रथमोद्देशक पाठ बीस दो, का यह सुनलो कहना जी !
ऊपर के इन नियमों को जो, सतियां नहीं निभाती हैं।
है व्यवहार लोपने वाली, अपच्छन्दा कहलाती है॥

है कर्त्तव्य संघ का भी तो, सतियों को सुखदायी हो।
शुद्ध प्रबन्ध उसे है करना, समझदार जो बाई हो
मददगार फिर बहनों को भी, बढकर इसमें होना है
पढते पास बैठना उनको, और रात को सोना है

'अम्मा पिया समाणा' उनको, शास्त्रकार बतलाते हैं।
लापरवाही दूर हटा जो, निज कर्त्तव्य निभाते हैं॥

हाथ काला

अच्छे एक सेठ का बेटा, संग बुरों का करता था।
सुबह-शाम जब भी देखो तब, उनके साथ विचरता था॥
वैसे अपने पूज्य पिता से, मन ही मन में डरता था।
मगर मेल से नहीं बुरों के, हरगिज़ भी वह टरता था॥
और कहीं कम सदा बैठता, क़दम वहीं पर धरता था।
उनकी संगति में ही लगता, सुख का निर्झर झरता था॥
अतः जवानी को दीवानी, ज्ञानी गुणी बताते हैं।
इसमें लगता बुरा धर्म तो, ऐब सभी मन भाते हैं॥
देख बना आवारा उसको, गलियों में - बाज़ारों में।
काना-फूसी शुरू होगई, नगरी के नर-नारों में॥
लोगों की सुन चर्चा मन में, सेठ बहुत घबराये हैं।
अवसर देख एक दिन उनने, पास कुंवर बुलवाये हैं॥

कहा—कुलीनों का अय बेटे ! ऐसे फिरना ठीक नहीं।
अच्छे लोग बुरों के हरगिज, जाते भी नज़दीक नहीं॥

मझदार हो स्वयं समझलो, तुम्हें संभलना अच्छा है।
ान और मर्यादा में ही, अपना चलना अच्छा है॥

पुत्र का तर्क

हाथ जोड़कर बोला बेटा, ठीक बात फ़रमाई है।
लेकिन कहो पिता जी! मुझमें, आई कहीं बुराई है?
साथ बुरों के रहकर भी जो, बुरा नहीं बन पाया हूं।
कहिये फिर निष्कारण ही यों, जाता क्यों धमकाया हूं?
छोटी बड़ी बुराई कोई, खोज लगाएं जूते सौ।
नहीं ज़रा इन्कार करूंगा, रोज़ लगाएं जूते सौ॥
है अधिकार पिता को सारा, वह धमका भी सकता है।
देख कुपथगामी निज सुत को, सख्त सुना भी सकता है॥
नहीं कहेगा अगर पिता ही, और कौन कहने वाला।
पुत्र नहीं, दुश्मन होता है, बात नहीं सहने वाला॥
मगर बुराई अब तक कोई, लाया हूं मैं साथ नहीं।
वैसे ही फिर कहते रहना, कोई अच्छी बात नहीं॥

कोयला लेआ

कहा पिता ने—जलता है वह, चूल्हा ज़रा लखाओ तो।
एक दहकता अंगारा बस, अभी उठाकर लाओ तो।

चिमटे से या चम्मच से बस, उसको नहीं उठाना पर।
लाना पुत्र ! हाथ में उसको, अपनी मुट्ठी के अन्दर ॥

आज्ञाकारी बेटा सुनकर, उसे उठाने जाता है।
सेक असह्य देखकर उसका, मन ही मन घबराता है ॥
कहा पिता से—अङ्गारा तो, ऐसे लाना मुश्किल है।
जान-बूझकर अपना कोमल, हाथ जलाना मुश्किल है ॥
लाने की विधि बतलावो तो, अङ्गारे ला सकता हूं।
आज्ञा-पालन की तत्परता, मैं तब दिखला सकता हूं ॥

बात पुत्र की सुनकर मन में, पिता स्वयं मुस्काते हैं।
उसी तरह ही बुझा हुआ अब, लाने को फ़र्माते हैं ॥
खुशी-खुशी से दौड़ा-दौड़ा, फ़ौरन बेटा जाता है।
मुट्ठी में कर बन्द कोयला, लेकरके झट आता है ॥
बड़ी शान्ति से, बड़े प्यार से, कहा पिता जी ने ऐसे।
बुझे हुए को लाने से ये, हाथ नहीं जलते कैसे
विस्मित होकरके वह बेटा, पूज्य पिता से कहता है
बुझा हुआ जो हो अङ्गारा, नहीं हाथ को दहता है
कहा पिता ने—भले हाथ तो, इसने नहीं जलाया है
मगर तुम्हारा कर तो काला, करके ही दिखलाया है

बात यह है

बुरे संग से चाहे तुम में, आई नहीं बुराई है।
किन्तु तुम्हारी पुर में भारी, बदनामी तो छाई है॥
अत: कुसङ्गति को शास्त्रों ने, बहुत बुरा बतलाया है।
उससे बचने वाले नर का, समझो पुण्य सवाया है॥

सुनते ही यह बात पिता के, चरणों में पड़ जाता है।
हाथ जोड़कर बड़े विनय से, वाणी मधुर सुनाता है॥

पुत्र का सुधार

नहीं समझ में आई थी जो, बात समझ में आई है।
आज आपने बड़े ढंग से, बात साफ़ समझाई है॥
नहीं कभी उपकार आपका, दिल से भूल भुलाऊंगा।
नहीं कुसंगत में अब अपना, कोई क़दम टिकाऊंगा॥
क्यों व्यवहार बिगाड़ूंगा मैं, क्यों अपवाद कराऊंगा।
कुल का दीपक बनकरके ही, इज्जत अधिक बढाऊंगा॥
"यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं- नाचरणीयं" होता जी!
आदरणीय मानने वाला, अन्त समय में रोता जी!

कहा—यही थी आशा तुम से, शिक्षा नहीं भुलावोगे।
व्यवहारानुकूल जीवन कर, घर की शान बढ़ावोगे॥
ऐसे ही बेटों से शोभा, बाप-बाप के घर की है।
देश-नगर की जो भी शोभा, शोभा नारी-नर की है॥

चारों हो तो

उदाहरण देकरके ऐसा, 'श्री शुक' मुनिवर कहते हैं।
रखते हैं व्यवहार शुद्ध जो, सदा सुखी वे रहते हैं॥
ये चारों ही उक्त शुद्धियां, जिनमें पाई जाती हैं।
नर हों भले, नारियां हों वे, महागुणी कहलाती हैं॥
इनके बिना धर्म-अधिकारी, हुआ न होगा कोई है।
संत-मंत में बने भक्त जो, लुटिया अरे! डुबोई है॥
श्रमण और श्रमणोपासक के, जो भी व्रत कहलाते हैं।
चार शुद्धियां वाले ही नर, अपनाते यश पाते हैं।

आत्म-शु

आत्म-शुद्धि का यथा स्थान क्रम, सुनो पांचवां आता है
चार शुद्धियां विना कभी जो, पूर्ण नहीं हो पाता है

आत्म-शुद्धि को भवन बताया, चार शुद्धियां नींव कही।
इन चारों के विना व्यर्थ सब, सब कुछ इनके साथ सही ॥
बनना हो जो सच्चा मानव, इन सब को अपनाना जी !
हीरा जन्म अमोलक'चन्दन- मुनि' मत व्यर्थ गंवाना जी !

विहार की सफलता

आप विचरते भाषण करते, धर्म-नीति- वैराग्य-प्रधान।
त्यागी वैरागी सन्तों का, सभी जगह होता सम्मान ॥
चाव, भाव से सुनती जनता, यही धर्म का वड़ा प्रभाव।
लिये धर्म के किसी व्यक्ति पर, डाला जाता नहीं दवाव ॥
हर प्राणी की वाणी में क्या, आकर्षण पाया जाता ?
सरल रीति से समझ सकें सब, ऐसे समझाया जाता ॥
योग्य सुगुरु के योग्य शिष्य ही, सचमुच में ये सिद्ध हुए।
दूर-दूर तक दुनिया में वे, 'चन्दन' बहुत प्रसिद्ध हुए ॥

'सेलकपुर' में पदार्पण

सुनो, एकदा'श्री शुक' मुनिवर, 'सेलकपुर' में आते हैं।
नृपति वहां के 'सेलक जी' सुन, खुशियां खूब मनाते हैं ॥

दीन-दुखी के दिल को हरगिज, नहीं दुखाओ जीवन से।
बनकर करुणा का शुभ सागर, दर्द मिटाओ जीवन से॥
बनो विवेकी नेकी को मत, कभी भुलाओ जीवन से।
नाम देश का, कुल का, अपना, तुम चमकाओ जीवन से॥
सदा अकर्मा बनने को ही, कर्म कमाओ जीवन से।
पद निर्वाण अगर है पाना, कर्म खपाओ जीवन से॥

मुनि जी बोले—महाव्रतों को, जो कोई अपनायेगा।
वही भवान्त करेगा अपना, अजर-अमर बन जायेगा।
दीक्षा लिये बिना ही पूरा, धर्म निभाना मुश्किल है।
जड़ से हिंसा-चोरी आदिक. का विसराना मुश्किल है।
लालच झूठ सर्वथा तजकर, भी दिखलाना मुश्किल है।
इसीलिये तो घर में रहते, मुगती पाना मुश्किल है।
बारह व्रत श्रमणोपासक के, जो भी लोग निभायेंगे।
भव्य जीव वे निकट मोक्ष के, निश्चित होते जायेंगे।
आत्म शक्ति जैसी हो जिसकी, वैसा ही कर सकता है
हिम्मत से भवसागर को हर- नारी-नर तर सकता है।

यथाशक्ति व्रत-नियम ग्रहण कर, जनता पहुंची अपने स्थान।
'सेलक' नृप अब दीक्षा लेंगे, 'चन्दन' सज्जन देंगे ध्यान।

रही-सही वह कसर आपके, भाषण ने अब पूरी की।
एक-एक जो शिक्षा दी है, बिलकुल बहुत ज़रूरी दी॥
बाकी रही आयु जो मेरी, मैं क्यों व्यर्थ गंवाऊंगा।
राज-ताज दे राजकंवर को, मैं संयम अपनाऊंगा।
विनति यही है गुरु-चरणों में, अभी कहीं मत जाना जी!
बहुत जल्द ही आऊंगा मैं, मुझको शिष्य बनाना जी!
भवसागर में मेरी नैया, सुख से पार लगाना जी!
दिल के बड़े दयालु आप हैं, दया-मया फ़रमाना जी!

विनति श्रवण कर 'श्रीशुकमुनि' ने, 'अहा सुहं' फ़रमाया है।
करके वन्दन 'सेलक' राजा, राजसभा में आया है।

सचिवों के सम्मुख

'पंथक' प्रमुख पांचसौ मन्त्री, तत्क्षण पास बुलाये हैं।
अपने मन के भाव खोलकर, सारे साफ़ सुनाये हैं।
कहा—सुना 'शुक मुनि' का भाषण, मेरा मन हरषाया है।
संयम लेने का बस मन में, भारी चाव समाया है।
सेवा आप रहे जो करते, हरगिज़ नहीं भुलाऊंगा।
मधुर स्वभाव आपका, मेरे- मन में सदा बसाऊंगा।

रहा राज जो सुख से करता, किसका कहो सहारा था ?
सुनलो साफ़ भरोसा मुझको, निश-दिन बड़ा तुम्हारा था ॥
तुम ही तो सुलझाते थे सब, हरदम उलझी तानी को।
तुम ही तो इन्साफ़ दिलाते- थे हर सच्चे प्राणी को ॥
रहे समझते सारे विष-सा, लालच बेईमानी को।
घूस रूप में नहीं छुआ है, अब तक कौड़ी कानी को ॥
गर्व हमेशा रहा सभी पर, सारी ही रजधानी को।
भूल सकूंगा नहीं आपकी, इस अद्भुत मतिमानी को ॥

मेरे पीछे कहां रहोगे ? क्या कुछ करो-करावोगे ?
मेरे प्यारे सचिवो ! ये सब, क्या मुझको बतलावोगे ?

सचिवों की तैयारी

प्यार भरी सुन बात भूप की, सचिव विमर्शन करते हैं।
बड़े विनय से हाथ जोड़कर, वचन सभी उच्चरते हैं ॥
अब तक हमने नृप-सेवा में, अपना समय बिताया है।
किसी किसम का कष्ट आज तक, नहीं किसी ने पाया है ॥
एक नज़र से सारों को ही, आप लखाते रहते थे।
होकर स्वामी सेवक जन का, मान बढाते रहते थे ॥

सदा देखते रहते थे हम, पक्षपात का काम नहीं।
चाहे हो अपराध किसी का, वहां क्षमा का नाम नहीं।
धीर वीर गम्भीर मधुर अति, प्राकृत प्रकृति पाई है।
किसी और की ऐसी प्रकृति, हमने नहीं लखाई है।
सम्मुख रहे सदा नरपति के, आगे क्यों मुख मोड़ेंगे।
साथ आपके साधु बनेंगे, हम भी माया छोड़ेंगे।
नहीं अधिक इस दुनिया में हम, अपने को उलझायेंगे।
मानव जन्म अमोलक अपना, अब तो सफल बनायेंगे।
त्याग और वैराग बिना क्या, कोई भी है सकता तर
करके करनी निर्मल-निर्मल, जायेंगे हम पार उतर।
जागे आप, जगाया हम को, स्नेह निभाया भारी है।
इसीलिये श्री नृप-चरणों के, हम सारे आभारी हैं।

झूम उठे वे 'सेलक' राजा, देख भावना सारों की।
सराहना की गद्‌गद्‌ होकर, मुक्त कण्ठ से प्यारों की।

समवेत स्वर

ऐसी ही थी आशा तुम से, जीवन सफल बनाओगे।
तपः, त्याग के सुन्दर पथ पर, अपना क़दम बढाओगे।

सच्ची शान्ति विषय में फंसकर, क्या कोई नर पाता है ?
मनः- शान्ति का अभिलाषी नर, भोगों को ठुकराता है ।।
देख लिया दुनिया को हमने, पड़कर दुनियादारी में ।
एक तरह से यही कहेंगे, बीता जीवन ख्वारी में ।।

साथ न जाने वाली चीजें, मन में सदा बसाई थीं ।
और संग में जाने वाली, हमने अहो ! भुलाई थीं ।।
चला गया जो समय हाथ से, चिन्ता उसकी कैसी अब ।
जो कुछ बाकी बचा हाथ में, उसको सफल बनायें सब ।।
प्रभु का नाम रहेगा मुख में, मन में होगी निश्छलता ।
बोली-चाली रहन-सहन में, आ न सकेगी चंचलता ।।
राग-द्वेष के क्रोध-क्लेश के, कभी निकट क्यों जायेंगे ।
सच्चे साधु-महात्मा बनकर, जीवन को चमकायेंगे ।।

राजकुमार 'मंडुक'

ऐसा कहकर राजकुँवर के, निकट नृपति अब आते हैं ।
संयम लेने के सब अपने, पक्के भाव बताते हैं ।।
युवराजा 'श्री मंडुक' सुनकर, विस्मित ही रह जाते हैं ।
दीक्षा लेंगे आप अभी ही ! कहकर अश्रु बहाते हैं ।।

कहा नृपति ने—बेटे ! देखो, वृद्धावस्था दूर नहीं।
सारी आयु बिताना घर में, मानव का दस्तूर नहीं।
करूं कमाई संयम लेकर, अब तो आगे जाना है।
अगर न धर्म कमाया जाये, पड़ता फिर पछताना है।
भार पिता के कन्धों का अब, हलका तुम्हें बनाना है।
राज-मुकुट को धारण कर सुख- जनता को पहुँचाना है।

नृप योग्य शिक्षाएं

दुखियों का दुख-दर्द मिटाना, दया-दान से रखना प्यार।
सदा प्रजा का पालन करना, न्याय-नीति का ले आधार।
हो जाना उन्मत्त नहीं तुम, हाथ हुकूमत आने से।
नहीं लुटाना इक भी पैसा, अपने राज खजाने से।
दुराचार में पड़कर नरपति, हो जाते बरबाद बहुत।
सदाचार की सत शिक्षाएं, रखना बेटे ! याद बहुत।
स्वामी नहीं, समझना सेवक, जनता का तुम अपने को।
समय बचा भी लेना, प्रभु का, नाम प्रेम से जपने को।।

ठग्ग-उचक्कों गठकतरों को, कामी-लम्पट चोरों को।
नहीं पनपने देना बेटा ! पापी रिश्वतखोरों को।।

ऐसा राज्य चलाना जिससे, सारे सज्जन राजी हों।
पशुओं और पक्षियों का भी, पूर्णतया मन राजी हो॥
स्वयं समझते हो सब तुमसे, और अधिक क्या कहना है।
परम सुयोग्य नृपति बन करके, इस दुनिया में रहना है॥

ऐसा ही होगा

हाथ जोड़कर कहा कंवर ने, शिक्षा सही निभाऊंगा।
अच्छा हूं तो और अधिक ही, अच्छा बन दिखलाऊंगा॥
अपना और आपका, कुल का, जग में यश फैलाऊंगा।
रहिये आप निशंक वंश को, नहीं कलंक लगाऊंगा॥
चार दिनों के इस जीवन में, मरना नहीं भुलाऊंगा।
पकड़ूंगा जो खोटा रास्ता, खोटा ही फल पाऊंगा॥
नहीं बचाने वाला कोई, नरक लोक में जाऊंगा।
यमदूतों की मार करारी, खाकर नीर बहाऊंगा॥
अभी आपने शिक्षा लेकिन, ऐसी उल्टी दिखाई है।
आ सकती इस मेरे मन में, हरगिज नहीं सुहाई है॥

नरक-स्वर्ग जो नहीं मानते, उनको झूठ बताते हैं।
नहीं मानते पुण्य-पाप जो, सब कुछ नहीं बताते हैं॥

प्रश्न नहीं पावन रखने का, जीवन के आचार-विचार।
नास्तिक बनकर नास्तिकता का, करते आप प्रचार-प्रसार॥
ऐसे लोगों के द्वारा ही, पलता रहता पापाचार।
बचता मैं उनकी छाया से, जाता कभी न उनके द्वार॥
याद लोक-परलोक मुझे हैं, याद पुण्य है पाप मुझे।
याद मुझे है स्वर्ग-नरक भी, याद इष्ट का जाप मुझे॥
कहिये क्यों फिर मेरे द्वारा, पाप कमाये जायेंगे।
उच्च योनि के बदले जो फिर, नीच योनि दिखलायेंगे॥

न्याय-नीति के द्वारा ही मैं, शासन सदा चलाऊंगा।
पूज्य पिता जी! धर्म-कर्म की, शिक्षा नहीं भुलाऊंगा॥

बेटा ! फलो-फूलो

सुनकर बात पुत्र की ऐसी, 'सेलक' हर्ष मनाते हैं।
अभिसिंचन की कर तैयारी, उसे मुकुट पहनाते हैं॥
देते आशीर्वाद हृदय से, फूलो और फलो बेटा!
धर्म, न्याय, सच्चाई के शुभ, पथ पर नित्य चलो बेटा!
छले न जाओ आप किसी से, औरों को न छलो बेटा!
देख दूसरों का सुख-वैभव, मन में नहीं जलो बेटा!

अड़ा-अड़ी में, भिड़ा-भिड़ी में, पहले आप टलो बेटा !
पालो दया दया के नीचे, सुख से आप पलो बेटा !
संकट में न किसी को डालो, संकट से निकलो बेटा !
शील सत्य के सांचे में ही, ढालो और ढलो बेटा !
छींटे उछलें, तड़-तड़ बोलें, तलने नहीं तलो बेटा !
दीन-दुखी पर मक्खन बनकर, शीघ्र-शीघ्र पिघलो बेटा !
यौवन के हैं घाट चीकने, कहीं नहीं फिसलो बेटा !
नहीं डायरी के पन्नों पर, दिल पर यह लिखलो बेटा !
भाव अतुच्छ, स्वच्छ रखना है, नहीं कभी उछलो बेटा !
अन्यायों को छत्रियत्व के, पांवों से कुचलो बेटा !
लिये सत्य के पड़े अगर कुछ, सहना तो सहलो बेटा !
भार तुम्हें जो सोंपा मैंने, सुखपूर्वक बहलो बेटा !

आशीर्वाद बोलकर अपना, हाथ शीश पर रखते हैं।
नये नृपति भी पूज्य पिता के, सम्मुख उठकर झुकते हैं।।

"मंडुक" की आज्ञा

'सेलक' ने 'मंडुक' राजा से, पूछा संयम लेने का।
क्योंकि नृपति का कार्य मानलो होता आज्ञा देने का।।

'सेलकपुर' को सजवया है, भान्ति-भान्ति के ढंगों से।
तोरणद्वार बनाये सुन्दर, जाति विशेष सु-रंगों से ॥
जल छिड़काव किया पंथों में, सुमन-सुगंधित पन्थ किये।
निष्क्रमणोत्सव करने को ये, कार्य श्रेष्ठ अत्यन्त किये ॥
मुक्त हाथ से दान दिया है, किया बंदियों को भी मुक्त।
भूल क्षमा कर देना भी तो, क्या न कभी रहता उपयुक्त ?

समय सजावट में लगता है, इसमें कभी नहीं दो राय।
सचिवों को तैयारी करनी, उनके साथ कीजिये न्याय ॥

ऐसे करिये

राजा ने सारे सचिवों से, बोला—अब झट जाओ सब।
अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को, कार्य-भार संभलाओ सब ॥
कोई काम न रहे अधूरा, पूर्णतया भुगताओ सब।
सभी तरह से संयम के बस, बहुत योग्य हो जाओ सब ॥
कर अभिषेक बाद में सुन्दर, भूषण-वसन सजाओ सब।
बैठ-बैठ फिर शिविकाओं में, पास हमारे आओ सब ॥
शिरोधार्य कर आज्ञा सारे, हर्षित होकर जाते हैं।
उसी तरह तैयार सभी हो, निकट नृपति के आते हैं ॥

दीक्षा की धूम-धाम

इधर नृपति 'श्री सेलक जी' भी, तैयारी कर लेते हैं।
दीन-अनाथों-दुखियों को वे, दान बहुत ही देते हैं॥
खड़े लोग जय-जय करते हैं, संयम की तैयारी पर।
छाया है वैराग्य-रंग हर- नगरी के नर-नारी पर॥
आये सभी सचिव सज करके, गद्गद् नगरी सारी थी।
सब से आगे राजा जी की, सजी पालकी प्यारी थी॥

निष्क्रमणोत्सव

हाथी,घोड़े,रथ,पैदल-दल, सज्जित चलते सुन्दर चाल।
निष्क्रमणोत्सव पर निकला है, सुन्दर एक जुलूस विशाल॥
राजा जी की एक पालकी, सहसवाहिणी है आगे।
इतना धीमे चलना जिससे, पीछे वाले क्यों भागें॥
और पांचसौ है पालकियां, सब सचिवों की अलग-अलग।
हुआ देखने को एकत्रित, सारा 'सेलकपुर' लगभग॥

जितने लोग खड़े रास्ते में, एक यही चर्चा करते।
'सेलक' नृप 'पंथक' मन्त्री सब, श्रमण-धर्म को आदरते॥

गीतों की रमझम

सधवाएं मङ्गल गाती हैं, मधुर कोयली स्वर से सव।
इसीलिए तो आई हैं ये, अपने-अपने घर से सव॥
गीत विवाहों में भी गातीं, दीक्षा पर भी गातीं गीत।
गीत तपस्या पर भी गातीं, वहनों से यह छुपी न रीत॥
गीत विहार-समय पर गातीं, गातीं गुरु के आने पर।
गाने लगतीं गीत कभी तो, अपने धर्म ठिकाने पर॥
गीतों की रीतों से मिलता, दीक्षार्थी को नव उत्साह।
धर्म-गीत गाने की 'चन्दन,' देता मांगे विना सलाह॥

भाई गाते, बहनें गातीं, गाते लोग सभी फिर साथ।
गाते-गाते ही जाते हैं, गाने की जव आई बात॥
गाओ बड़े ढंग से आओ, रंग चढाओ दीक्षा का।
गीतों में भी भरा खजाना, दीक्षा की शुभ शिक्षा का॥

मानस दर्शन

किसी-किसी की आंखों में से, टप-टप आंसू रहे निकल।
रो ही देता कब रुकता है, जो होता है कोमल दिल॥

कोई धन्यवाद देता है, देख त्याग, वैराग बड़ा।
कोई कुछ भी नहीं बोलता, सिर्फ देखता खड़ा-खड़ा॥
कोई कहता—दीक्षा लेना, कहलाती है ऊंची बात।
प्राप्त भोग को, राज्य ऋद्धि को, जाते सभी लगाकर लात॥
कोई कहता—लेते होंगे, अपने को क्या है मतलब।
इनके लेने से क्या दीक्षा, लेने वाले हैं हम सब॥
कोई कहता—दीक्षा लेकर, कष्ट मुफ़त ही पायेंगे।
स्वर्ग मोक्ष है कहां बताओ, जहां लोग ये जायेंगे॥
अगर पूछ लेते मेरे से, तो मैं सब समझा देता।
रुक जाता है वैरागी भी, एक बार दीक्षा लेता॥
जन-सेवा ही प्रभु-सेवा है, इसे छोड़कर जाना क्यों?
धर्म-ज्योति पर जल मरने को, बन जाना परवाना क्यों?

जितने मुंह उतनी ही बातें, होती रहती हैं 'चन्दन'।
स्थान-स्थान पर किया जा रहा, मुमुक्षुओं का अभिनन्दन॥

मुमुक्षुओं का मानस

स्वागत सस्मित स्वीकृत करते, खमतखामणा भी करते।
अपने प्रति क्या दीक्षा के प्रति, भली भावनाएं भरते॥

माया से हम निकल रहे हैं, मानो आज चले मरने।
अपनी और पराई भी तो, साथ भलाई ही करने॥
अगर किसी ने बुरा किया तो, हंसते-हंसते सह लेंगे।
नहीं बुराई कभी करेंगे, कर्मों से कुछ कह लेंगे॥
दुःख नहीं देते, ये देते- कर्म काटने में सहयोग।
बुरे नहीं होते, हैं उत्तम- 'चन्दन मुनि' सहयोगी लोग॥
रेखा नहीं उभरने देंगे, दिल में जो कर डाले भेद।
नहीं सूचिका, गुण है-गुण का, किये हुए भर डाले छेद॥

प्राणि-मात्र से मैत्रि-भावना, करने क़दम बढ़ाये हैं।
श्रद्धा-सुमन दिये जो जग ने, अपने शीश चढ़ाये हैं॥

उद्यान के अन्दर

जहां 'सुभूमिभाग वन' है जी ! वहां पहुंच करके सारे
उतर गये हैं पालकियों से, सारे दीक्षार्थी प्यारे
जहां विराज रहे 'श्री शुक मुनि', आकर वन्दन करते हैं
डरते नहीं किसी से लेकिन, जन्म-मरण से डरते हैं
जाकरके 'ईशनकोण' में, लोच किया फिर केशों का
मानो ढेर लगा माया का, ढेर लगा यो वेशों का

'पद्मावती' नृपति की रानी, केश ग्रहण कर लेती है।
नीचे नहीं गिराती, मणिमय- डिबिया में भर लेती है॥
वेश गृहस्थों का त्यागा है, बाना श्रमणों का धारा।
धारा यही चली आती है, जान रहा है जग सारा॥
वेश पलट कर वापस आये, खड़े सामने जोड़े हाथ।
नमोक्कार उच्चारण करते, वैरागी मिलकरके साथ॥
चादर, चोलपटक, मुखपत्ती, कर में पात्रों की झोली।
रजोहरण ले काख बीच में, स्थित है टोली की टोली॥

सूरत भोली, मीठी बोली, मानो घोली सुधा भली।
कहती सुधा स्वर्ग में जाकर, देवों द्वारा मुधा छली॥

दीक्षा की प्रार्थना

हाथ जोड़कर कहा सभी ने, देरी नहीं लगाओ जी!
करुणासागर! श्री सतगुरु जी! संयम पाठ पढाओ जी!
जन्म-मरण भय सभी हमारा, जड़ से दूर हटाओ जी!
डगमग करती नाव हमारी, सिन्धु-पार पहुंचाओ जी!
चरण कमल में आये हैं हम, हमको पार उतारो जी!
अपने कमल सुकोमल मन में, नाथ! विनति अवधारो जी।

दीक्षा-दान

विनति सभी की सुनकर 'शुक मुनि,' गद्गद् ही हो जाते हैं।
सारी परिषद के सम्मुख अब, संयम-पाठ पढाते हैं॥
चोटी की तो लोच उन्होंने, पहले खुद ही करली थी।
खूब खुशी से अपने मन की, पावन झोली भर ली थी॥
सामायिक का पाठ सविधि अब, उन्हें पढाया जाता है।
बोल-बोल जय लोगों द्वारा, नभ गुँजाया जाता है॥
संयम पालन करने की विधि, प्रेम सहित समझाई है।
इक-इक बात उन्होंने अपने, मन के बीच बसाई है॥

जनता गई

देख महोत्सव दीक्षा का यों, फूली नहीं समाई है।
गुरु चरणों में वन्दन करके, जनता वापस आई है॥
'मंडुक' राजा जी भी वापस, नगरी में आ जाते हैं।
न्याय-नीति सुख पूर्वक अपना, सारा राज्य चलाते हैं॥

सेलक राजऋषि

'शुक मुनि' ने केवल 'सेलक' को, अपना शिष्य बनाया था।
'पंथक' आदिक शिष्यों का श्री- 'सेलक' गुरु कहलाया था॥

भाषण सुनकर उनकी शिक्षा, रग-रग वीच वसाती थी।
जितना भी हो सकता उन पर, पूरा अमल कमाती थी॥
साधु तपस्वी त्यागी विरले, जगत-जनों को मिलते हैं।
मिलते हैं तव कमल-कली-से, भक्तों के दिल खिलते हैं॥
क्षमा,शील,सन्तोष,शान्ति,जप, समता, तप सिखलाते थे।
सच तो यह है—मानव को वे, मानव सही वनाते थे॥
नहीं किया आलस्य ज़रा भी, सत्य-सूर्य चमकाने में।
मिथ्या-तिमिर हटाया जो भी, फैला हुआ ज़माने में॥
'वीतराग' की वाणी से सव, मन चमकाते जाते थे।
स्वर्ग मुक्ति की पगडण्डी पर, क़दम वढाते जाते थे॥
हिंसा झूठ अनीति आदि को, सतत भुलाते जाते थे।
जो भी गांठें पड़ी हृदय में, उन्हें खुलाते जाते थे॥
महामन्त्र नवकार हमेशा, मन में गाते जाते थे।
सोते-जगते परमात्मा में, चित्त रमाते जाते थे॥
मुनिराजों की वाणी का कुछ, ऐसा असर निराला था।
बन जाता था प्रभु का सेवक, जो भी सुनने वाला था॥
नारी था या नर था कोई, बूढा था या बाला था।
रहा नहीं पीछे कोई भी, चाहे गोरा-काला था॥
बहुजन-हित के लिये सभी ने, किया समर्पित अपने को।
साधु नहीं आने देते हैं, सुख आलस मय सपने को॥

आपकी करनी

केवल उपदेशक ही थे वे, समझो ऐसी बात नहीं।
तप-जप के बिन गया नहीं दिन, गई एक भी रात नहीं॥
वेला-तेला फिर पंचोला, कभी अठाई करते थे।
वाह्य और आभ्यन्तर तप से, मनः-सफाई करते थे॥
अपने मुख से अपनी हरगिज़, नहीं बड़ाई करते थे।
करते थे तो अपनी मुख से, सदा बुराई करते थे॥
कहते—अब भी क्रोध-मान है, बाकी ममता—माया है।
इन दोषों का संयम द्वारा, करना हमें सफाया है॥
कंचन और कामिनी तजकर, सन्त बने हैं तरने को।
लगे हुए हैं अपने मत पर, पूरा कावू करने को॥
धन्य दिवस वह होगा जब हम, आठों कर्म खपायेंगे।
वनकर एक अयोगी आत्मा, मोक्षपुरी में जायेंगे॥

"पुण्डरीकगिरि" पर

अन्त समय नजदीक जानकर, 'शुक मुनि' अनशन करते हैं।
मोह-लोभ का राग-द्वेष का, पूर्ण निवारण करते हैं॥
एक हजार शिष्य भी अपना, अन्तिम समय लखाते हैं।
पुण्डरीक पर्वत पर जाकर, कर अनशन डट जाते हैं॥

नहीं दूसरा ध्यान किसी का, शुक्ल ध्यान सब ध्याते हैं।
घाती-कर्म खपाकर 'केवल- ज्ञान' सभी वे पाते हैं॥
योगों का कर अन्त अन्त में, मुक्ति नगर में जाते हैं।
'सिद्ध' आठ गुण वाले बनकर, अजर-अमर कहलाते हैं॥
स्वर्गलोक से देव-देवियां, दौड़े-दौड़े आते हैं।
भक्ति सहित निर्वाण-महोत्सव, मिलकर वहां मनाते हैं॥
करते हैं गुण-कीर्त्तन उनका, जय-जय शब्द गुंजाते हैं।
कर कर्त्तव्य समाप्ति सभी वे, स्वर्गपुरी में जाते हैं॥

अध्याय समापन

इस चौथे अध्याय में, पाई 'शुक' ने मुक्ति।
'चन्दन' कर्मों की नहीं, शेष रही उपभुक्ति॥
ज्यों अपने गुरुदेव ने, सिद्ध किया था काम।
'शुक मुनि' ने भी उस तरह, जीत लिया संग्राम।
जो करना निश्चित किया, कर लेना वह कार्य
आर्योचित संस्कार में, हार नहीं स्वीकार्य
'चन्दन मुनि' की लेखनी, लिखती है उपदेश
जीवित रहतें जगत में, सत्य—धर्म— सन्देश
वसुन्धरा सुनती सदा, सुनता है आकाश
ये दोनों रहते सदा, "चन्दन मुनि" के पा

इति चतुर्थोऽध्यायः

५

अथ पंचम अध्याय

मंगलाचरण

प्रवर पंचमोऽध्याय का, "चन्दन" यह प्रारम्भ ।
रखा न रखने को कहा, श्रमण-धर्म ने दम्भ ॥
'सेलक' ने सेवन किया, जो कुछ यहां प्रमाद ।
अप्रमत्तता के लिये, उसको रखना याद ॥
एक बार जो भी हुई, पुनः न करिये भूल ।
गिरकर उठना सुधरना, आत्मा के अनुकूल ॥
"चन्दन" चारु चरित्र की, करिये नित स्वाध्याय ।
अपने लिये बचाव का, है यह श्रेष्ठ उपाय ॥

"सेलक मुनि"

कर्म खपाकर 'श्री शुक' गुरु जब, अपना त्याग शरीर गये।
राजऋषीश्वर 'सेलक' कुछ-कुछ, दिल में हो दिलगीर गये॥
क्योंकि उन्हें अपने गुरुवर का, पावन परम सहारा था।
गुरु की करुणा से ही इनका, चमका तेज सितारा था॥
गुरु जी ने ही इनको इतना, ज्ञान-ध्यान सिखलाया था।
गुरु जी ने ही मुक्ति नगर का, संयम पथ दिखलाया था॥
उनकी शिक्षा से ही त्यागा, झूठी मौज-बहारों को।
कैसे भूला जा सकता है, गुरु जी के उपकारों को॥
ममता मोह मिटाकर फिर भी, सावधान हो जाते हैं।
जगह-जगह पर घूम-घूमकर, दया-धर्म समझाते हैं॥
सुख-पूर्वक 'सेलक मुनि' करते, संयम व्रत का आराधन।
संयम व्रत के आराधन में, कब मिलते हैं सुख-साधन?
पहले सोते थे फूलों पर, अब पृथ्वी पर सोते हैं।
मणिमय थालों के स्थानों पर, काष्ठ-पात्र अब होते हैं॥
मन ने मांगा वही वस्तु तो, पहले मिल जाती तैयार।
अब जैसी भी मिल जाये, मन- कर लेता है वह स्वीकार॥
स्थान नियत है, समय नियत है, नियत वस्तु की मात्रा है।
दृष्टि यही है निभ जाये बस, यह संयम की यात्रा है॥

वाल-चणक-माषों का भोजन, कहलाता है 'अन्ताहार।'
लोगों के भोजन करने पर, बचा-खुचा वह 'प्रान्ताहार ।।
चुपड़ा हुआ नहीं वह 'रूखा'' थोड़ा सा वह 'तुच्छाहार।'
'अरस' असंस्कृत 'विरस' विगत रस, लेते मुनि मन समता धार।।
आवश्यकता उष्ण द्रव्य की, तो मिलती 'शीतल' आहार।
'उष्ण' उष्ण मिलता जब होती, शीतल द्रव्यों की दरकार ।।
भूख लगी हो जब खाने की, प्राप्त नहीं होता आहार।
प्यासा भले लगी हो निशि में, क्या मुनि कर सकते तिविहार ?
यह 'कालातिक्रान्त'[1] कहलाता, भूख कलेजा लेती चूंट।
प्यासे ही सोजाना पड़ता, मिली नहीं जब जल की घूंट ।।
भूख अधिक होने पर भी तो, थोड़ा सा खाकर रहना।
लावो, और कहीं से लावो, क्या ऐसे मुनि को कहना ?
प्यास लगी हो ज्यादा लेकिन, मिला अल्प पीने का जल।
नहीं 'प्रमाण सहित' मिलने का, अच्छा निकला करता फल ।।
ऐसा भोजन ऐसा पानी, हुआ न प्रकृति के अनुकूल।
जिससे मानो मुरझाया है, 'सेलक ऋषि' का काया-फूल।

---

१. कालातिक्कंतेहिय, पमाणाइक्कंतेहिय ।

सुख से उपचित सुख से पालित, सुख से पोषित मुनि की देह।
आज अनेक व्याधियों का वह, मानो एक होगया गेह ॥

रोग और इलाज

नहीं रोग होता है छोटा, रोग-सोग हैं सभी बड़े।
'चन्दन मुनि' अच्छा है इनसे, जब तक पाला नहीं पड़े ॥
शास्त्रों में गिनवाये केवल, षोडस रोगों के ही नाम।
एक रोग ही एक पलक में, कर देता है काम तमाम ॥
मरने से भी बढ़कर होता, रोगी को दुख जीने में।
भले जीभ में झलक न आये, झलका करता सीने में ॥
'व्याधि मंदिरं इदं शरीरं,' रोम-रोम के पीछे रोग।
भरने ही पड़ते हैं जितने, होते हैं काया के भोग ॥
रोग नहीं हों तो ये डाक्टर, और वैद्य क्या खायेंगे ?
दवा बनाने वाले पैसे, कैसे कहो कमायेंगे ?
अपना नुस्खा नहीं बताना, ऐसा होगा भाव नहीं।
अगर देह पर किसी रोग का, होगा कभी प्रभाव नहीं ॥

जहां देह है वहां रोग है, जहां रोग हैं वहां इलाज।
अंगुलियां क्या नहीं पहुंचतीं, जहां देह में आती खाज ॥

"सेलक मुनि" और रोग

'दाहज्वर' की विपुल वेदना, मानो होगा अब प्राणान्त ।
फिर भी 'सेलक' मुनिवर रखते, अपनी मनोभावना शान्त ॥
सूखी खुजली खुजलाने से, उठती बहुत असह्य जलन ।
मुश्किल-सा हो जाया करता, एक बार तो हलन-चलन ॥
हाय ! हाय ! उफ ! ओह! अरे रे! मुंह से निकला बोल नहीं ।
आसानी से गोडरेज के, ताले सकते खोल नहीं ॥
'सेलक' राजऋषीश्वर का तन, सूख गया है रोगों से ।
सूखा हुआ शरीर न छुपता, आते — जाते लोगों से ॥
इन रोगों के लिये अभी तक, औषधि ली न किया उपचार ।
रुग्णावस्था में भी मुनिवर, करते रहते उग्र विहार ॥

'सेलकपुर' में आये

चलते-चलते एक बार मुनि, 'सेलकपुर' में आते हैं ।
समाचार पा नगर निवासी, फूले नहीं समाते हैं ॥
सलिल सुगन्धित लेकर सारे, सब से प्रथम नहाते हैं ।
उत्तम वस्त्राभूषण से फिर, अपनी देह सजाते हैं ॥
श्री सद्गुरु के दर्शन करने, दौड़े-दौड़े आते हैं ।
चरण कमल में अपना-अपना, मस्तक सभी झुकाते ॥

दर्शन करने राजा 'मंडुक- जी' भी तभी सिखाते हैं।
गजारूढ हो धूम-धाम से, आकर दर्शन पाते हैं॥
सुनकर प्रवचन परम रसीला, लौटे सब आगारों को।
मुनि के सम्मुख 'मण्डुक' राजा, करता प्रगट विचारों को॥

दवा लीजिये

रोग ग्रस्त तन देख आपका, मेरे मन को ठेस लगी।
रूखा-सूखा खाने से ही, मानो व्याधि विशेष लगी॥
चरण कमल में विनति यही है, प्रभु ! स्वीकृति फ़रमाओ जी!
बाग दूर हैं अत : नगर में, आप अभी आजाओ जी !
स्थान यानशाला है सुन्दर, आसन वहां जमाओ जी !
बहुत विशाल स्थान है भगवन् ! कष्ट यहां क्यों पाओ जी !
लेना पाट-पाटले जो भी, आप और मुनि चाहो जी !
मिल जाएगा वहीं आप यदि- सूखा घास बिछावो जी !

नियमों के अनुसार चिकित्सा, भगवन् ! मैं करवाऊंगा।
दोष आपकी दिन-चर्या में, बिलकुल नहीं लगाऊंगा॥
औषध भैषज आदिक सब कुछ, दूंगा और दिलाऊंगा।
अशन-पान-खादम-स्वादिम भी, एषणीय बहराऊंगा॥

हर्षित होकर के गया, 'मंडुक' नृप आवास।
सन्तों पर हर भक्त का, होता है विश्वास॥
प्रातः होते ही किया, मुनि ने नगर प्रवेश।
सन्त पांचसौ साथ में, 'पंथक' प्रमुख हमेश॥
जहां 'यानशाल' सुखद, वहां विराजे आप।
पीठ-फलक प्रासुक लिये, लगे न जिससे पाप॥

रोग-निदान

अब 'मण्डुक' राजा बुलवाता, अच्छे वैद्यों को तत्काल।
आयुर्वेद ज्ञान का 'चन्दन', माना जाता सिन्धु विशाल॥
मुनि जी को दिखलाया, बोला- करो चिकित्सा तन-मन से।
स्वास्थ्य-लाभ हो जाता जल्दी, औषधियों के सेवन से॥
वैद्यों ने अब नाड़ी देखी, देखे रोगों के लक्षण।
लोग विचक्षण निर्णय लेते, अपनी प्रतिभा से तत्क्षण॥
अच्छा, अभी ठीक कर देंगे, ऐसी ही औषधि देंगे।
सन्तों की सेवा करने का, एक लाभ हम भी लेंगे॥

रोग-निदान सही होने से, औषधि करती काम तुरन्त।
कभी बिना औषधि के भी तो, हो जाता रोगों का अन्त॥

स्वास्थ्य-लाभ के बदले देखो, कभी रोग बढ भी जाते ।
यथा भूल जाने से रास्ते, कभी पथिक गोते खाते ॥
परामर्श करके वैद्यों ने, औषधियां अब बतलाई ।
बतलाई जातीं वे विधियां, जो हों अनुभव में आई ॥
रहे खुमारी तो बीमारी, मुनि जी की मिट जायेगी ।
इसीलिये मद करने वाली, दवा इन्हें दी जायेगी ॥

स्वास्थ्य लाभ

दी औषधियां पथ्य दिये सब, शीघ्र स्वास्थ्य का लाभ हुआ ।
भूल नहीं हो कहीं गणित में, फिर क्यों नहीं हिसाब हुआ ?
अशन-पान-खादिम-स्वादिम भी, नृपित इन्हें बहराते हैं ।
सेलक राजऋषीश्वर इस से, शान्ति मानसिक पाते हैं ॥
रोग सभी मिट गये मूल से, कंचन जैसा बना शरीर ।
पथ्य बदलने से औषधि की, यथा बदल जाती तासीर ॥
राजा खुश, खुश हुए सन्त सब, वैद्य लोग खुश-खुश सारे ।
अपनी पूर्ण सफलता पर खुश, होते 'चन्दन मुनि' प्यारे ॥

संयम में शैथिल्य

अच्छा खाना मिलता, मिलता- पूर्णतया आराम भला ।
नाम भला यह बना दवा का, मुनि ने माना काम भला ॥

रोग सभी मिट जाने पर भी, देते दवा खुमारी की।
खोट छुपाई जा सकती है, ओट बड़ी बीमारी की॥

खाना-पीना-सोना ही बस, मुनि के मन को भाता था।
प्रतिक्रमण,स्वाध्याय-ध्यान का, ध्यान नहीं अब आता था॥
मूर्च्छित, गृद्ध,प्रमत्त होगये, बने आप संसक्त हमेश।
फिर पार्श्वस्थ, कुशील हो गये, हुए विराधक आप विशेष॥
पीठ, फलक, सेज्जाओं का अब, प्रत्यर्पण भी हुआ कठिन।
नहीं साधु ठहरा करते हैं, एक स्थान में ज्यादा दिन॥
नहीं 'यानशाला' को छोड़ा, छोड़ा लेना दवा नहीं।
मन डरता है—उन रोगों की, लग जाये फिर हवा नहीं॥
कुछ भी मुझ से नहीं पूछना, मुझको कभी बुलाओ मत।
मेरे इस आराम-शयन में, विघ्न भला पहुँचावो मत॥
खाने दो पीने दो सुख से, और शांति से सोने दो।
संयम अगर मलिन होता है, फ़िक्र नही है होने दो॥
दर्शन, प्रवचन, चर्चा,वार्ता, लोग नहीं कर पाते हैं।
शिष्यों के दर्शन करके ही, श्रावक सब घर जाते हैं॥

गुरु जी दवा ले रहे हैं अब, गुरु जी करते हैं आहार।
गुरु जी अभी सौ रहे हैं क्यों- पूछ रहे हो बारम्बार॥

गुरु जी गुस्से हो जायेंगे, अगर आप जावोगे पास।
पास नहीं जाने में हित है, जमा दिया ऐसा विश्वास ॥

अपनी ओर से

एक समय था राज-ताज तज, संयम मुनि ने धारा था।
भरा हुआ रग-रग में देखो, बस वैराग्य करारा था ॥
'सेलकपुर' में आने का अब, काम होगया पूरा था।
और इलाज़ जरा भी उनका, अब तो नहीं अधूरा था ॥
आज शिथिलता देख त्याग में, मन हैरानी होती है।
उत्कट त्याग तपस्या उनकी, पानी-पानी होती है ॥
फिर भी नहीं विहार किया था, जो मर्यादा मुनियों की।
एक तरह से भूल चुके थे, जीवन चर्या गुणियों की ॥

मन का चढाव-उतार

कभी भोग में कभी त्याग में, कभी राग में रमता मन।
यही विचित्र दशा है मन की, मात्र यहाँ है दिग्दर्शन ॥
मन से साधुपना आ जाता, और चला भी जाता है।
मानव का यह मन माया से, कभी छला भी जाता है ॥

जब तक नौका है दरिया में, तब तक ख़तरा रहता साथ।
सकुशल पार उतर जाने पर, करिये आप अहं की बात॥
इतने बड़े साधु को भी इस- कमजोरी ने दबा लिया।
मजबूती को कमजोरी ने, बिन दान्तों ही चबा लिया॥
दुर्बलता के दिग्दर्शन से, मानवता का होता भान।
खतरा मिट जाया करता है, जब होजाता "केवलज्ञान॥"
ऊने चौदह पूर्वाभ्यासी, चार ज्ञान वाले मुनिवर।
पंच प्रमादों के सेवन से, कहां चले जाते मरकर?

अभी सो रहे हैं ये वापस, जग जाएंगे अभी-अभी।
'चन्दन मुनि' भूलें मानव से, हो जाती हैं कभी-कभी॥

साधु-समाज

शिष्य पांच सौ विनयी सारे, सेवा करते रात्रि दिन।
सेवा से टूटा करते हैं, कर्म-बन्ध जो किये कठिन॥
शास्त्र, संघ की मर्यादा का, मुनि-मण्डल करता पालन।
गुरु जी की अस्वस्थ दशा में, मुनि खुद करते संचालन॥
धर्म जागरण करते इक दिन, आपस में सब कहते हैं।
अपने गुरु जी संयम से अब, गहरे गाफिल रहते हैं॥

पीठ-फलग सेज्जा-संथारा, प्रत्यर्पित कर आयेंगे।
चाहे गुरु हो, शिथिलाचारी- का क्यों साथ निभायेंगे॥

"पन्थक" की उदारता

कहा सन्त 'पंथक जी' ने भी, सच्ची सम्मति सारों की।
कदर करूंगा आप सभी के, प्रेम-भरे उद्गारों की॥
मुझ से जो भी होगी सेवा, सदा बजाता जाऊंगा।
जैनागम अनुसार नियम मैं, चुस्त निभाता जाऊंगा॥

होते प्रातःकाल पूछकर, गये पांच सौ सारे थे।
'पंथक जी' ही उन में से इक, रहे वहां पर प्यारे थे॥
ग्लानि रहित सेवा करते हैं, 'पंथक' अपने गुरुवर की।
सेवा जीवन का मेवा है, अवधि नहीं संवत्सर की॥
जो भी द्रव्य चाहिये वह सब, लाकर कर देते हाज़र।
लिये साधु के खुले हुए ही, रहते सारे पुर के घर॥
औषधि देते समय-समय पर, देते जो भी होता पथ्य।
मिला नहीं लावूं मैं कैसे ? नहीं बोलते कभी असत्य॥
इतना ही तो मिला, अधिक मैं- क्या निपजा करके लावूं ?
जा आया मैं चार बार तो, बार-बार कैसे जावूं ?

देते नहीं गृहस्थी, सारे- देते - देते थक जाते ।
मिल जाता, जो दीक्षा लेते- समय यहां पर रख जाते ॥
यह ठण्डा है, और गरम है, यह कम है यह ज्यादा है ।
अभी नहीं पीछे देना है, देना आधा-आधा है ॥

सेवा करने वाले मुनि को, क्या-क्या सहना पड़ता है ।
रोगी नर पागल नर जैसे, औरों पर बड़-बड़ता है ॥
आप शुद्ध पालते संयम, नियमों का भी रखते ध्यान ।
गुरु जी की भी सेवा करते, देते सदा बहुत सम्मान ॥
गुरु जी के प्रति विनयभाव में, कमी न किंचित आने दी ।
गुरु की शासन की बातें भी, कहीं न बाहर जाने दीं ॥
लोगों में हो हीला निन्दा, ऐसा होने दिया नहीं ।
गुरु जी से भी सुना नहीं, यह- काम अभी तक किया नहीं ?
'पंथक' की सेवा से समझो, "सेलक" वापस संभलेंगे ।
अपनी भूलों का संशोधन, आप शीघ्र ही कर लेंगे ॥

चौमासी पक्खी

हुआ गुरु चौमासा आखिर, इक दिन वह भी बीत गया ।
बड़ी प्रीत से हरइक 'पंथक', श्रमण निभाता रीत गया ॥

कार्तिक-पूनम-सन्ध्या का जब, समय सुनहरी आया है।
'प्रतिक्रमण' की आज्ञा-कारण, गुरु-पद शीश लगाया है॥
खा-पीकरके पड़े हुए थे, लम्बी ताने निद्रा में।
पड़ा अचानक विघ्न बड़ा ही, यह अनजाने निद्रा में॥
आशु-रक्त होकरके बोले, कौन दुष्ट यह आया है?
छूकर पद जिसने निद्रा में, बड़ा विघ्न पहुंचाया है?

निद्रा, गुस्से और नशे में, पता नहीं क्या-क्या बोले।
जो गुस्से में बोलेगा वह, बोलेगा होले - होले?
जो मुख से निकला वह बोला, क्रोधी होता है अन्धा।
क्रोधी के गाली देने के, सिवा और क्या है धन्धा॥

"पंथक" का विनय

बने हुए भयभीत बड़े ही, मन ही मन में डोले हैं।
परम विनीत श्रमण 'पन्थक' यों, हाथ जोड़कर बोले हैं॥
हे भगवन्! यह शिष्य आपका, "पंथक" ही दुख-दाता है।
सुप्त सुगुरु के चरणों से जो, अपना शीश लगाता है॥
'प्रतिक्रमण' करना था मुझको, कार्त्तिक की चौमासी का।
चरण-स्पर्श कर अपने प्यारे, सद्गुरु शास्त्राभ्यासी का॥

"परम विनीत श्रमण "पन्थक" यों, हाथ जोड़ कर बोले हैं"

चरण-स्पर्श से कष्ट हुआ जो, क्षमा करो मेरा अपराध।
क्षमा मांगने से हो जाता, 'चन्दन' ठण्डा वाद-विवाद॥

ऐसी भूल न पुनः करूंगा, करुणा-सागर! क्षमा करें।
भले शिष्य के अपराधों को, भगवन्! आप न जमा करें॥
क्षमा-याचना करते छोटे, क्षमा-दान करते मोटे।
मोटे नहीं बड़े खोटे हैं, जो भूलों को ले घोटें॥

चांदनीय-चिन्तन

गुस्से पर गुस्सा करता जो, 'पंथक' की हो जाती भूल।
भूल सुधारी भी जाती है, बनकर गुरु जी के अनुकूल॥
गुरु जी की भूलें बतलाना, 'पंथक मुनि' का ध्यान नहीं।
इससे ऐसा नहीं समझना, भूलों का हो ज्ञान नहीं॥
गुरु जी स्वयं विज्ञ हैं तो फिर, समझेंगे ही अपने आप।
अपने आप समझने से ही, नहीं दुबारा होता पाप॥
मैं क्यों किसको टोकूं रोकूं, सेवा करना मेरा धर्म।
अधिक टोक से अधिक रोक से, नर हो जाता है बे-शर्म॥
अथवा करने वाले का ही, होता भूलों से सम्बन्ध।
कभी भूल बतलाने से भी, बोल-चाल हो जाती बन्द॥

नहीं किन्तु अब हरगिज भी मैं, कोई दोष लगाऊंगा
प्रायश्चित्त करूंगा, अपना- संयम चुस्त बनाऊंगा

प्यारे पंथक श्रमण ! यहां पर, हमें नहीं अब रहना है
एक नदी की भान्ति हमें भी, पावन बनकर बहना है

'मण्डुक' राजा जी को तब वे, पूछ वहां से जाते हैं
स्थान-स्थान पर दया-धर्म का, शुभ सन्देश सुनाते हैं
शिष्य इन्हों के समाचार जब, सारे ही वे पाते हैं
श्री सतगुरु के चरण कमल में, पहुंच सभी ही जाते हैं
करते हैं सब करणी निर्मल, संयम सफल बनाते हैं
वीतरागता के गुण गाते, अपना समय बिताते हैं

आखिर में 'गिरि पुण्डरीक' पर, जाकर ध्यान लगाते हैं
करके अनशन कर्म खपाकर, मोक्ष नगर में जाते हैं

समापन और शिक्षा

श्री थावर्चा शुक सेलक का, तीनों का समझो व्याख्यान
त्याग और वैराग्यभाव का, मानो है यह एक निधान।

...' की जिज्ञासा देखो तो, थावर्चा-सुत का वैराग्य ।
...लक ऋषि' का पुनः संभलना, क्या कमती मानें सौभाग्य ॥

लेखक का लाघव

...न्दी पद्य बनाकर मैंने, जनता को उपहार दिया ।
...ने मेरी आत्मा पर ही, किया अगर उपकार किया ॥
...भरी कथा में सुन्दरता जब, रचना में भी आयेगी ।
'चन्दन' दुगुनी सुन्दरता पर, जनता क्यों न लुभायेगी ॥
अगर कहीं पर एक शब्द भी, लिखा आगमों के प्रतिकूल ।
...ारे पाठक लोगो ! मुझको, माफ करोगे मेरी भूल ॥
... 'मिच्छामि दुक्कडं' करलूं, प्रभु सम्मुख करके वन्दन ।
लघुता में ही छुपी महत्ता, मान रहा यों 'मुनि चन्दन ॥'

रचना काल

'दो हजार चौबीस विक्रमी,' आश्विन मास सुहाया है ।
'वरनाला मण्डी' में मैंने, यह संगीत वनाया है ॥
जय हो-जय हो 'अरिहन्तदेव' की, श्री सद्गुरु की जय हो जय ।
जय हो जय श्री जैन-धर्म की, तीनों देते सुख अक्षय ...

लेखक की आशा

प्रवर पंचमोऽध्याय की, हुई यहां पर पूर्ति।
'चन्दन मुनि' की लेखनी, बनी स्फूर्ति की मूर्ति॥
जो था लिखना वह लिखा, रखा नहीं कुछ गुप्त।
गुप्त ज्ञान संसार से, होता क्या न विलुप्त?
'श्री थावर्चापुत्र' का, पूर्ण हुआ संगीत।
'चन्दन' चल सकता नहीं, आगम के विपरीत॥
'ज्ञाताधर्म कथाङ्ग' का, लिया गया आधार।
'चन्दन मुनि' ने कर दिया, भली भान्ति विस्तार॥
जो भी इस संगीत से, ग्रहण करेंगे सार।
भीम-भवाम्बुधि से न क्यों, वे उतरेंगे पार॥
ले लो प्यारी लेखनी! अब तुम भी विश्राम।
मीठा लग सकता नहीं, काम बिना आराम॥
जैसे योग दिया अभी, वैसे देना योग।
देते—लेते आ रहे, भले लोग सहयोग॥
'चन्दन' श्रमण परम्परा, चलती रहे हमेश।
देती रहे विशुद्धि का, नित्य नया संदेश॥

स्थानकवासी परम्परा में, गुरुवर मेरे 'पन्नालाल'।
'चन्दन मुनि' पंजाबी की इस, लघुकृति में है अर्थ विशाल॥

प्रशस्ति

गीतिका की ध्वनि

युग[1] बदलता है प्रतिक्षण, वक्त बीता जा रहा ।
जो गया वह फिर न आता, काल गति से गा रहा ।।
किन्तु जो नरदेव भू पर, अति सफल अवतार ले ।
दूर करते दुःख, भय, तृष्णा सकल संसार से ।।
मार्ग दिखलाते निरन्तर, विश्व को कल्याण का ।
विश्व-मङ्गल हेतु उनका, मार्ग है निर्वाण[2] का ।।
है अमित उपकार उनका, सकल ही संसार पर ।
बढ़ रहे हैं हम सभी, प्रभु-वचन के आधार पर ।।

---

१ समय २ शान्ति, निवृत्ति ।

ज्ञान की वह अमर-ज्योति, 'वीर' प्रभु 'महावीर' थे।
मुक्ति-दाता और त्राता, धीर थे—गम्भीर थे॥
वे विराजित हैं हमारे, हृत्कमल आस्थान में।
हम कहीं पर ही रहें पर, हैं उन्हीं के ध्यान में॥
चरम तीर्थङ्कर जिनेश्वर, 'वर्धमान' जिनेश जी।
वन्दनीया वन्दना विधि- साथ प्रात हमेश जी॥'

जैन शासन विजयकारी, चल रहा उनका प्रवर।
हो रहे आचार्य उनके, पट्टधर चिज्ज्योतिधर॥
जैन का उज्ज्वल सितारा, विश्व में चमका दिया।
पंथ जो भूले हुए थे, वह उन्हें दिखला दिया॥
आग्रहों से मुक्त सम्यग्— ज्ञान, दर्शन युक्त यह।
धर्म की आम्नाय सच्ची- क्लेश-द्वेष विमुक्त यह॥

धर्म-ज्योति धर्म-नेता, 'धर्मदास' गणी प्रवर।
सत्य स्थानकवासियों को, पूर्ण गौरव आप पर॥
सत्य का, दम का, दया का, नाद जग में था किया।
अन्धकाराच्छन्न युग में, ज्ञान-दीप जला दिया॥

संघ उनका यह यशस्वी, सत्य-सेवी चल रहा।
प्रमुख गुण-पूजा यहां बस, सत्य बल पर फल रहा॥

शिष्य उनके थे यशस्वी, 'योगराज' तपोधनी ।
पूज्य थे सच्चे तपस्वी, थे मनस्वी सद्गुणी ।।
सप्त व्यसनों का कराया, त्याग जन-जन को वहुत ।
धर्म का उद्योत कर, सब को दिखाया सत्य पथ ।।
आपके चारित्र की थी, छाप जन-जन पर अटल ।
जो शरण में आ गया वह, कर गया जीवन सफल ।।

'श्री हजारीमल्ल' मुनिवर, शिष्य उनके अति विमल ।
थे धनी छत्तीस गुण के, और निर्मल ज्यों कमल ।।
दान का सच्ची दया का, मर्म बतला कर प्रखर ।
ज्ञान-नौका में बिठा, तारे हजारों अज्ञ नर ।।

'लालचन्द' अमन्द मतिधर, शिष्य उनके सरल थे ।
धर्म के अवतार मानो, भावना से तरल थे ।।
प्राप्त कर श्रद्धा जगत की, वे अहं से दूर थे ।
वोलते जव भी वचन वे, शान्त-रस भरपूर थे ।।

'पूज्य गंगाराम जी' थे, शिष्य उनके ज्ञान-धर ।
धर्म का डंका वजाया, खेल करके जान पर ।।
समझलो सत्-ज्ञान की, गंगा वहाई जगत में ।
शान्ति समता जग उठी थी, आपके हर भगत में ।।

जैन-अम्बर में चमकते, जो सितारे एक थे।
'पूज्य जीवनराम जी,' उज्ज्वल विमल सुविवेक थे।।
शिष्य गंगाराम जी के, गांग[1]-सम पावन हृदय।
ज्ञान की गरिमा गज़ब थी, था अजब उनका विनय।।

घूम बागड़ और दिल्ली, मारवाड़ प्रदेश में।
कष्ट भारी थे सहे, नव क्षेत्र के परिवेष में।।
शान्त आत्मा परम त्यागी, लौ जली थी ज्ञान की।
कामना करते निरन्तर, विश्व के कल्याण की।।

'भगतराम' सुशिष्य उनके, भक्त प्रभु के थे अटल।
भक्ति-रस को बांट भक्तों- का किया जीवन सफल।।

अल्प भाषी, मधुर भाषी, भक्ति-रस में लीन थे।
सिंह सम निर्भय विचरते, धर्म-मार्ग प्रवीण थे।।

शिष्य उनके अति यशस्वी, 'पूज्य श्री श्रीचन्द जी'।
मुनि-धर्म कर स्वीकार तोड़े, जगत के सब बन्ध जी।

धर्म का उद्योत करके, नाश कर अज्ञान का
क्या करूं वर्णन भला मैं, उस अलौकिक शान का

---

१ गंगा-जल

संगीत श्री था

स्वर्ण जैसी शुद्ध आत्मा, लीन
शान्त हैं अक्लान्त हैं, अभ्रान्त

है उन्हीं की ही कृपा, वरदान
भाग्य का 'चन्दन' श्रमण के, पुष्प नित
भक्ति युत सत्प्रेम मुझको, आज ज
ज्ञान के व्याख्यान सुनकर, ज्ञान भी कु

इस संक्षिप्त प्रशस्ति से, परम्परा क
युग-युग तक होता रहे, 'चन्दन' रखि
यथातथ्य वर्णन किया, नहीं अहं का
चन्दन काव्य-सुगन्ध को, देता रहा
मेरा तेरा कुछ नहीं, सब कुछ मेरा
'चन्दन' करना है अगर, हमें विश्व कल्य
जिनशासन के रसिक हों, जग के सारे जी
'चन्दन' दृढ़तम होयगी, तभी काव्य की नींव

श्री स्थानकवासी जैन जगत के महानूकवि
ओजस्वीवक्ता और साहित्यकार

श्री चन्दन मुनि

का

साहित्य-परिचय

ए
वं

स्वर्ण जैसी शुद्ध आत्मा, लीन प्रभु की भक्ति में।
शान्त हैं अक्लान्त हैं, अभ्रान्त आत्मिक शक्ति में॥

है उन्हीं की ही कृपा, वरदान जीवन में मिला।
भाग्य का 'चन्दन' श्रमण के, पुष्प नित रहता खिला॥
भक्ति युत सत्प्रेम मुझको, आज जनता दे रही।
ज्ञान के व्याख्यान सुनकर, ज्ञान भी कुछ ले रही॥

इस संक्षिप्त प्रशस्ति से, परम्परा का ज्ञान।
युग-युग तक होता रहे, 'चन्दन' रखिये ध्यान॥
यथातथ्य वर्णन किया, नहीं अहं का लेश।
चन्दन काव्य-सुगन्ध को, देता रहा हमेश॥
मेरा तेरा कुछ नहीं, सब कुछ मेरा मान।
'चन्दन' करना है अगर, हमें विश्व कल्याण॥
जिनशासन के रसिक हों, जग के सारे जीव।
'चन्दन' दृढ़तम होयगी, तभी काव्य की नींव॥

श्री स्थानकवासी जैन जगत के महान्कवि
ओजस्वीवक्ता और साहित्यकार

श्री चन्दन मुनि

का

साहित्य-परिचय

ए
वं

"श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ का सौभाग्य है कि उसमें श्री चन्दनमुनि जी जैसे विद्वान्, वक्ता, गंभीरस्वभावी, कविरत्न मुनि सुशोभित हैं। इन्होंने—'संगीत भगवान् पार्श्वनाथ', 'संगीत जम्बूकुमार', 'संगीत-इपुकार', संगीत संजयराजऋषि', संगीत सती दमयन्ती, संगीत गजसुकुमाल, 'संगीत सबला नारी', 'संगीत चार पवित्र चरित्र', 'संगीत निर्मोही नृप' आदि ऐतिहासिक चरित्रों की रचना की है।

यह सभी साहित्य मुमुक्षु आत्माओं के लिए नवोत्साह, नई चेतना, नई उमंगें प्रदान करता है। सुशिक्षित लोगों के दिल और दिमाग को पौष्टिक भोजन देता है। साधारण तथा पठित जनता के लिए सरल, सुबोध काव्यरूप होने से लाभप्रद है। अतः धर्मानुरागी एवं साहित्य प्रेमी बन्धुओं को—भगिनियों—को इस साहित्य से लाभ प्राप्त करना चाहिए।"

—आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी

श्री चन्दनमुनिजी स्थानकवासी जैन समाज की एक विभूति है। वास्तव में उनका दायरा बड़ा विशाल है, जैन अजैन सभी धर्मश्रद्धालु व्यक्ति उनके सात्विक स्नेहमय व्यवहार धर्ममय निर्मल जीवन एवं मधुर प्रेरक काव्य कौशल के प्रति आकृष्ट है।

अपने प्रेरणाप्रद संगीत एवं काव्य साहित्य के द्वारा श्री चन्दन मुनिजी ने धार्मिक वर्ग पर असीम उपकार किया है।

—महास्थावर प्रवर्तक पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी म० [आगरा]

श्री चन्दन मुनिजी का साहित्य : एक परिचय

☐ जैन कथा साहित्य के अमरगायक श्री चन्दन मुनिजी की काव्य प्रतिभा का आकलन करना सागर की अथाह जलराशि को चुल्लू में भर कर बताना है, हिमालय की असीम ऊँचाई को भुजा ऊँची उठाकर दिखाना है।

उनकी कविता, सविता (सूर्य) की तरह स्वयं प्रकाशी है, सरिता (नदी) की तरह प्रवाहमयी है और वनिता (नारी) की भांति मृदुता तथा सहज लालित्य से युक्त है। उनकी भाषा उर्दू-संस्कृत मिश्रित चालू हिन्दी है। शैली वर्णन एवं विवेचना प्रधान! रचनाओं का विषय मुख्यतः जैन आगम एवं पुराण साहित्य में वर्णित महापुरुषों का चरित्र तथा विविध प्रतीकों के द्वारा जीवन को सुखी बनाने की शिक्षा देना है। मानवीय चरित्र का भावनापक्ष उनकी कविता में सजीव हुआ है, तो चरित्रपक्ष अत्यन्त उज्ज्वलता के साथ उजागर हुआ है।

मुनिश्री की रचनाएँ संख्या की दृष्टि से लगभग २५-३० होगी। अब तक प्रकाशित पुस्तकों की पृष्ठ संख्या लगभग ६ हजार के करीब पहुँच गई है। इतनी बड़ी संख्या में काव्य का लेखन और प्रकाशन बहुत कम भाग्यशाली कवियों का होता है और विशेषता तो यह है कि मुनिश्री की सभी रचनाएँ अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। प्रायः सभी रचनाओं के दो-दो, तीन-तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मुनिश्री की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उन पर लोकमत की एक झलक यहाँ प्रस्तुत है।

१. संगीत भगवान पार्श्वनाथ

इस काव्य में भगवान पार्श्वनाथ के जीवन का बहुत ही सुन्दर एवं ऐतिहासिक वर्णन है। भगवान के पूर्व भवों के वर्णन के साथ ही उनकी धर्मक्रांति और अद्भुत तितिक्षा का बड़ा रोमांचकारी वर्णन किया गया है। पुस्तक के लगभग ४०० पृष्ठ हैं और १० विभिन्न प्रकार के भावचित्र हैं। मूल्य बहुत ही कम ३) रु०। पक्की जिल्द।

२. संगीत श्री जम्बूकुमार

वैराग्यमूर्ति श्री जम्बूकुमार का प्रेरणाप्रद जीवन विविध छन्दों एवं राग-रागनियों में गुंफित कर कवि ने इस कृति में कलम तोड़ दी है। जम्बूकुमार का जीवन वृत्त वैसे ही बड़ा रोचक है, फिर कवि ने तो उसमें चार चांद लगा दिए हैं। पाठक पढ़ते-पढ़ते झूमने लगता है।

पृष्ठ संख्या ६००, प्रेरणादायी ३२ चित्र, पक्की जिल्द। मूल्य मात्र ३) रु० जो कि लागत से भी आधा है।

३. संगीत सती दमयन्ती

महाभारत कालीन उज्ज्वल चरित्र। नल और दमयंती का हृदयस्पर्शी कथानक विविध छन्दों में निबद्ध है।

पृष्ठ ३७०, चित्र २०। मूल्य ३) रु० पक्की जिल्द।

४. संगीत पवित्र चार चित्र

इस पुस्तक में चार प्रेरणादायी चरित्रों का भावपूर्ण अंकन हुआ है। भाषा शैली मधुर प्रवाहपूर्ण।

चार चरित्र हैं—

१. संगीत इषुकार।
२. संगीत संजय राजर्षि।
३. संगीत मृगापुत्र
४. संगीत अनाथी मुनि

पृष्ठ संख्या ४८० पक्की जिल्द : मूल्य सिर्फ ३) रु०

५. संगीत श्री धन्ना शालिभद्र

जैन परम्परा के दो महान साधक भ० महावीर काल के उज्ज्वल नक्षत्र महान तपस्वी धन्ना और शालिभद्र का रोचक जीवन।

पृष्ठ संख्या ५७०, पक्की जिल्द, चित्र संख्या २८, मूल्य ४) रु० मात्र।

६. अमरता के दो राही

अमरता के पथ पर बढ़ने वाले दो महान वीर पथिकों का जीवन। भाव-विह्वल बना देने वाला कथा काव्य।

दो राही हैं—

(१) श्री मेघकुमार,

(२) श्री थावच्चापुत्र ।

पृष्ठ संख्या ३५०, पक्की जिल्द, मूल्य ३) रु०

७. संगीत सती सुरसुन्दरी

प्राचीन जैन काव्यों में वर्णित महासती सुरसुन्दरी का शीलप्रधान, बुद्धि की विलक्षण चातुरी से युक्त चरित काव्य ।

पृष्ठ ३२५ । पक्की जिल्द । मूल्य ३) रु० चित्र १२ ।

८. संगीत महासती मदनरेखा

शीलधर्म की जीती जागती मूर्ति महासती मदनरेखा का पावन जीवन चरित्र । अत्यन्त प्रवाहपूर्ण रोचक भाव भाषा में ।

पृष्ठ संख्या ३८४, चित्र ३३, पक्की जिल्द । मूल्य ३) रु० ।

९. गीतों की दुनियाँ

विविध विषयों पर रंग-बिरंगे भाव-चित्र । संगीत की मधुरिमा, भावों की वेधकता । विषय की ताजगी ।

३१३ संगीतों का मन भावना गुलदस्ता ।

पृष्ठ संख्या ३७० । मूल्य २) रु०

१०. महासती चन्दनबाला

भ० महावीर के शासन की अमर चन्द्रिका, क्षमा, सहिष्णुता और शील की प्रतिमा महासती चन्दनबाला का दिल को हिला देने वाला रोचक और भावपूर्ण चरित्र काव्य ।

पृष्ठ संख्या ३२६, चित्र १५ । पक्की जिल्द । मूल्य ३) रु० ।

११. संगीतों की दुनियाँ

जैन साहित्य के भाव प्रधान २७ चरित्रों का काव्य की ललित भाषा में सुमधुर संगीतों में गुम्फन ।

पृष्ठ संख्या ५१०, चित्र ३२, पक्की जिल्द । मूल्य ३) रु०

१२. बारह महीने

बारह महीनों को प्रतीक बनाकर विविध दृष्टियों से नैतिक उपदेश एवं शिक्षा देने वाले मनहर छन्दों में बड़ा ही ललित और ओजस्वी काव्य।

पृष्ठ संख्या १५०, पक्की जिल्द। मूल्य १)५० रु०।

१३. चन्दन दोहावली

दीखने में छोटे लेकिन गम्भीर भाव और मार्मिक शब्दावली में श्री चन्दन मुनि के कई हजार दोहों का विशाल संग्रह।

पृष्ठ संख्या ३६८, पक्की जिल्द। मूल्य २) रु०।

१४. मनहर माला

विविध उपदेश प्रधान मनहर छन्दों का संग्रह। नया संस्करण शीघ्र ही होने वाला है। इनके अतिरिक्त—श्री मेघकुमार, संजय राजर्षि, संगीत इषुकार स्वतन्त्र रूप से भी प्राप्त हो सकते हैं।

सभी पुस्तकों का मूल्य लागत से आधा रखा गया है।

ग्रन्थों को प्राप्त करने का मुख्य केन्द्र है—

वैद्य अमरचन्द जैन

पो० **बरनाला** (जिला--संगरूर 'पंजाब')

□ कवि श्री चन्दन मुनि के साहित्य पर पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा–

पुस्तक—संगीत श्री जम्बूकुमार

मानव का जीवन एक अखण्ड यात्रा है। यात्रा में शीत भी मिलता है, ताप भी, धूप भी मिलती है, छाँह भी। तो कहीं शूल भी चुभते हैं, कहीं फूल अपनी मदिर सुरभि से क्लांत श्रांत पथिक को विश्रांति भी देते हैं। और इन विविध आयामों को पार करता हुआ जीवन-पथ का पथिक अपनी मंजिल, अपने गन्तव्य पर बढ़ता जाता है। मनुष्य के जीवन में आसक्ति के मोह-जाल कभी प्रवृत्तिमार्गी बनाकर मनुष्य को सांसारिक बाह्य-बन्धनों में फाँस बेकस बना लेते हैं। वहाँ कंचन और कामिनी के मोहपाश उसे इस तरह मदमत्त कर देते हैं कि वह उस मदिर धुंधलके में अपना लक्ष्य, चिन्तन—सब कुछ खो बैठता है। किन्तु उस

मदिर धुंधलके के बीच से कभी ज्ञान की तेजोमयी दीप्ति फूट पड़ती है, सुप्त-मानस जाग पड़ता है। और तब, मनुष्य अपनी मोह-पाश-बद्धता की विवशता पर पश्चात्ताप करने लगता है। महान् पुरुष पश्चात्ताप मात्र करके ही नहीं रह जाते बल्कि एक सशक्त झटके से उस जाल को खण्डित कर जीवन यात्रा का जाग्रत पथिक बनकर शुभ-शुद्ध जीवन-पथ की ओर अप्रतिहत गति से बढ़ चलते हैं।

'संगीत जम्बू कुमार' इक्कीस सर्गों में विरचित एक ऐसा ही उपदेशपूर्ण—जिसमें जीवन की सार्वभौमिकता, सार्वग्राहिणी शक्तिपूर्ण सत्य की शाश्वतता की अमर कीर्तिगाथा का संयोजन काव्यमाधुरी द्वारा किया गया है। काव्य ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में—गुरु की मर्यादा एवं महिमा का वर्णन करते हुए, एक प्रकार से काव्य प्रणयन की प्राचीन स्तुति परम्परा को अपनाया गया है। पति-पत्नी संवादों आदि के द्वारा मुनिश्री ने कथा के स्पष्टीकरण का बड़ा ही सहज, सुगम मार्ग अपनाया है।

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जीवन-यात्रा के सोपान की निदर्शना करके मुनिश्री ने मोह, माया, ममता पर वीतरागता की विजय दुंदुभि का उद्घोष किया। मुनिराजों—भवदेव-भावदेव, राजकुमार-शिवकुमार, मुनि सागरदत्त प्रभृति का जीवन चित्रित करके जीवन-उत्थान के सम्यक् सोपानों का सुन्दर क्रम उपस्थित किया गया है।

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'—सर्ग में मुनिश्री ने मन को जीतने का इतना सुन्दर रास्ता दिया है कि मन बार-बार नत हो जाता है—

"जो विषय-वासना तज करके,
और नाम प्रभू का भज करके,
अय चन्दन, मन को वश करता।
वह पुरुष बड़ा बलकारी है..."

वस्तुतः प्रभु के चरणों में ध्यान लगाकर ही मन को वश में किया जा सकता है, इससे इतर कोई सरल मार्ग नजर नहीं आता।

उत्तरार्द्ध में चन्दन मुनि जी ने जम्बूकुमार के सम्पूर्ण जीवन क्रम को बड़े ही प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किया है। आठ नारियों पर जम्बूकुमार की विजय को दिखलाकर पुरुष के पौरुष एवं जीवन के जीवंतमार्ग की शाश्वतता का बड़ा ही मनोहारी चित्रण मुनि जी ने किया है। पुनश्च, नारी महिमा का वर्णन भी कम न किया गया है। वह नारी का अपने हाथों से श्रृंगार रचाते हैं। श्रृंगार में उसे अहिंसा का 'हार', करुणा का 'कंगन', सत्य-शील का 'अंजन', ज्ञान की 'गोखरू' क्षमा की 'छाप', विनय की 'बिन्दी', अकल की 'आरसी', गुण का 'गजरा', प्रेम की 'पहुँची', कीर्ति के 'कर्णफूल', जप का 'जूगनू', तपस्या का 'तिलक', न्याय का 'नुपूर', वीतराग भक्ति की 'बाली', चतुराई का 'चूड़ा', मौज की 'मेंहदी', समझ की 'सिंगार पट्टी', प्रण की 'पाजेब', वे-गम के 'बिछुवे', शुभकर्मों के 'कड़े', पहनाकर मनस्वी कवि ने अपने काव्य आंगन में खड़ा किया, वस्तुतः नारी का अप्रतिम गौरव चन्दन के सौरभ से सुवासित मलय-समीर-सा मुस्कुरा उठा।

अन्त में 'दीक्षा और कल्याण' सर्ग में कवि ने जम्बू स्वामी को कल्याण पथ का पथिक बताकर आज के स्वार्थरत संसार की दुर्बोध समस्याओं का एक शाश्वत समाधान प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र नीति वाक्यों का संगुंफन कवि की गहन अनुभूति को स्पष्ट करता है।

ग्रन्थ आज के युग-जीवन के लिए वस्तुतः अपरिहार्य एवं अनिवार्यतः अध्ययन, मनन एवं जीवन में आकलन के लिए अपूर्व कृति है।

—श्री अमर भारती, अक्तूबर १९६९

☐ चन्दन दोहावली

'चन्दन दोहावली' पढ़ते ही एक सूक्ति याद आ जाती है 'चन्दन की चुटकी भली' चन्दन तो चुटकी भर अच्छा और जब ढेर सारा चन्दन ही चन्दन मिल जाय, मलय-गिरि के वन पर्वतों की तरह जहाँ देखो वहाँ चन्दन के वृक्ष अपनी भीनी मीठी महक लिए खड़े हों, तो उस आनन्द का क्या पार ? कविरत्न श्री चन्दन मुनि की प्रस्तुत कृति पढ़ते हुए उसी प्रकार का आनन्द हृदय के कण-कण में उमड़ आता है। मुनि जी स्थानकवासी जैन समाज के सन्त हैं, किन्तु

उनकी गणना अखिल भारतीय क्षेत्र के कवियों में की जाती है। उनकी जोशीली कविताएँ, चुटीली उक्तियां और शिक्षा एवं नीति से भरे चौबोले आज हर पाठक की चेतना को गुदगुदाकर जागृत कर रहे हैं। उन्होंने अनेक चरित काव्य भी लिखे हैं। भजन, स्तवन भी लिखे हैं। किन्तु उन सबमें प्रस्तुत कृति अपना कुछ अनूठा ही रूप लिए हुए है।

भारतीय संस्कृति की मूलधारा को स्पर्श करने वाले ये दोहे अपने-अपने विषय में इतने मार्मिक, वेधक और शिक्षाप्रद बन पड़े हैं कि पढ़ते ही मन में एक गुदगुदी पैदा हो जाती है। कहीं-कहीं तो लगता है लेखक ने कलम ही तोड़ दी है।

सामाजिक कुरीतियाँ, अंग्रेजी प्रेम, फैशन परस्ती, विवाह में लेन-देन, भारतीय नारी, विद्यार्थी आदि पचासों विषयों पर कवि ने बड़े मुक्त हृदय से चोट दोहे लिखे हैं। कुछ एक का नमूना देखिए—

इंगलिस है हर काम में हिन्दी से परहेज !
'चंदन' हिन्दी बन चले एक तरह अँग्रेज।
हिन्दी तज, हिन्दी करें, जो इंगलिश से प्यार,
अय 'चन्दन' वे क्यों नहीं हिन्दी के गद्दार !

इसी प्रकार विद्यार्थी वर्ग को उद्‌बुद्ध करता हुआ कवि कहता है—

वैरी विद्या के बड़े तोड़ फोड़ हड़ताल।
दोनों ही से दूर तुम रहना 'चन्दनलाल ॥

कवि का संत रूप एवं राष्ट्रीय तथा समाज सुधारक रूप इन दोहों में पूरा-पूरा प्रतिबिम्बित हो रहा है।

काव्य प्रेमी जनों, लेखकों, वक्ताओं, स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं के लिए पुस्तक उपयोगी तथा संग्रहणीय है।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

—श्री अमर भारती, सितम्बर १९७१

☐ चन्दन-दोहावली

प्रस्तुत पुस्तक में मुनिजी के दोहों की संकलना की गई है। दोहे रंग-विरंगे और मजेदार हैं। करीब-करीब जीवन-जगत् के सभी स्तरों से सम्बन्धित विचारों का दर्शन इन दोहों में हो जाता है। लगता है, मुनिजी सैद्धान्तिकता के साथ-साथ व्यावहारिकता के निर्वाह में पटु हैं। जन-मानस के लिए पुस्तक उपयुक्त और ज्ञानवर्द्धक है। प्रारम्भ में सम्पादक की भूमिका अच्छी है। ऐसी अनमोल पुस्तक के प्रकाशन के लिए कवि, सम्पादक एवं प्रकाश को अनेक वधाइयाँ। मुखपृष्ठ का रेखाचित्र, छपाई एवं बँधाई सुन्दर है।

☐ संगीत इषुकार-कथा

यह पुस्तक भी श्री मुनिजी की है, जिसमें इषुकार-कथा के सम्पूर्ण प्रसंगों को विभिन्न गेय ताल-धुन में उपस्थित किया गया है। लगता है, कविजी का ज्ञान संगीत में भी गहरा है। जन-साधारण में इन गीतों के पाठ से उद्बोधन किया जा सकता है। कहीं-कहीं वस्तुतः कवि की विरल अनुभूतियाँ स्वाभाविक अभिव्यक्ति से निखर उठी हैं। ऐसी संग्रहणीय पुस्तक के प्रकाशन के लिए कवि, प्रकाशक एवं सम्पादक को अमित वधाइयाँ। सुराना जी का सम्पादन और प्राक्कथन क्रमशः सुन्दर और पठनीय है। साथ ही अन्य लोगों के अभिमत और कवि जी के प्रति श्रद्धा के उद्गार मार्मिक हैं। पुस्तक की छपाई एवं कलेवर सुष्ठु है।

—'श्रमण' मई, १९७२

☐ भगवान पार्श्वनाथ

श्री चन्दन मुनि जी महाराज जहाँ संयमाधिपति मुनीश्वर हैं, जहां वे तत्त्वदर्शी ऋषि हैं, वहाँ वे जीवन के निर्माता, साहित्य स्रष्टा स्वयम्भू कवि भी हैं, इस सत्य के दर्शन उनकी प्रत्येक रचना में कभी भी किये जा सकते हैं। 'भगवान पार्श्वनाथ' भी ऐसी रचनाओं में से एक है।

संगीत मनुष्य को प्रिय है और अपने महापुरुषों के दिव्य जीवन से प्रेरणा की परिपाटी भी मनुष्य को प्रिय रही है। दोनों का संयोग तो मनुष्य सुगन्धित

स्वर्ण समझकर ग्रहण करता आया है। कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज की प्रस्तुत रचना इसी प्रकार का सुगन्धित स्वर्ण है जो किसी खान से नहीं भगवती सरस्वती के वरद हस्त के प्रसाद से युक्त मुनिश्री की अमर लेखनी से उद्भूत हुआ है।

प्रस्तुत रचना पढ़ते समय मुझे ऐसी अनुभूति हो रही थी, मानो मैं संगीत की मधुरता, चरित्र की पवित्रता और तृप्ति की अजस्रता की त्रिवेणी में स्नान कर रहा हूँ।

२३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के अनेक चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं और सबका अपना महत्त्व है, परन्तु उन चरित्रों की मणिमाला में यदि प्रस्तुत रचना को सुमेरु कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

मैं प्रत्येक काव्य-रसिक से इस रचना के पठन का विशेष आग्रह करता हूँ।

—'आतम रश्मि' २० सितम्बर, १९७२

☐ भगवान पार्श्वनाथ (सचित्र)

पुस्तक वीर छन्द के सुललित पद्यों में निबद्ध है। बीच-बीच में दोहा, मनहर छन्द तथा अन्य अनेक गीत रचनाएँ भी हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के महनीय जीवन को मुनिजी ने इतने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है कि मन सहसा मुग्ध हो जाता है। रचना सशक्त एवं प्रभावोत्पादक है। पाठक की रुचि का तार आखिर तक झंकृत रहता है, जो कवि की कृति को यशस्वी बनाने का प्रमुख हेतु है। श्री मुनि जी जैन मुनियों में एक जाने-माने, यशस्वी कवि एवं प्रवक्ता है। पुस्तक पर श्री विजय मुनि शास्त्री की सुन्दर भूमिका भी पठनीय है।

☐ संगीत श्री मेघकुमार (सचित्र)

राधेश्याम रामायण की सुप्रसिद्ध गीत शैली में प्रस्तुत रचना है। करुणामूर्ति मेघकुमार का जीवन प्रवाहपूर्ण एवं भावना प्रधान शैली से प्रस्तुत किया है। कविरत्न जी अपने प्रतिपाद्य विषय को इतने कलात्मक एवं आकर्षक पद्धति में प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के मनश्चक्षुओं के समक्ष एक सजीव चित्र

☐ चन्दन-दोहावली

प्रस्तुत पुस्तक में मुनिजी के दोहों की संकलना की गई है। दोहे रंग-विरंग और मजेदार हैं। करीब-करीब जीवन-जगत् के सभी स्तरों से सम्बन्धित विचारों का दर्शन इन दोहों में हो जाता है। लगता है, मुनिजी सैद्धान्तिकता के साथ-साथ व्यावहारिकता के निर्वाह में पटु हैं। जन-मानस के लिए पुस्तक उपयुक्त और ज्ञानवर्द्धक है। प्रारम्भ में सम्पादक की भूमिका अच्छी है। ऐसी अनमोल पुस्तक के प्रकाशन के लिए कवि, सम्पादक एवं प्रकाश को अनेक बधाइयाँ। मुखपृष्ठ का रेखाचित्र, छपाई एवं बँधाई सुन्दर है।

☐ संगीत इषुकार-कथा

यह पुस्तक भी श्री मुनिजी की है, जिसमें इषुकार-कथा के सम्पूर्ण प्रसंगों को विभिन्न गेय ताल-धुन में उपस्थित किया गया है। लगता है, कविजी का ज्ञान संगीत में भी गहरा है। जन-साधारण में इन गीतों के पाठ से उद्बोधन किया जा सकता है। कहीं-कहीं वस्तुतः कवि की विरल अनुभूतियाँ स्वाभाविक अभिव्यक्ति से निखर उठी हैं। ऐसी संग्रहणीय पुस्तक के प्रकाशन के लिए कवि, प्रकाशक एवं सम्पादक को अमित बधाइयाँ। सुराना जी का सम्पादन और प्राक्कथन क्रमशः सुन्दर और पठनीय है। साथ ही अन्य लोगों के अभिमत और कवि जी के प्रति श्रद्धा के उद्‌गार मार्मिक हैं। पुस्तक की छपाई एवं कलेवर सुष्ठु है।

—'श्रमण' मई, १९७२

☐ भगवान पार्श्वनाथ

श्री चन्दन मुनि जी महाराज जहाँ संयमाधिपति मुनीश्वर हैं, जहां वे तत्त्वदर्शी ऋषि हैं, वहाँ वे जीवन के निर्माता, साहित्य स्रष्टा स्वयम्भू कवि भी हैं, इस सत्य के दर्शन उनकी प्रत्येक रचना में कभी भी किये जा सकते हैं। 'भगवान पार्श्वनाथ' भी ऐसी रचनाओं में से एक है।

संगीत मनुष्य को प्रिय है और अपने महापुरुषों के दिव्य जीवन से प्रेरणा की परिपाटी भी मनुष्य को प्रिय रही है। दोनों का संयोग तो मनुष्य सुगन्धित

स्वर्ण समझकर ग्रहण करता आया है। कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी महाराज की प्रस्तुत रचना इसी प्रकार का सुगन्धित स्वर्ण है जो किसी खान से नहीं भगवती सरस्वती के वरद हस्त के प्रसाद से युक्त मुनिश्री की अमर लेखनी से उद्भूत हुआ है।

प्रस्तुत रचना पढ़ते समय मुझे ऐसी अनुभूति हो रही थी, मानो मैं संगीत की मधुरता, चरित्र की पवित्रता और तृप्ति की अजस्रता की त्रिवेणी में स्नान कर रहा हूँ।

२३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के अनेक चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं और सबका अपना महत्त्व है, परन्तु उन चरित्रों की मणिमाला में यदि प्रस्तुत रचना को सुमेरु कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

मैं प्रत्येक काव्य-रसिक से इस रचना के पठन का विशेष आग्रह करता हूँ।

—'आत्म रश्मि' २० सितम्बर, १९७२

☐ भगवान पार्श्वनाथ (सचित्र)

पुस्तक वीर छन्द के सुललित पद्यों में निबद्ध है। बीच-बीच में दोहा, मनहर छन्द तथा अन्य अनेक गीत रचनाएँ भी हैं। भगवान् पार्श्वनाथ के महनीय जीवन को मुनिजी ने इतने सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है कि मन सहसा मुग्ध हो जाता है। रचना सशक्त एवं प्रभावोत्पादक है। पाठक की रुचि का तार आखिर तक झंकृत रहता है, जो कवि की कृति को यशस्वी बनाने का प्रमुख हेतु है। श्री मुनि जी जैन मुनियों में एक जाने-माने, यशस्वी कवि एवं प्रवक्ता हैं। पुस्तक पर श्री विजय मुनि शास्त्री की सुन्दर भूमिका भी पठनीय है।

☐ संगीत श्री मेघकुमार (सचित्र)

राधेश्याम रामायण की सुप्रसिद्ध गीत शैली में प्रस्तुत रचना है। करुणामूर्ति मेघकुमार का जीवन प्रवाहपूर्ण एवं भावना प्रधान शैली से प्रस्तुत किया है। कविरत्न जी अपने प्रतिपाद्य विषय को इतने कलात्मक एवं आकर्षक पद्धति से प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के मनश्चक्षुओं के समक्ष एक सजीव चित्र

ही उपस्थित हो जाता है। इतनी सुन्दर भव्य रचना के लिए शतशः धन्यवाद। उपाध्याय श्री अमर मुनिजी की भूमिका भी पुस्तक की शोभाश्री को द्विगुणित करती है।

—श्री अमर भारती, जौलाई, १९७३

☐ संगीत श्री धन्ना शालिभद्र (सचित्र)

श्री चन्दन मुनि जी म० युगदृष्टा महाकवि हैं, वे समाज में नैतिकता एवं धार्मिकता के प्रचार और प्रसार की मंगल-कामना से प्रेरित होकर अपने उपदेशामृत को संगीत-माधुरी के माध्यम से जनता को पिलाते रहते हैं। उनकी इसी अमृत-पान करवाने की पुण्य भावना ने प्रस्तुत कृति समाज को समर्पित की है जिसमें धन्ना और शालिभद्र जैसे महान भोगियों की महान त्यागियों के पुण्य-पथ पर आने की घटना प्रदर्शित की गई। कथा के माध्यम से समाज को बदलने का, उसे पुण्य-पथ पर लाने का संयममय प्रयास करने में श्री चन्दन मुनिजी की लेखनी अत्यन्त सफल रही है। सरल भाषा, सुन्दर उद्बोधक भाव, संगीत माधुरी और सुन्दर सचित्र छपाई पुस्तक की अपनी विशेषताएँ हैं। हम प्रस्तुत रचना का अभिनन्दन करते हैं।

तिलकधर शास्त्री

—'आत्मरश्मि' लुधियाना, अगस्त १९७४

☐ संगीत महासती मदनरेखा

'उत्तराध्ययन-सूत्र' जैन संस्कृति का विश्व कोष है। उसी सूत्र के नवम अध्ययन को राजर्षि नमि के परिचयार्थ श्री कमल संयमोपाध्याय जी ने जो सतीत्व-मण्डित मदनरेखा का पावन चरित्र अंकित किया है वह सामान्य-सा घटनात्मक परिचय है, परन्तु श्री चन्दन मुनि जी की तपस्विनी लेखनी ने पात्रों के अन्तस की गहराइयों में उतर कर जो मनोविश्लेषण-प्रधान घटना-वैचित्र्य से युक्त, सांस्कृतिक महत्ताओं से मण्डित एवं आदर्श प्रधान संगीतात्मक कथानक प्रस्तुत किया है उसने प्राचीन कथानक को भी सर्वथा नवीन मौलिक रूप प्रदान कर दिया है। प्रत्येक चरित्र में अपना वैशिष्ट्य होने के नाते सभी प्रकार के पाठकों के लिए इसमें उचित पठनीय सामग्री प्राप्त होती है।

बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, अनेक चित्र एवं कलात्मक साज-सज्जा से युक्त लगभग ३८० पृष्ठों की पुस्तक सर्व-पठनीय एवं सर्व-संग्रहणीय है।

तिलकधर शास्त्री

"आत्मरश्मि" लुधियाना, १ सितम्बर १९७४

विद्वान् मुनिवरों एवं विचारकों की सम्मतियाँ

संगीत महासती मदनरेखा

प्रस्तुत पुस्तक में कविता धाराप्रवाह से बह रही है। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि कथा से सम्बद्ध छोटे से छोटे अंश भी न छूटने पाएं। काव्य में कथानक अत्यन्त ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह अल्प ही होगी। ३६४ पृष्ठों की यह पुस्तक एक महान् आदर्श काव्य है। कवि जी के उच्चतम जीवन से हमें भी लाभान्वित होना चाहिए।

—मुनि हेमचन्द्र, लुधियाना

आप श्री जी की आकस्मिक प्रेषित कृति प्राप्त कर आपकी मनमोहिनी मूर्ति चलचित्र की भाँति नेत्रपट पर सहज में ही अवतरित हो उठी। आपने अत्यन्त पुरुषार्थ और कठिन परिश्रम से छोटी-छोटी कविताओं में जो चरित्र चित्रित किए हैं, उन से जैन संस्कृति की छाप बिना किसी मार्गदर्शक के ही प्रत्येक व्यक्ति के हृदयपटल पर पड़े विना नहीं रह सकती। आपको सहज, स्वाभाविककवित्व शक्ति खूब उभर उठी है। आपका यह सुप्रयत्न प्रशंसनीय एवं श्लाघनीय है। आप इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं।

—रत्नमुनि, लुधियाना

आपकी यह दोहावली आकार में जितनी सुन्दर है, विचार में उससे सहस्रशः सुन्दर एवं मन भावना है। आपके आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक सुमधुर अनुभव का साकार रूप है।

भाषा में जितनी सरल है, भावों में उतनी ही विरल है, जीवन के प्रत्येक पक्ष को छूकर भी इतनी उदार एवं व्यापक है कि तुलना करना कठिन ही नहीं

अति कठिन है, अभिव्यक्ति बहुत ही सरस है, मुझे विश्वास है जिज्ञासुओं को इसमें चन्दन से बढ़कर शीतलता और सुगन्ध प्राप्त होगी, जो शरीर को ही नहीं, आत्मा को भी शीतल एवं सुरभित कर देगी।

—मुनि विमल, भटिण्डा

आपकी भेजी 'दोहावली' पुस्तक मिली। पुस्तक को देखकर मानस हर्ष से भर गया। वैसे तो आपकी सभी रचनायें ज्ञानप्रद और सुन्दर हैं, पर आपकी दोहावली को देखकर तो मानस चकित हो गया। मैंने अभी तो इधर-उधर से सौ, दो सौ ही दोहे पढ़े होंगे। आपने यह रचना करके यों कहना चाहिए आपने अपने नाम को सार्थक कर दिया। हर एक विषय पर सुन्दर से सुन्दर चीज मिलती है। पढ़ते समय मानस रसानन्द लीन हो जाता है और मन करता है बस पढ़ता रहूं, वास्तव में बहुत ही सुन्दर कृति है। यह अवश्य ही अमर अजर रहेगी।

—मुनि प्रेमचन्द, आगरा

आप श्री जी द्वारा प्रेषित पुस्तकोपहार सादर प्राप्त हुआ। 'चन्दन दोहा-वली' वस्तुतः चन्दनोपम भाव-सुगन्धि से युक्त है। भाषा सरल किन्तु सरस एवं प्राञ्जलता की पुट, साहित्यिकता से ओत-प्रोत कविता-दोहे भावपूर्ण तथा युगीन समस्याओं के लिए समाधान प्रस्तुत करते हैं। नीति, शिक्षा, व्यवहा-रिकता आदि के तो विशेष संदेशवाहक हैं ये दोहे किन्तु साथ ही अध्यात्म-साधना का परिचय कराने में अपनी मौलिक विशेषता लिए हुए हैं।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि 'चन्दन दोहावली' की रचना एवं प्रका-शन हिन्दी साहित्य एवं धार्मिक साहित्य विशेषतः जैन साहित्य की उस कमी को दूर करेगी जिसमें कि अध्यात्मवाद का सर्वांगीण श्रावक जीवन सम्बन्धी परिचय प्रस्तुत करने वाली कोई रचना नहीं थी।

आप श्री जी के हाथों से निकली कृति तो होगी ही स्तुत्य इसमें सन्देह नहीं, फिर दोहावली का तो कहना ही क्या है। पंजाब प्रदेश के जैन साहित्यकारों में आप श्री का नाम प्रमुख रहेगा।

—सुमन मुनि, मालेरकोटला

□ संगीत श्री मेघकुमार

मेघकुमार का चरित्र सर्वप्रथम मूल अंग साहित्य के सुप्रसिद्ध आगम ज्ञाता सूत्र में वर्णित है। तदनन्तर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं में निबद्ध होता रहा। आज भी निबद्ध हो रहा है। मेघ के दिव्य जीवन को लेकर अच्छी-से-अच्छी रचनाएँ समाज के समक्ष आयी हैं।

श्री चन्दन मुनि जी ने हिन्दी गेय छन्दों में मेघकुमार के जीवन को बहुत अच्छे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है प्रसंगोपात्त यत्र तत्र धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, नैतिकता, आत्म जागरण आदि लोकोपकारी विविध विषयों का वर्णन ऐसा है, जैसे कि सोने में सुगन्ध हो। सरल सुबोध भाषा, गीति प्रधान छन्द, उदात्त विचार—सब कुछ ऐसा है, जो सहृदय पाठक के मन को सहसा मोह लेता है। पढ़ते जाइए, रसास्वादन करते जाइए, मन ऊबेगा नहीं। यही कवि का कृतित्व है, जिसमें श्री चन्दन मुनि जी ने शानदार सफलता अधिगत की है। शत-शत साधुवाद ! शतशत धन्यवाद !

मुनि श्री ने अध्ययन को पचाया है। उनकी ग्रहणशीलता अनूठी है। आपकी अनेक पद्य रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं, जो बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत रचना भी इसी भाँति लोकप्रिय होगी, जन-मन को मंगल कल्याण की दिशा में प्रेरणा देगी। मैं आशा करता हूँ, भविष्य में उनकी और भी अनेक साहित्यिक देन, जनता को मिलेंगी। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अनागत क्षणों में और भी अधिकाधिक प्रकाशमान हो, इसी सद्भावना के साथ..।

जैन भवन
लोहामंडी आगरा–२
मई दिवस १९७३

—उपाध्याय अम नि

☐ कविवर चन्दन मुनि जी का काव्य-वैभव

श्री चन्दन मुनि जी स्वभावतः ही एक सरस कवि रहे हैं। आपने जो कुछ भी और जितना भी लिखा है वह सब काव्यमय एवं छन्दोवद्ध है। जैन-परम्परा का शायद ही कोई महापुरुष बचा हो, जिसके जीवन पर कविवर श्री चन्दन मुनि जी ने न लिखा हो। पंजाब के सन्तों में चन्दनमुनि जी कवि के रूप में तो ख्यातिप्राप्त रहे ही हैं, पर शायद उनका आन्तरिक रूप तत्त्वचिन्तक और तत्त्वदर्शी का रहा है। वस्तुतः वे जीवन के एक यथार्थवादी दार्शनिक हैं। उनकी रचनाओं में कल्पना की उड़ान कम और जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण अधिक मुखर होकर प्रगट हुआ है। पं० प्रवर चन्दनमुनि जी क्या हैं? इसकी अपेक्षा यह पूछना अधिक उपयुक्त रहेगा कि वे क्या नहीं हैं? वे कवि हैं, विचारक हैं, मधुर प्रवक्ता हैं, और जीवन के चित्रकार हैं। उन्होंने जीवन को शब्द-चित्रों में सफलता के साथ अंकन किया है। संगीतप्रियता उनका जन्मसिद्ध अधिकार रहा है, यही कारण है कि उन्होंने आज तक जो कुछ लिखा है, वह सब काव्यमय है। उनके द्वारा रचित प्रत्येक काव्य पुस्तक से जीवन को मधुर प्रेरणा और कल्याणकारी उपदेश प्राप्त होता है। यही उनके कवित्व की सफलता है।

लगभग ४०० पृष्ठों में उन्होंने भगवान् पार्श्वनाथ के जीवक पर जो संगीतमय और काव्यमय रचना की है, वह प्रत्येक पाठक के लिए रुचिकर, मधुर एवं सुन्दर प्रतीत होगी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने मंगलाचरण करने के बाद कुछ प्राचीन जैन इतिहास की झांकी देने का प्रयत्न किया है, फिर भगवान् पार्श्वनाथ के दश भवों का प्रांजल भाषा में वर्णन किया है। साधना काल का वर्णन भी बड़ा ही आकर्षक रहा हो अन्त में तीर्थंकरजीवन का वर्णन भी गहरी अनुभूतियों के साथ किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की भाषा प्रवाहमयी एवं प्रांजल है। शैली अन्यन्त आकर्षक है। कवि का श्रम सफल है।

जैन भवन, लोहामण्डी **—विजय मुनि, शास्त्री**

९-६-७२ आगरा

☐ 'चन्दन दोहावली' अभिनव प्रकाशन प्राप्त हुआ। वैविध्य लिए विशद एवं सारगर्भित रचना देखकर अन्तस् आनन्दोल्लषित, हर्षित हुआ।

दोहा—

पा, 'चन्दन दोहावली' हुआ हृदय को हर्ष ।
पंक्ति पंक्ति में मिला, काव्य कला उत्कर्ष ।।
विनय, प्रेम, गुण, भक्ति, नय, धर्म, राष्ट्र अनुरक्ति।
दोहावली में मिल गई, दश तक विषय विभक्ति ।।
कई ग्रन्थ दोहन सफल, यह दोहावली तत्त्व ।
चन्दन तुम पाये प्रकट कवि जन मध्य महत्त्व ।।
मधुकर के मन मधुर ज्यों, पादप पुष्प पराग ।
त्यों तव सु-कृति सुजन मन, उमगाए अनुराग ।।
काव्यमयी मां भारती, करे कवि शृंगार ।
धन्य तुम्हें 'चन्दन मुनि', किया भेंट गल-हार ।।

—श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

'संगीत इषुकार कथा', पाकर हुआ प्रमोद ।
पढ़कर पायेंगे कई जन अवोध प्रबोध ।।
चन्दन मुनिवर आपको, धन्यवाद अनन्त ।
विस्मृत प्राच्य सुकथ्य का, प्रकट किया वृत्तान्त ।।
शास्त्रोक्त वृत्त गूढ़तम, किया सरल सुपाठ्य ।
गीति काव्य में रच दिया, हरे विश्व का शाठ्य ।।

—सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

लख 'चन्दन' दोहावली', बहुत हुआ दिल शाद ।
मुनि 'कीर्तिचन्द्र' का, लीजे साधुवाद ।।
पढ़ने से जिसके मिला, मन को अति आनन्द ।
मुनि कीर्तिचन्द्र ने, कीना ग्रन्थ पसन्द ।।

चन्दन दोहावली : एक अभिप्राय

श्री चन्दन दोहावली सुन्दर सरस अनूप ।
दोहे जिसके श्रेष्ठ हैं मुक्तमाल स्वरूप ॥
सरल सरस सुशैली में, रचा गया यह ग्रन्थ ।
उपादेय सब के लिये, सत्य दिखाता पन्थ ॥
दोहों का भण्डार है सब गुण से भरपूर ।
जो पढ़ दिल में धारता, होत तिमिर सब दूर ॥
ग्रन्थ-गगन में सोहते दोहे उड़गन तुल्य ।
जगमग-जगमग ज्ञान की करते ज्योति अमूल्य ॥
विविध विषय कवि ने चुने जैसे मुक्ता—हंस ।
यत्र - तत्र ऐसे जड़े कंठ का हो अवतंश ॥
जौहरी के सुकोष में हीरे पन्ने लाल ।
त्यों चन्दन के काव्य में मिले विचार कमाल ॥
धन्य-धन्य कविवर मुने— चन्दन लाल ! महान् ।
वलिहारी तव चरण में जाते सर्व जहान ॥

—गणेश मुनि शास्त्री

आपश्री की प्रेषित "संगीतों की दुनियां', प्राप्त हुई । पढ़कर अति प्रसन्नता हुई । आपश्री ने अपनी मंजी भाषा में जैन कथाओं के माध्यस से जो सुन्दर संकलन किया है, वह वहुत ही सराहनीय है । समाज आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता । आगे भी अन्य इसी प्रकार साहित्य, संस्कृति की सेवा करते रहेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है ।

—मुनि विमल

'संगीत इषुकार' नामक पुस्तक डाक द्वारा प्राप्त हुई । आपश्री की महती कृपा है ।

पुस्तक के कुछ पृष्ठ पढ़े ! ऐसा प्रतीत होता है कि त्याग और वैराग्य

वाईस सौ और साठ ये, कुल दोहों का ग्रन्थ ।
दिखलाता मुनि कीर्ति को, अभिनव सत्य सुपन्थ ॥
धन्यवाद शावाश है, वाह-वाह 'चन्दन लाल' ।
रचकर दोहे आपने कीना खूब कमाल ॥
एक-एक से एक हैं, बढ़कर दोहा छन्द ।
पढ़ते-पढ़ते कीर्ति को, आया बहुत आनन्द ॥
देखत पहली दृष्टि में, लेती ये मन जीत ।
कहे कीर्ति आपकी, ऐसी पोथी मीत ॥
मुद्रण सज्जा साज अरु मुखपृष्ठ जो ज्येष्ठ ।
कीर्ति मुनि दोहावली पुस्तक सुन्दर श्रेष्ठ ॥
लखकर पुस्तक आपकी, सुनिये चन्दनलाल ।
रचता दोहे चन्द ये, 'कीर्तिमुनि' तत्काल ॥
लिखना था सो लिख दिया, अव करता हूँ वन्द ।
"मुनि कीर्ति' स्वीकार ये, कर लेना कुछ छन्द ॥

—मुनि यश, करनाल

आपकी नवीन कृति 'चन्दन दोहावली' हस्तगत हुई । विविध तरंगों-उमंगों में खूब बुद्धि का रंग दिखाया आपने ! आशा है, सामाजिक मंच पर आदर पायेगी आपकी यह कृति !

—मुनि सुरेश, अमृतसर

'चन्दन दोहावलो' मिल गई है, उसके लिए अत्यधिक आभार । आप अध्यात्म जगत पर महान उपकार कर रहे हैं । आने वाली पीढ़ियाँ आपके अन-मोल विचार-रत्नों को कविता की वीण से विभूषित पाकर अवश्य आनन्द-विभोर होगीं । ऐसा पूर्ण विश्वास है ।

—ज्ञान मुनि

चन्दन दोहावली : एक अभिप्राय

श्री चन्दन दोहावली सुन्दर सरस अनूप ।
दोहे जिसके श्रेष्ठ हैं मुक्तमाल स्वरूप ।।
सरल सरस सुशैली में, रचा गया यह ग्रन्थ ।
उपादेय सब के लिये, सत्य दिखाता पन्थ ।।
दोहों का भण्डार है सब गुण से भरपूर ।
जो पढ़ दिल में धारता, होत तिमिर सब दूर ।।
ग्रन्थ-गगन में सोहते दोहे उड़गन तुल्य ।
जगमग-जगमग ज्ञान की करते ज्योति अमूल्य ।।
विविध विषय कवि ने चुने जैसे मुक्ता—हंस ।
यत्र - तत्र ऐसे जड़े कंठ का हो अवतंश ।।
जौहरी के सुकोष में हीरे पन्ने लाल ।
त्यों चन्दन के काव्य में मिले विचार कमाल ।।
धन्य-धन्य कविवर मुने— चन्दन लाल ! महान् ।
बलिहारी तव चरण में जाते सर्व जहान ।।

—गणेश मुनि शास्त्री

आपश्री की प्रेषित "संगीतों की दुनियां', प्राप्त हुई। पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। आपश्री ने अपनी मंजी भाषा में जैन कथाओं के माध्यस से जो सुन्दर संकलन किया है, वह बहुत ही सराहनीय है। समाज आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। आगे भी अन्य इसी प्रकार साहित्य, संस्कृति की सेवा करते रहेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

—मुनि विमल

'संगीत इषुकार' नामक पुस्तक डाक द्वारा प्राप्त हुई। आपश्री की महती कृपा है।

पुस्तक के कुछ पृष्ठ पढ़े ! ऐसा प्रतीत होता है कि त्याग और वैराग्य

कूट-कूटकर भरा है। कितनी भी मोही एवं तृष्णाग्रस्त आत्मा हो, पुस्तक के पढ़ने से एक बार तो अवश्य त्याग की लहर दौड़ उठेगी। कविता इतनी सरस और सरल है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी बोध हो सकता है।

हमें अति गर्व है कि हमारी साधु समाज में इस प्रकार के अमूल्य रत्न हैं। जो अपनी ज्ञान-ज्योति से अपने आपको ही नहीं अपितु समाज को भी चमकाते हैं।

भविष्य में भी इसी प्रकार की शिक्षाओं से भरी, कर्त्तव्य पथ को दर्शाने वाली रचनाओं से युक्त पुस्तकें प्रस्तुत करेंगे, ऐसी आशा है।

इन्हीं शुभ कामनाओं के साथ—

—नेममुनि, पंजाबी

☐ मदनरेखा

महासती का यह मधुर, पढ़ा सरस संगीत।
मुदित मना, अभिनन्दना! करता 'सरस' विनीत॥

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

आपश्री की भव्य रचनायें 'मेघकुमार', चन्दनवाला' एवं 'भ० पार्श्वनाथ' इस प्रकार तीन दिव्य रत्न संप्राप्त कर महती प्रसन्नता हुई। इस अनुग्रह एवं स्नेह, सौहार्द के लिए हृदय की गहराई से आभार। रचनाएं निःसंदेह लाजवाब हैं। पाठक अथवा गायक की हृद्तंत्री को झंकृत किये विना नहीं रहतीं।

—मुनि महेन्द्र 'कमल'

आपश्री का मंगल कामनाओं से परिपूर्ण आशीर्वादात्मक पत्र प्राप्त करके एक वरदान की अनुभूति मुझे हुई।

आपश्री ने जैनधर्म के सिद्धान्त और दृष्टान्त कविता की सरस सुन्दर भाषा में साधारण जनता तक पहुँचाने का जो सफल प्रयत्न किया है, तदर्थ आप प्रशंसा के पात्र हैं। इस श्रेयस्कर कार्य में जो हमने सहयोग दिया वह हमारा एक कर्त्तव्य था। अतः इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं है, विशिष्ट गुणों के प्रति एक आकर्षण है, जिससे मनुष्य अपने आप आकर्षित होता है।

अतः मैंने अपनी प्रकृति अथवा स्वभाव के अनुसार ही किया है। आप समाज के एक कविरत्न हैं, कविता की भाषा सरस्वती पर आपका एक विशेष अधिकार है, इसे मैं मानता हूँ।

—मुनि रामकृष्ण

आप द्वारा प्रेषित 'संगीत इषुकार कथा' हस्तगत हुई। उसके लिए अत्यन्त आभार।

पुस्तक कागज, मुद्रण, सज्जा आदि हर दृष्टि से सुन्दर बन पड़ी है। प्रस्तुत संस्करण संशोधित एवं परिवर्धित होकर जनता के हाथ में आया है। वहाँ अपने कवित्व को निखारता हुआ हिन्दी साहित्य और विशेषतः जैनकथा जगत में महत्त्वपूर्ण वृद्धिगत हुआ है। आपश्री की कलापूर्ण लेखनी से लिखित, भाव एवं भाषा के लालित्य व्यंजना से परिपूर्ण रचनाएं समाज को गौरवान्वित कर रही है, अतः आपश्री जी धन्यवाद के पात्र हैं।

—सुमन मुनि

आपके द्वारा भेजी गई तीन पुस्तकें प्राप्त हुई। धन्यवाद।

पुस्तक अति उत्तम है। भाषा, भाव आदि सभी दृष्टियों से पुस्तक ग्राह्य है। ऐसी शिक्षाप्रद पुस्तक हर घर में रहनी चाहिए। मैंने तो आते ही उसको पढ़ना प्रारम्भ कर दिया है। चार से पांच तक दिन में उसी का पाठ करता हूँ ग्रन्थ साहब की भांति! जैन साहित्य में यह अपूर्व ही ग्रन्थ अपनी शानी का है। विचार बहुत सुन्दर हैं; मेरे पास मंडी के कुछ मुख्य व्यापारी आते हैं इनको भी सुनाता हूँ। वे भी बड़े प्यार से और ध्यान से श्रवण करते हैं।

—मुनि हेम, आगरा वाले!

आप द्वारा महान् आदर और प्रेम से भेजी गई "संगीत इषुकार कथा" मिली। जिसे मैं बड़ी लगन के साथ देख गया हूँ प्रस्तुत पुस्तक एक बहुत सुन्दर आख्यान है। यह काव्य कला से परिपूर्ण है। इसकी रचना अत्यन्त बुद्धिमता से की गई है। इसमें एक लघु कथा को बहुत ही सुन्दर ढंग से अत्यन्त रोचक बनाकर दिखाया गया है। आपकी इस नवीन कृति के लिए आपको अधिकाधिक धन्यवाद।

—मुनि हेमचन्द्र

वहुत दिन गए मगर हिन्दी कविताओं में यही मिला है। हिन्दी जगत के पाठक इस संगीत मेघ को अधिक अपनायेंगे। ऐसी आशा ही नहीं, विश्वास है।

भगवान पार्श्वनाथ को विशाल संगीत में देख वड़ी खुशी हुई। संगीत में इतना वड़ा चरित्र हमारे स्थानकवासी जैन समाज में यह प्रथम श्रेणी का है। आशीर्वचन के दाता कवि जी म० की भाषा में चन्दन मुनिजी की रचनायें प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण है। स्वर्ण शृंखला की एक चमकती कड़ी हैं।

शास्त्री श्री विजयमुनि जी की वाणी में चन्दनमुनि जी एक सरस कवि हैं, विचारक हैं, मधुर वक्ता हैं और जीवन के चित्रकार हैं, उन्होंने जीवन का शब्द चित्रों में सफलता के साथ अंकन किया है। ऐसे ज्ञान गम्भीर क्रियाशील यम नियम के पालनहार महामुनिराज का दर्शन हुए याद नहीं, वह दिन धन्य होगा जिस दिन दर्शन होगा।

—**हीरामुनि 'हिमकर'**

पुस्तकें पढ़कर मन प्रफुल्ल हो उठा। जीवन को "सही दृष्टि देकर प्रेरणा और उत्साह से आन्दोलित करने वाली वचन-रचना सचमुच श्री चन्दन मुनि की अद्‌भुत काव्य-चातुरी का चमत्कार है। पढ़ने के बाद दृष्टि जैसे पत्रों पर फिसलती हुई अपने आप चली जाती है, मन गुदगुदा उठता है और मस्तिष्क ताजगी से उल्लसित हो जाता है।"

मन नन्दन आनन्दघन ! चन्दन सन्त महान।
मिली मधुर दोहावली, पुलक उठे मन-प्राण ॥
सद् शिक्षा सुविचार के, जड़े हुए हैं रत्न।
लाभ उठाने का सतत, पाठक करें प्रयत्न ॥

—**श्रीचन्द सुराना 'सरस'**

'संगीत जम्बू कुमार' की दो प्रतियां प्राप्त हुई, रचना बहुत ही सुन्दर है। पाठक अथवा गायक की हृद्तंत्री को झंकृत किये बिना नहीं रहती।

—सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

आपकी पुस्तकें प्राप्त हुईं। 'चन्दन वाला' आदि सभी पुस्तकों को थोड़े रूप में ही देखी हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कविता की शक्ति से उन्हें साकार (जीवित) रूप में ला दिया है।

सचमुच आपकी रचित पुस्तकें आ-बाल वृद्ध-साधारण-पंडित सभी के लिए शिक्षाप्रद एवं उपयोगी तथा मानसिक शक्ति को प्रदान करने वाली है।

—नेम मुनि (पंजाबी)

नल दमयन्ती का संगीत बहुत ही लोक प्रिय होना संभव है। भारतीय सरकार ने नल (पानी का) तथा दमयंती (बिजली) का घर-घर में प्रचार कर दिया है। तब हमारे श्री चन्दन मुनि जी म० ने अपनी सुकंठी संगीत द्वारा उन महा भारतीय नल दमयंती का घर-घर में संदेश पहुँचा दिया। अतः मैं कोटि-कोटि धन्यवाद दूंगा।

इषुकार कथा मारवाड़ी पद्यों में देखी मगर आधुनिक भाषा के पद्यकार श्री चन्दन मुनि जी म० सा० का समाज पर भारी उपकार है। उपाध्याय श्री की भाषा में 'चन्दन' तुम सचमुच चन्दन हो।

चन्दन दोहावली मानव जीवन के सरस संस्कार सुमति श्रद्धाशील संतोष भाव पैदा करने में संजीवनी बूटी का काम करती है। कबीर दोहावली की तरह दिल में रस पैदा करती है।

श्री चन्दन मुनि म० सा० ने **सती श्री चन्दनबाला** की दिल खोलकर पद्य रचना की। गहरी डुबकी लगाकर कवि भाव विभोर हुए हैं। चन्दना मोक्ष गई मगर किसी भव में अवश्य सेवा की है। वे प्रेम के परमाणु चले आ रहे हैं जो भक्ति भाव पद्य रूपेण आज हमें देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आशा है, पाठकगण भी उसी पथ के पथिक बन कर आत्म कल्याण करेंगे।

मेघचर्या लिखने में मुझे जितना आनन्द आया उससे चौगुना आनन्द इन गेय **मेघकुमार** पढ़ने में आया। उसका मूल मेघकुमार की मारवाड़ी ढाले पढ़ते

वहुत दिन गए मगर हिन्दी कविताओं में यही मिला है। हिन्दी जगत के पाठक इस संगीत मेघ को अधिक अपनायेंगे। ऐसी आशा ही नहीं, विश्वास है।

भगवान पार्श्वनाथ को विशाल संगीत में देख वड़ी खुशी हुई। संगीत में इतना वड़ा चरित्र हमारे स्थानकवासी जैन समाज में यह प्रथम श्रेणी का है। आशीर्वचन के दाता कवि जी म० की भाषा में चन्दन मुनिजी की रचनायें प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण है। स्वर्ण शृंखला की एक चमकती कड़ी हैं।

शास्त्री श्री विजयमुनि जी की वाणी में चन्दनमुनि जी एक सरस कवि हैं, विचारक हैं, मधुर वक्ता हैं और जीवन के चित्रकार हैं, उन्होंने जीवन का शब्द चित्रों में सफलता के साथ अंकन किया है। ऐसे ज्ञान गम्भीर क्रियाशील यम नियम के पालनहार महामुनिराज का दर्शन हुए याद नहीं, वह दिन धन्य होगा जिस दिन दर्शन होगा।

—**हीरामुनि 'हिमकर'**

पुस्तकें पढ़कर मन प्रफुल्ल हो उठा। जीवन को "सही दृष्टि देकर प्रेरणा और उत्साह से आन्दोलित करने वाली वचन-रचना सचमुच श्री चन्दन मुनि की अद्‌भुत काव्य-चातुरी का चमत्कार है। पढ़ने के बाद दृष्टि जैसे पत्रों पर फिसलती हुई अपने आप चली जाती है, मन गुदगुदा उठता है और मस्तिष्क ताजगी से उल्लसित हो जाता है।"

मन नन्दन आनन्दघन ! चन्दन सन्त महान।
मिली मधुर दोहावली, पुलक उठे मन-प्राण ॥
सद् शिक्षा सुविचार के, जड़े हुए हैं रत्न।
लाभ उठाने का सतत, पाठक करें प्रयत्न ॥

—**श्रीचन्द सुराना 'सरस'**

१. गीतों की दुनियाँ !

'गीतों की दुनियाँ' की सैर करने का सौभाग्य-कविकुल शिरोमणि श्री चन्दन मुनि जी म० के द्वारा प्राप्त हुआ। वस्तुतः यह सैर इतनी आनन्ददायी एवं सुखप्रद है कि पुस्तक को हाथ से नीचे रखने की इच्छा ही नहीं होती। हर पृष्ठ पर अंकित नये-नये दृश्यों के अनुपम नजारे चित्त को आकर्षित करते रहते हैं। धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रस्तुत संग्रह सभी के लिए उपादेय है। मैं आशा करता हूँ कि गीतों की दुनियाँ की सैर करते समय जिस प्रकार मैं झूम उठा हूँ, उसी प्रकार अन्य संगीत प्रेमी पाठक भी झूमे बिना नहीं रह सकें।

इस भाव प्रवण कृति के लिए मैं कवि का अन्तर की गहराई से अभिनन्दन करता हूँ और साथ ही यह भी कामना करता हूँ कि वे समय-समय पर इस प्रकार की मौलिक कृतियों द्वारा संसार को लाभान्वित करते रहेंगे।

२. संगीत जम्बूकुमार

'संगीत जम्बूकुमार' को देखकर मन आनन्द विभोर हो उठा। कलम कलाधर कविवर्य श्री चन्दन मुनि जी म० ने अतीत के एक महान् त्यागी श्रेष्ठि पुत्र श्री जम्बूकुमार का संपूर्ण जीवन काव्य की भाषा में ढाल कर समाज की बहुत बड़ी सेवा की है। विविध लयों व छंदों के माध्यम से कवि ने अपनी प्रतिभा का वह चमत्कार दिखलाया है जिसको पढ़ते-पढ़ते पाठक स्वयं वैराग्य की लहरों में डूबने उतराने लगता है।

संगीत जम्बूकुमार की भाषा सरल, सुबोध एवं प्रवाहमयी है। बीच-बीच के प्रासंगिक चित्र भी पुस्तक का मूल्यांकन बढ़ाने में सहायक हैं। पुस्तक सभी दृष्टियों से सफल कही जा सकती है। लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

३. संगीत सती दमयन्ती

नल दमयंती के चरित्र पर संस्कृत साहित्य एवं लोकभाषासाहित्य में सैकड़ों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। किन्तु उन सभी में कविरत्न पण्डित श्री चन्दन मुनि जी म० का प्रस्तुत ग्रन्थ 'संगीत सती दमयंती' अपना मौलिक स्थान रखता है। भाषा की सरलता, भावों की गम्भीरता, एवं जीवन के विविध गुणों की

प्रकर्षता का एक साथ-प्रतिविम्बित होना काव्य की अपनी विशेषता कही जा सकती है। भारतीय प्राचीन आदर्श में नारी का क्या रूप रहा है ? उसे प्रकट करने के लिए कवि की जादू-भरी कलम ने सती दमयंती के उज्ज्वल चरित्र का चारू चित्रण किया है, जो वर्तमान पश्चिमी नग्न सभ्यता की चका-चौंध में पलने वाली नारी समाज के लिए एक चुनौती है। कवि की सफलता स्पृहणीय है।

४. संगीत संजय राजऋषि

जैनाकाश के उज्ज्वल नक्षत्र, कवि श्री चन्दन मुनि जी म० की एक आदर्श लघु कृति है। प्रस्तुत कृति में कवि ने संजयराजर्षि की आखेट वृत्ति की लोलुपता, आह, मृगों की कारुणिकता तथा संजयराजर्षि का गर्दभाली मुनि से आकस्मिक मिलन का दृश्य, अत्यन्त भावपूर्णता के साथ उपस्थित किया है। मुनि के सत्संग से राजा का हिंसक से अहिंसक बनना और अपने सम्पूर्ण जीवन को त्याग पथ पर लगा देना यह अहिंसा की एक उच्चतम संघटना ही नहीं विजय भी कही जा सकती है।

पुस्तक का वर्ण्य-विषय सुरुचिपूर्ण एवं शिक्षात्मक है। काव्य कला की दृष्टि से कवि पूर्ण सफल रहा है, इस में कोई सन्देह नहीं। कवि का प्रयास स्तुत्य है।

५. संगीतों की दुनियाँ

'संगीतों की दुनियां' की परिक्रमा करते समय मुझे अत्यधिक आनन्द मिला। इनके रचयिता हैं स्थानकवासी जैन समाज के जाने पहचाने कविवर्य श्री चन्दन मुनि जी म०; जिनका कवि-स्वर यत्र-तत्र-सर्वत्र अभिगुञ्जित है। आपकी अब तक दर्जनों पुस्तकें संसार के समक्ष आ चुकी हैं, और वे बहुत ही लोक प्रिय रही हैं। इस लोकप्रियता का कारण है शब्दाडम्बर रहित भाषा का लालित्य एवं हृदयस्पर्शी भाव।

संगीत की दुनिया में लघु कथानकों का संग्रह उस प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे अनाघ्रात-पुष्पों का महकता लहकता गुच्छ। सभी कथानक आकर्षक एवं ज्ञान वर्धक हैं। वर्तमान रॉकेटवादी युग के अशांत क्षणों में पलने वाले मानव को शांति का एक नया प्रकाश प्रदान कर सकेंगे। ऐसा विश्वास है।

—गणेश मुनि शास्त्री

गुरुवर पन्नालाल जी, चन्दन मुनि गुणवान ।
चरनन में वन्दन करें, लीजे सबकी मान ॥
उन्नीसौ इकहत्तर में, सात जुलाई मास ।
शुद्ध चौमासा हो गया ले करके शुभ आस ॥
एक दिवस संध्या समय, टाइम साढ़े चार ।
दर्शन करने को गए, मन में शुद्ध विचार ॥
दर्शन कर निज स्थान पर, बैठ गई हम चार ।
इक सज्जन पहुँचे वहाँ, लेकर के कुछ भार ॥
नाम तिलकधर शास्त्री, कहते सब इन्सान ।
दोहावली की पुस्तकें, लाये वसन मंझार ॥
पुस्तक लेकर हाथ में, करने लगे विचार ।
देनी पुस्तक एक है, यहां है सतियाँ चार ॥
सोच समझ चन्दन मुनि, दीना हस्त बढ़ाय ।
धन्य-धन्य गुरु आप हैं, 'प्रमोद' कहै हर्षाय ॥
कृपा दृष्टि गुरु आपकी, वर्णन में नहिं आय ।
दिया प्रथम उपहार है, शुभ वेला के माय ॥
कर अवलोकन ग्रन्थ का, मन फूला न समाय ।
धन्य गुरुवर आप हैं, धन्य आपकी माय ॥
पुष्प एकत्रित कर सभी, एक गुलदस्ता बनाय ।
दोहावली अध्ययन से, रोम रोम विकसाय ॥
शिक्षा सामाजिक, नैतिक, और आत्मकल्याण ।
किस विधि हर एक का, करे 'प्रमोद' बयान ॥

रचना अनुपम आपकी, इस जग के दरम्यान ।
तुलना इसकी कर सके, क्या कोई इन्सान ।।

ब्रह्मा कहुँ या बृहस्पति, या कहूँ मति प्रवीण ।
अनुभव ऐसा होत है, ज्यों दोहावली मशीन ।।

शीतल शशी समान हैं, तेज सूर्यवत् जान ।
वाणी के माधुर्य से, देते अनुपम ज्ञान ।।

साधुवाद है आपका, किया ग्रन्थ जो भेंट ।
प्रेम निभाना नित्य ही, सके न कोई भेंट ।।

चरणों में अर्पित करूं, लिखे जो शब्द चन्द ।
अंगीकार कर लीजिये, प्रेम भक्ति का छन्द ।।

करती सती प्रमोद है, चरण-कमल अरदास ।
पत्र लिखा है भक्ति से, रखना अपने पास ।।

—साध्वी प्रमोद

चंदन शीतल जगत में, तातें शीतल चंद ।
चंदन-चंदन से अधिक, दोहावली सुखकंद ।।

दोहावली के मर्म से, हृदय हुआ झकझोर ।
माधव वन्दन करत है, नत मस्तक कर जोर ।।

—भागचन्द जैन 'न्यायतीर्थ'

आप श्री की भव्य कृतियों के बारे में जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । आप श्री की रचना शैली सुघड़ एवं विषयों को स्पष्टता से प्रस्तुत करने वाली है । 'महासती मदनरेखा' निःसन्देह भाव-भाषा और शैली सभी दृष्टियों से सुन्दर बन पड़ी है । अस्तु—

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

१० मार्च को 'इषुकार' पुस्तक और पत्र को पाकर हर्षानुभूति हुई। पुस्तक की प्रशंसा के योग्य शब्द तो मेरे पास नहीं किन शब्दों से प्रशंसा करूं। पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा। शैली अति सुन्दर सरल है भावों की अभिव्यंजना सरस है। पुस्तक जितनी श्रेष्ठ उत्साहक है, उतनी ही शांतिप्रद भी है। इसकी शिक्षा जीवन की सच्ची घटनाओं से सुशोभित है। भाव, भाषा अति सरल है और वास्तविकता पूर्ण है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, राजा-रानी, के सम्वादों को पढ़ते समय चलचित्र की भांति मानों साक्षात्कार हो रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। नारी समाज को उद्‌बोधन किया गया है भद्रा और कमलावती के माध्यम से। यदि बहनें इससे शिक्षा प्राप्त करेंगी तो नारी समाज का काफी सुधार हो सकता है—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् इषुकारकथा लोकेषु प्रचरिष्यते॥
इषुकार कथा पाय के, दिल हो गया हर्षित।
वह सुन्दर रचना रची, हो जन,जन को इष्ट॥
तीव्र बुद्धि है आपकी, ज्ञान-सिन्धु हे! चन्दन।
करती सती सुलक्षणा, शत शत वार वन्दन॥
तारे रवि इन्दु नभ में, जब तक करें प्रकाश।
तब तक नाम अमर रहे, ऐसी है मन आश॥

—साध्वी सुलक्षणा 'साहित्य-रत्न'

नल दमयन्ती पुस्तक को पढ़ा, जिसको पढ़कर ज्ञात हुआ कि आप न केवल जैन साधु हैं परन्तु एक माने हुए कवि के रूप में भी जैन धर्म का प्रचार करते हैं। आपकी पुस्तक जो भी पढ़ता है वह दूसरी पुस्तक मंगाने की आशा प्रकट करता है।

—जयन्तीप्रसाद जैन

कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी ने बहुत परिश्रम करके चन्दन दोहावली का निर्माण किया है जो कि जैसे पढ़ने में उपयोगी है वैसे ही व्याख्यान वाणी में

सुनाने के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। प्रशंसनीय है। मैं ऐसी सुन्दर रचना के लिए लेखक एवं प्रकाशक को वधाई देता हूँ।

—किशोरीलाल जैन 'एडवोकेट'

☐ कविवर का साहित्य

कवि रत्न श्री चन्दन मुनि द्वारा रचित अनेकों पुस्तकें देखो सुनी एवं पढ़ी। कविताओं में कविवर्य का हृदय काफी प्रभावशील सक्रिय रहा है। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि कविप्रवर का दिल-दिमाग मशीन है कि और कुछ ? जो इतना सुन्दर व विशाल साहित्य निर्माण कर रहा है !

—मुनि प्रताप
जालना

☐ पुस्तकें विहंगम दृष्टि से देखी हैं। कविता तो आपकी सहचरी है पढ़ते-पढ़ते पाठक आनन्द से झूमने लगता है। मैं कवि नहीं हूं, पर आपकी पुस्तकें पढ़कर कवि वनने की उत्कट अभिलाषा जागृत हो जाती है। कितना सुन्दर सरस लिखते हैं आप। आपके नव सुरभित काव्य सौंदर्य पर कौन सहृदयी मुग्ध न होगा। आपके समान कवि को पाकर जैन समाज धन्य है।

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

☐ गीतों की दुनियां

गीतों की इस दुनियाँ में सब तरह के गीत आ गये हैं जो कि एक संस्कारित समाज को अपेक्षित होते हैं। अतः संग्राहक का श्रम सार्थक कहा जा सकता है। श्री चन्दनमुनि जी की काव्यकला खिली हुई है। इनके भजन शिक्षाप्रद तो होते ही हैं, पर कर्णप्रिय भी होते हैं। सीधी-सादी भाषा में वे वड़ी मार्मिक बात पाठकों को दे देते हैं। इस दृष्टि से इनकी कविता सार्थक है। ···गीतों में लय है, मधुरता है और एक आदर्श की छाप जो पाठकों को मोहित किए विना नहीं रहती है। पुस्तकों का गेटअप भी सुन्दर हैं।

—जैन

☐ संगीत धन्ना शालिभद्र

पुस्तक अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक है। शब्दालंकार और अर्थालंकार यह दोनों अलंकार इस में विधायक हैं। यह एक महान काव्य है, महान चरित्र है। आपके महान परिश्रम की जितनी भी श्लाघा की जाय, जितनी भी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है।

—मुनि हेमचन्द्र, लुधियाना

☐ महासती मदनरेखा

···महासती मदनरेखा आदि कुछ पुस्तकें देख अति प्रसन्नता हुई। इतिहास पुष्ट जीवन-चरित्र अलंकारमय छन्दों में सजाकर हृदयग्राही रूप दे दिया है। शतशः साधुवाद स्वीकार हो।

—'चन्द्र'
वड़ा उपाश्रय, राँगड़ी
वीकानेर (राजस्थान)

☐ सुन्दर ! सुन्दर !

मेरे विचार में श्री चन्दनमुनी (पंजावी) पहले जैन संत हैं, जिन्होंने जनता की भाषा में, जनता के लिए इतना सुन्दर सरस, और प्रेरणादायी साहित्य रचा है, वह भी संगीतमय। और उसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए लागत से भी आधे मूल्य में पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील है, उनके श्रद्धालुजन। सुन्दर साहित्य, सुन्दर छपाई एवं सुन्दर भाव युक्त चित्र और सुन्दर गेट अप ! श्री चन्दनमुनि जी ने सभी कुछ सुन्दर वनादिया है। —मुनि मधुकर

मंगल कामना

१ धन्य धन्य चन्दन मुनि जी, कविता गजब निराली !
भाव-सुमन से सुरभित होती, कविता की हर डाली !!

२ "शालिभद्र" अरु "धन्ना जी" का, जोड़ा सुन्दर-सरस समास।
कवित्व शक्ति से कलम आपकी, हमको है पूरा विश्वास ॥

३ आशु कवि हो ज्ञानवारिधि, अजब आपकी काव्य कला।
कवि-हृदय होता जन-मन का, मम मन जीता अहा, भला ॥

४ "सुरसुन्दरी" मुक्तक मय है, देखी मैंने और पढ़ी।
शील सुरंगी जड़ी हुई है, सरल सुहानी धर्म लड़ी ॥

५ भावों का सागर-गागर में, भरा मुनि चन्दन ज्ञानी।
अतुल सत्य मय भरी सुगन्धी, लगी सभी को मनमानी ॥

६ "संगीतों की दुनियाँ" तुमने रची, बड़ी ही प्यारी है।
सामाजिक-धार्मिक बातों की, ताजी केशर क्यारी है ॥

७ "सती चन्दना" मयणरेहा, आदि भी सुन्दर है पुस्तक।
ललित भावों से भरे हुए हैं, मुनि चन्दन के ये मुक्तक ॥

८ एक बार भी पढ़े उसे, जीवन में रंग उतर आये।
महापुरुषों के चरित्रों से, अपना जीवन सरसाये ॥

९ साधुवाद है मुनि "चन्दन" को, मंगल कामना करता हूँ।
"रमेश" सफलता मिले हमेशा, ऐसी भावना वरता हूँ ॥

—मुनि रमेश साहित्यरत्न, सिद्धान्तचार्य

कवि कुल किरीट चन्दन मुनि का

सादर शतशः अभिनन्दन हो.......

○ मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

कवि की कृतियाँ हैं सदा अमर, साहित्य गगन के ज्योति-दीप ।
जग को आलोक दिखाते हैं, भीषणतम में कविता-प्रदीप ।।
सुन्दर भावों का समावेश, कविता जिनकी कमनीय अहा !
जीवन में ज्योति जगाता ही, चन्दन मुनि का साहित्य रहा !
"मनहर माला" "चन्दनबाला", अनुपम कृति "धन्ना" धन्य-धन्य ।
"दमयन्ती" 'सुर सुन्दरी' और, 'गीतों की दुनियाँ' है अनन्य ।।
'जम्बूकुमार' 'बारहमहीने', "संजयराजर्षि", 'इषुकार' ।
'भगवान पार्श्व' के क्या कहने, प्रत्येक-पंक्ति में 'सुधा-धार' ।।
है—प्रखर विवेचक आगम के, साहित्य-सृजन में सदा निरत ।
कविता का श्रोत वहा करता, जिनके सहृदय उर से अविरत ।।
जिनका जीवन आदर्शों पर, तिल-तिल जलने के लिए हुआ ।
वे पथिक पंथ में नहीं रुके, जीवन चलने के लिए हुआ ।।
जिनकी कविता के काव्य-सुमन, दिशि-दिशि सौरभ बरसाते हैं ।
जिनके प्रवचन रसिकों के उर में, स्नेह-सुधा सरसाते हैं ।।
चन्दन देखें शत-शत वसन्त, सुरभित वसन्त का हो न अन्त ।
भावी जीवन भी हो प्रशस्त, मंगलमय सन्तत श्रमण सन्त ।।
मुनि 'कमल' शुभाशंसा करता, कविवर का नित अभिनन्दन हो ।
चन्दन के सम चन्दन मुनि के, चरणों में सादर वन्दन हो ।।